॥ ॐ ॥

अध्यात्मिक ज्ञान-सागर

लेखक :

नोरंगलाल

श्री बालारामजी महाराज के शिष्य

नया खेड़ा पो० बस्सी सीतारामपुरा

जयपुर (राजस्थान)

रम बार] सन् १९६९ [१०००

भूमिका

मुझे एक गरीब कुल माली श्री चेनीलाल पिता व माता श्री संज्या देवीजी के उदर से जन्म मिला है । मुझे नोरंगलाल कहते हैं, ग्राम नया खेड़ा निवास स्थान है । और जब मुझे होश हुआ तब मुझे सतसंग व धार्मिक ग्रन्थ पढ़ने को मेरे दिल में कोतु हल उठा । एक समय मुझे ईश्वर कृपा से ईश्वरीय रूप स्वामी श्री बालारामजी की शरण पर बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ और कई ज्ञानों के उपदेश प्राप्त हुए ।

अतः आपकी कृपा के फल स्वरूप में ईश्वर गुरू की कृपा से कुछ सूक्ष्म विचार अपने इस पुस्तक में सजाता हूं इन विचारों में यदि गलती हो तो कृपा कर पाठक गण क्षमा करें । जिस प्रकार की गुलाब का पेड़ फूलों को कांटों से बचा कर रखता है और फूलों की शोभा रखता है ।

अभी हाल में फूल की भांती नहीं हूं एक काप ही हूं पर विचारों को फूलों की भांती पेश करता हूं ।

शरण गुरू कि मैं ही हूं
नोरंगलाल

श्री सतगुरु बालारामजी महाराज

श्री बालक मण्डली
जैन जवाहर विद्यापीठ
भीनासर

श्री सतगुरु बालारामजी के शिष्य श्री नोरंगलालजी

भजन

[१]

देख्या खेल अपाररे सन्तों, देख्या, खेल अपाररे !
मानत है वोही मानको, प्राप्त होगये येही खेल अगम अपारारे ।
मान्या विना भेद नहीं पावे, सत गुरू मनावन हारारे ॥
सत गुरू की सैनको, जो मानत है वो होगये पारस अपारारे ।
पारस से छुताई पारस, करले आप रूप अपापारे ॥
ऐसे ही अज्ञान से जीव रूप ज्ञान से ब्रह्म अपारारे ।
ब्रह्म में दूसरा रूप नजर नहीं आवे झलके एक रूप अपारारे ॥
एक-एक ही वहु रूप होके, खेलत है खेल करतारारे ।
करतार के आगे कोई तार नहीं थकत भया संसारारे ॥
भेद विना भेदी नहीं मिलता, सत गुरू बिना नहीं जानन हारारे ।
सत गुरू म्हारा साँचा सूरमा ज्याने विरला जन जानन हारारे ॥
सत गुरू की करो खोजना, देखो खेल अपारारे ।
खेल विना मेल नहीं होता, मेल विना नहीं संसारारे ॥
संसार विना सार नाहीं देख्या खेल अपारारे ।
ऐसे खेलको वोही खेलता सार शब्द को जानन हारारे ॥
सार विना पार नहीं पावे डूबेला मझधारारे ।
सार शब्द को जानले मन मेरा, तूने सत गुरू जगावन हारारे ।
जाग्या विना निद्रा नहीं जावे जानत है सव संसारे ॥
जानत हैं फिरभी मानत नाहीं देख्या भ्रम अंधियारारे ।
साज और आवाज मिलाले जद पावे सन दीदारारे ॥
साज विना आवाज नाहीं आवाज विना शब्द अंधियारारे ।
शब्द विना परखे कैसे वांको, भेद अगम अपारारे ॥
भेद विना चोरी नहीं होती जानत है सव संसारारे ।
भेद को परखे कोई खोजरियाँ मिट जावेला भ्रम अंधियारारे ॥
भ्रम दूर हुआ जव रहगया ब्रह्म अपारारे ।

ब्रह्म की बाताँ भेद बिना नहीं पावे कहन सुनन से अगम अपारारे ॥
बालाराम सत गुरू के शरणे नौरंग तार अपारारे ।

[२]

नसा करे तो करो ज्ञान का जा से बन जावो ईश्वर रूप अपारारे ।
ज्ञाननामहै जगत को ईश्वर रूपनिहारो, दूसरे रूपको मिटावनहारारे ॥
ज्ञान नसे को करके, मस्त हो जावो, आनन्द रूप अपारारे ।
और नसे से वहु रोग सतावे, ज्ञान नसा जनम मरण मिटावन हारारे ॥
और नसा उतर जावे, ज्ञान नसा रहत नित, भंडारारे ।
बाला राम सतगुरू के सरणे, नोरंग, ज्ञान नसे में अलमस्त फकीरारे ॥

[३]

सत वड़ा संसार में कर देखो इतवारारे ।
सत के आगे सब थर्रावे सत में लय, लगाकर, रहो मतवारारे ॥
सत से साहिव मिल जावे, जो कोई संत को धारन हारारे ।
धारन करके धीरज को जमाले जद पावे प्रीतम प्यारारे ॥
प्रीतम से मिलके हो जावो ब्रह्म रूप अपारारे ।
वालाराम सतगुरू के सरणे नोरंग एक रूप अपारारे ॥

[४]

सत में लय होकर सत रूप अपनालेरे ।
मनको चित में लय करके आतम में वास वसालेरे ॥
रोम-रोम में रमता रमिया वांसे आतम को सम वनालेरे ।
सम रूप होकर के रमता रमिया ने अपनालेरे ॥
फिर डर नाहीं है निर्भय नगर वसालेरे ।
निर्भय नंगर में सतगुरू का वासा सत ही सत दरसालेरे ॥
सत रूप में सत साँहीं का वासा ज्यां में वास वसालेरे ।
वालाराम सतगुरू के सरणे नोरंग अपने, सत रूप को अपनालेरे ॥

[५]

इक तार वड़ा संसार में देख्या खेल अपरारे ।
इक तार विना भेद नहीं पावे भेद विना नहीं जानन हारारे ॥
इक तार सत गुरू विना नहीं पावे सत गुरू से ही जानन हारारे ।
सत गुरू कहत है सत को जामें सत ही का दीदारारे ॥

दीदार विना प्रकाश नहीं जैसे सूरज बिना जग अंधियारारे ।
प्रकाश में सूता जीव भी, जाग कर परम पद पावन हारारे ।।
इसी को कहत हैं गुरुअंधित्यारा रू प्रकाश अपारारे ।
रू के अन्दर आत्मा रह जावे दुर हो जावे भ्रम हंदियारारे ।।
प्रकाश का खेल अपारा ज्यांका भेद विरला जन जानन हारारे ।
प्रकाश में प्रकाश समा जावे जीव से ब्रह्म दिदारारे ।।
"वालाराम" सत गुरू के सरणे "नोरंग" ब्रह्म अपारारे ।

[६]

प्रेम का पंथ चलाते चलो जान का मार्ग बताते चलो सत का
झंडा गड़ाते चलो ।
पंथ से रास्ता मिल चावे और मार्ग से चला जावे फिर सत ही
सत चित लगाये चलो ।।
आपा मिटाके अपने आप में समाके मस्तों की चाल चलते चलो ।
चलते-चलते सबको प्रकाश कराते, चलो और सत का झंडा
लहराते चलो ।।
ऐसे झंडे को देखकर सब मस्त हो जावे, फिर सबके झंडे गड़ाते
चलो ।
फिर सगका झंडा गड़ जावे फिर मस्त होके मस्ती से वेखुदी को
मिटाते चलो ।।
फिर वेखुदी मिट जावे तो, खुद का आलम अपनाते चलो, और
अपने आपको समझाते चलो ।
वालाराम सतगुरू के सरणे नोरंग अपने आपको वनाते चलो ।।

[७]

आंखें होते हुये भी अन्धे बन जाते, फिर कहते ईश्वर की गति
न्यारीरे ।
दुष्ट कर्म को खुद करते फिर कहते ईश्वर की लीला न्यारीरे ।।
देखा देखी का करे जोगना, कर्म करने में मति मंद अनारीरे ।
अपनी गलती को कोई नहीं देखे दूसरे की गलती पर नजर पसारीरे ।।
आपान मूल भरम में डोले मति-मंद अनारीरे ।

आपा न खोज आपको देखले, सतगुरू सैन बताई अति भारीरे ॥
"वालाराम" सतगुरू के सरणें "नोरंग" न परम पद पाया भारीरे ।

[८]

सत का करो व्यवहारा जासे मिल जावे, साहिब दीदारारे ।
सत नाम की बालद भाले जासे ब्याज कमाले अपारारे ॥
इं वालद ने कोई सूरा नद लादे, जिनका भाग अपारारे ।
सूरा नर पीछे नहीं आवे, रण में रहत है भूरारे ॥
जगत देख मत हाले, नहीं तो डूबेला, मझ धारारे ।
'वालाराम' सतगुरू के सरणे 'नोरंग' सत स्वरूप अपारारे ॥

[९]

तृष्णा चमारी न मार हटाल्यो, जद पावो नाम आधारारे ।
तृष्णा से चिन्ता लग जावे, चिन्ता से बहु दुःख अपारारे ॥
नाम विना नहीं अधारा यूहीं भटकत फिरे गंवारारे ।
नाम वड़ा संसार में देखो तिनके का अधारारे ॥
नाम जहाज पर बैठ कर पार हो जावो मझ धारारे ।
"वालाराम" सतगुरू के सरणे "नोरंग" नाम आधारारे ॥

[१०]

सत होकर रहोरे सन्तों, काल जाल का डर नाहींरे ।
असत में जोर लग जावे भूल भरम का भाईरे ॥
सत के अन्दर चत लगाले, भव सागर डर नाहींरे ।
सत इक आतमा वतलावे, जिनका भेद विरला जन पाइरे ॥
सत वरावर तप नहीं है भूंठ वरावर पाप जाके हिरदे सत है
वहां ही सांई भाईरे ।
वालाराम सतगुरू के सरणे नोरंग सत माहीं डर नाहीरे ॥

[११]

आनन्द स्वरूपी आप अपारोरे, सन्तो, सदा रहे नित न्यारोरे ।
सब में रहे सब से न्यारो सरगुण निरगुण अपारोरे ॥
स्व माया कहिये र आतमा अपारो परमातमा रहे नित न्योरोरे ।
स्व माया को र आतमा छोड़े पर परमातमा ने रखे दीदारोरे ॥

ज्ञान विना दीदारो नाही भटकत फिरे गंवारोरे ।
वालाराम सत गुरू के सरणे नोरंग ब्रह्म अपारारे ॥

[१२]

हर में हरि-हरि होके होजा हरि रूह अपारारे ।
हर जर्रे-जर्रे में रूप देखले उसी का होजा रोशन रूप अपारारे ॥
सव को कर दिखला रोशन फिर होवे प्रकाश अपारारे ।
हर कली कली में दिखा तेरा जल्वा करले एक रूप अपारारे ॥
एक ही वहु रूप होके खेल खेलत है करताररे ।
इसी स्थिति को समझकर होजा पारस रूप अपारारे ॥
पारस में दूसरा रूप ना रहै हो जावे एक रूप अपारारे ।
वालाराम सतगुरू के सरणे 'नोरंग' पारस रूप अपारारे ॥

[१३ [

तू अपनी लय में होजारे भाई जा से सब तेरी साथ होजाईरे ।
जव तक तू एक जगह नहीं होई, तव तक सव जगह का कैसे होजाईरे ॥
सवमें सम होकर एक रूप अपारा होजाईरे ।
एक रूप में सव कुछ है, सवमें व्यापक रूप होजाइरे ॥
इतना पुरुषार्थ करले मन मेरा फिर ब्रह्म रूप होजाईरे ।
क्या कहूं कही नहीं जावे आपों आप होजाईरे ॥
अपनी जान आपही जाने, फिर भरम दूर होजाईरे ।
भरम मिटे वाद में ब्रह्म अपारा ज्यांका भेद निराला होजाईरे ॥

[१४]

व्यापक स्वरूप हमारा सन्तो व्यापक स्वरूप हमारारे ।
सव व्यापक माहीं हम सव माहीं हंमसे नहीं कोई न्यारारे ॥
व्यापक स्वरूप की गति निराली जाने कोई सन्त पियारारे ।
आपा नैं समेट आपनैं देखले-तूही निरंजन निराकारारे ॥
यही भेद है ब्रह्म ज्ञानी का जाने कोई शब्द परखन हारारे ।
वालाराम सतगुरू के सरणे नोरंग व्यापक अपारारे ॥

[१५]

बोल भयो जद ठग रह्यो अबोल भयो जद मुक्त भयोरे
बोल से द्वैत बन जावे अबोल से अद्वैत भयोरे ॥
बोल अबोल दोनों से परे विचार गती ज्यां से सुख सागर
भयोरे ।
सागर की लीला अपार वांको भेद अजत्र भयोरे ॥
बालाराम सतगुरू के सरणे नोरंग निर्भय भयोरें ।

[१६]

कर्म प्रधान बतावे जगत में कर देखो इतवारारे ।
कर्म से जीब बन जावे भोगे लख चौरासी रूप अपारारे ॥
कर्म से ब्रह्म बन 'जावे नित्य आनन्द रूप अपारारे ।
कर्म से ही भरम बन जावे भोगे दुःख रूप अपारारे ॥
कर्म से ही भरम दुर होजावे रह जावे सत सरूप अपारारे ।
कर्म से ही सत रूपां में मिल जावे मिट जावेला यम दुवारारे ॥
सत माँही सत रूप वसाले आसू आप अपारारे ।
अपने आप में कुछ कहना वनता नहीं उनमयी यार को
संवारारे ।
वाला राम सतगुरू के सरणे नोरंग कर्म से ब्रह्म रूप ।
अपारारे ॥

[१७]

जरे जरे में रूप निहारोरे सन्तो ज्यांसे पार हो जावो भव पारारे ।
निहारयां विना भव वन्वन नहीं मिटे भोगे कष्ट अपारारे ॥
गुफू ज्ञान से निहारने निज रूप को मिट जावे यम दुवारारे ।
निहार कर होजा सागर रूप जग से न्यारारे ॥
सब में रहता सबसे न्यारा ओत पोत वह रूप अपारारे ।
तेरी कारीगरी का क्या भखाग करू तू नहीं मुझसे न्यारारे ॥
वालाराम सत गुरु के सरणे नोरंग रूप अपारारे ।

[१८]

भक्तों की लाज वचावो जगदीश हरे जगदीश हरे ।
तुम सब जग व्यापक हो फिर क्यों भक्तों को छलते हो
गोविन्द हरे गोविन्द हरे ॥

तुमही नाव तुमही खेवैया तेरे सिवा कोई और नहीं गोपाल
हरे गोपाल हरे ।
तुमही मांत पिता कुटम्ब परिवारा तेरे से छुपी नहीं मेरी
बतियां है राम हरे है राम हरे ॥
तेरी लीला वड़ी निराली मुझको भी लीला दिखलादे हे
ओम हरे हे ओम हरे ।
बालाराम सतगुरू के सरणे नोरंग को पार लगादे है नाथ
हरे हे नाथ हरे ॥

[१९]

सची लगन से ध्यालेरे मन मेरा सची लगन से ध्यालेरे ।
लगन विना वहु दुःख पावे भूल भरम में डोलेरे ॥
संचो लगन से पितम मिल जावे ज्याँने अपनालेरे ।
लगन लगाले येक नाम से भूली भोम को पालेरे ॥
पाकर के स्वराज्य को अपनालो भूल भरम को दूर हटालेरे ।
भरम को दूर किया जद परदा हट गया अपने आप को
अपनालेरे ॥
बालाराम सतगुरू की लगन को नोरंग अनालेरे ।

[२०]

निज रूपको ध्यालेरे मन मेरा निज रूप को ध्यालेरे ।
निज बिना निज घर नहीं पावे अपनी मती ने सुध बनालेरे ॥
अन्तर मुखी में वास बसाले गुरू शब्द को ध्यालेरे ।
सुरत शब्द का जोग कमाले अपने निज रू:को ध्यालेरे ॥
निज रूप में सतसांईं मिल जावे वांमें चित लगालेरे ।
चित को लगा आतमा में चैतन रूप को अपनालेरे ॥
बालाराम सतगुरू के सरणे नोरंग निज घर को पालेरे ।

[२१]

सन्सकारों के कारण से फिरे भिटकता लख चौरासी मझधारारे ।
जैसे सीसा गन्दा हो जाने से फिर साफ रूप नहीं दखन हारारे ।
ऐसे ही तीन दोष मनके ज्यां से आतमा का प्रकाश नहीं पावन
हारारे ।

मल विकसेफ आबरण तीनों को ज्ञानी विवेकी जन मिटावन हारारे ।।
सन्सकार नाम है विरती में वासना जम जावे इनको दुर करो जद पावो प्रकाश अपाररे ।
वालाराम सतगुरू के सरणे नोरंग रूप अपारारे ।।

[२२]

विचार बिना सार नांही सार बिना पार नहीं होईरे ।
विचारों से ही दुस्ट आत्मा बन जावे भोगे लख चौरासी भईरे ।।
विचारों से ही महान आत्मा हो जो मुक्त आत्मा कहलाईरे ।
मुक्त आत्मा सत पुरसों में हो जावे ज्याँने गुरू रूप में ध्याइरे ।।
गुरू वड़ा संसार में ज्यांकी करो खोजना नित भाईरे ।
वालाराम सतगुरू के सरणे नोरंग विचार से पार होजाईरे ।।

[२३]

खतनी खते सन्सारी करनी करे नर विरला जन भाईरे ।
खतनी मीठी खांड़ सी करनी विसकी लोय बताईरे ।।
खतनी छोड़ करनी करे नर विस से अमरत होजाईरे ।
अमरत में आनन्द ही आनन्द इसके सिवा कुछ नहीं भाईरे ।।
जो कुछ नहीं होई उसीसे सव कुछ वन जाईरे ।
वालाराम सत गुरू के सरणे नोरंग न सत खेती निपजाईरे ।।

[२४]

होनी प्रवल होइरे सन्तो लाख करो चतुराईरे ।
जैसी होनी वसी वुद्धि, वुद्धि से कर्म भर्म वन जाईरे ।।
दुस्ट कर्म से निच्च वन जावे सुव कर्मों से श्रेस्ट वन जाईरे ।
कर्म से भर्म वन जावे भर्म से भोगे लख चौरासी भईरे ।।
कर्म भर्म दोनों से रहै नचिता वोही सत मांई समाईरे ।
वाला राम सत गुरु के सरणे नोरंग न सत की सुद्धी अपनाईरे ।।

[२५]

संम विना भैद समज नहीं आवे भिटकत फिरे गंवारारे ।
संम नाम है येक ही रूपा और रूप द्रिस्टी नहीं लावन हारारे ।।
येक रूप विन द्रिस्टी नहीं जमती द्रिस्टी विना ब्रह्म पद नहीं पावन हारारे ।
ब्रह्म विना अगम अपार का भैद नहीं जानन हारारे ।।
सांचा भैद सतगुरू विना नहीं पावे सतगुरू ही सन बतावन हारारे
सतगुरू की सन को जो कोई जानत है वो ही पारस ब्रह्म अपारारे ।
पारस ब्रह्म का भैद कोई विरला नर पावे जो घट को खोजन हारारे
बालाराम सतगुरू के सरणे नोरंग अगम अपारारे ।

[२६]

दुरमत मती ने दूर हटावो जद पावो करतारारे ।
दुरमत नाम दुशरा रूपा जिनका दुर करो निसतारारे ।।
येक रूप में लय होकर पार हो जावो भव पारारे ।
देखले सच्चा नूर ज्यां में आनन्द रूप अपारारे ।।
सतगुरू विन दुरमत दुर नहीं होवे भिटकत फिरे सन्सारे ।
बालाराम सतगुरू के सरणे नोरंग ने अपना किया निसतारारे ।।

[२७]

वासना से रहित हो जावो ज्याँ से मिल जावे छुट कारारे ।
वासना के कारण से फिरे भिटकता भोगे कस्ट अपारारे ।।
वासना ही जनम मरण का = बीज बतलावे इस से रहित कोई विरला नर अगम अपारारे ।
वासना से रहित होकर देखो साहिब का खेल अपरम अपारारे ।।
वासना से जीव बन जावे भोगे लख चौरासी अपारारे ।
वासना से रहित हो जांने से ब्रह्म बन जावे आनन्द रूप अपारारे ।।
बालाराम सतगुरू के सरणे नोरंग ब्रह्म अपारारे ।

[२८]

सच्चा भक्त वोही जो राग दवेश को त्यागन हारारे ।

राग नाम है मौ का दवेश नाम है घ्रणा इनमें पंस कर भोगे कस्ट अपारारे ।।
मान अपमान में जो रहे संम वोही ईश्वर को जानन हारारे ।
आसात्रणा को जो त्यागन हारा वो ही प्रम्र पद पावन हारारे ।।
मैं मेरा को त्यागन हारा वोही सत में समावन हारारे ।
संकल्प विकल्प को त्यागन हारा वोही रहत हभ्रूरारे ।।
है भूरा नाम सत आतमा को बतलावे जाने कोई विरला जन जानन हाररे ।
सत आतमा में और परमातमा में कुछ फरक नहीं है सतगुरू बिन नहीं जानन हारारे ।।
वालाराम सतगुरू के सरणे नोरंग पारस रूप अपारारे ।

[२९]

सुन्न इस्तती में स्म होजावोरे सन्तो ज्यां से बन जावो ब्रह्म अपारारे ।
ब्रह्म बने वाद में अपार लीला थकत भया सन्सारारे ।।
ये ही लीला है लीलाधारी की गुरू शब्द से परखन हारारे ।
गुरू शब्द में जो कोई जागे हो जावे पारस ब्रह्म अपारारे ।।
वालाराम सतगुरू के सरणे नोरंग अपरम पारारे ।

[३०]

अगम अपार का भेद निराला जाने कोई सन्त फकिरारे ।
सब के अन्दर तुही-तुही और भेद नहीं न्यायारे ।।
ये ही विचार ब्रह्म इस्तथी का जाने कोई अलमस्त फकिरारे ।
इसी विचार में इस्तथ होकर हो जावो जगत से न्यारारे ।।
ज्ञान विवेक से करले मजपूती फिर देखो खेल अपारारे ।
वालाराम सतगुरू के सरणे नोरग अगम अपारारे ।।

[२०]

निरभय होकर ध्याल्नेरे मन मेरा निरभय होकर ध्यालेरे ।
निरभय नाम निरन्तर सांही जिनमें चित लगारे ।।
चित को चेतन चोला पहनाले ज्यामें सत रूप दरसालेरे ।
मन न्त्रा मांहीं सत सांहीं का वासा ज्यामें निरन्तर वास वसालेरे ।।

वाला राम सत गुरु के सरणे नोरंग निरभय रूप को ध्यालेरे ।

[३२]

सेवा करले प्राणी, सेवा करलेरे ।
सेवा चिज वड़ी सन्सार में ज्यांसे नित अमरत पिलेरे ।
सेवा से मेवा मिल जावे मेवा में रस अपनारे ॥
रस में इक अमरत धारा ज्यांमें ज्ञान गंग से नहालेरे ।
ज्ञान गंग में नहाकर पारस रूप अपनालेरे ॥
पारस नाम येक ही रूपा दुसरा रूप मिटालेरे ।
वाला राम सत गुरु की नोरंग सेवा करलेरे ॥

[३३]

पल पल में सुरत निरजले पिया की जद पावे पियो पियारोये ।
पलकां का कर पालणा सत नाम को देऊँ हिलोरोये ॥
आनन्द में परमानन्द दरसावे परमानन्द सोही पितम पियारोये ।
पियाकी अटरियाँ में सुगरा नर पहूंचे वांको भागवड़ो ही पियारोये ॥
अनेक जनमों से वहू दुःख पायो सत गुरु पल में आन उभारोये ।
वाला राम सत गुरु के सरणे नोरंग न अपनायोये ॥

[३४]

सवकी तान मिलाता आप अपनीही तान में निरधारारे ।
कर्म करे कर्त्ता नहीं होवे रहता नित न्यारारे ॥
कर्म करे जद प्रकृति वन जावे खेले खेल अपारारे ।
खेलको रचकर वन जाता वहु रूप अपारारे ॥
हर रूप में रूप निराला कली कली में रंग न्यायारे ।
सव रंगों में रम रहता आप सत रंग में रूप अपारारे ॥
सत रंग का रंग लगाले फिर हो जावे भव पारारे ।
ये हो रंग है सव रंगों का सिरताज ज्यांने सतगुरू पावन हारारे ॥
सतगुरू सन को पाकर पावन हारा वन जावे डेखले रंग न्यारारे ।
वालाराम सतगुरू का नोरंग नित न्यारार ॥

[३५]

हद बेहद में डुब मर्या सन्सारा ।
हदमें रहत संसारा बेहद में ज्ञानी जन थक थक कर हारारे ॥
हद बैहद से परे परमात्मा अपरंम अपारारे ।
में मेरा से हद बेहद में फिरता डोले गंवारारे ॥
मैं मेरा नहीं तो हद वेहद दोनों से परे आप रूप ब्रह्म अपारारे ।
सतगुरू की सन में जो कोई मिटता वोही है अमैद से
रहित अपारारे ।
वालाराम सतगुरू के सरणे नोरंग प्राकृति पुरुष अपारारे ॥

भावार्थ=प्रकृति भी मैं ही हूं पुरुष मी मैं ही हूं, मेरे सिवा और कुछ भी नहीं है ।

[३६]

तेरे दिदार का मारा हूं मुझे तुझी से ही यारी है ।
फिरू मैं भिटकता दर-दर मुझे दिल की बीमारी है ॥
गुजारी वेहोश होकर के जिन्दगी नहीं प्यारी है ।
दिवाना हूं तेरा ही मुझको नहीं किसी से यारी है ॥
जिधर मैं देखता हूं उधर ही तेरी झलक प्यारी है ।
"वालाराम" सतगुरू की "नोरंग" को गम प्यारी है ॥

[३७]

चेत चेतरे नर अज्ञानी तेरो औसर वित्यो जावेरे ।
गया वक्त फिर हाथ नहीं आवे फिर पीछे पछतावेरे ॥
वक्त को वड़ा अनमोल वतावे फिर तू क्यूं भरमावेरे ।
तेरी मेरी करतां करतां ऊंमर वीती जावेरे ॥
लेले शरण संचे सतगुरू की तेरो जनम मरण मिट जावेरे ।
"वालाराम" सतगुरू के सरणे "नोरंग" को वेड़ो पार
लगजावेरे ॥

[३८]

फर्ज वड़ा संसार में देखो तिरने का आधारारे ।
अपने फर्ज को मत भूलेरे मन मेरारे नहीं तो डूव जावेलो
मजधारारे ॥

फर्ज को निभाया से फरजी बनजावे पहुंचा देवे इश्वर के
दरबारारे ।
फरज निभाया बिना जावेला यंम दुवारारे ।।
अपने फरज को कभी मत भूलो कहता है संत फकिरारे ।
सन्तों की गति को अपनाले तुझे मिल जावे साहिब
दिदारारे ।।
सन्त बड़े परमार्थी करते हैं भव से पारारे ।
"बालाराम" सतगुरू के सरणे "नोरंग" रहता है साहिब
दिदारारे ।।

[३९]

मर्या बिना सुख नाहीं जीवित ही मरलेरे ।
जीवत मर्याँ बिना बहु जनमों में फिरता डोलेरे ।।
एक वार जीवित मरले फिर बहु जनमों से बचलेरे ।
मरता मरता सब जग गया गुरू शब्द से मरलेरे ।।
गुरू शब्द बिना भिटकत डोले लख चौरासी में फिरलेरे ।
माया मरी पै सब कोई मरता गुरू शब्द पर कोई सन्त
डटलेरे ।।
गुरू शब्द से जो कोई मरता वोहो जीवत मुक्ति पालेरे ।
जीवत मर्यां पीछे अजर अमर हो रहता काल जाल से
बचलेरे ।।
अजर-अमर का भेद कोई विरला नर पावे आपा न आप
मिटालेरे ।
"बालाराम" सतगुरू के सरणे नोरंग मौक्स फकिरी ने
अपनालेरे ।।

[४०]

भाव बड़ा संसार में कर देखो इतवारारे ।
भाव बिना भिटकत डोले लख चौरासी मजधारारे ।।
भाव बिना मालिक नहीं मिलसी चाहे लाख जतन कर
हारारे ।
भाव से इश्वर मिल जावे भाव बिना नरकां में भोगे कस्ट
अपारारे ।।

भाव से ही डूबन हारा भाव से ही भव से पारारे ।
भाव से सतगुरू मिल जावे भाव से ही परम अपारारे ।।
बालाराम सतगुरू के सरणे नोरंग भाव से ही अगम अपारारे ।

[४१]

परा में परम होकर होजा आप रूप अपारारे ।
परा नाम हैं बंकता नहीं सनमें सन समावन हारारे ।।
सन बिना समज नहीं पावे भिटकत फिरे गंवारारे ।
परा का भेद अपारा ज्यांने विरला जन जानन हारारे ।।
जान गये वोही होगय येक रूप अपारारे ।
परा बिना भेद नहीं पावे सतगुरू से ही पावन हारारे ।।
बालाराम सतगुरू के सरणे नोरंग परा में देख्या खेल अपारारे ।

[४२]

चैतन पुरुष कभी नहीं मरता सदा रहत इक सारारे ।
निरइच्छा निराधार आधार नहीं उनके आप हभुरारे ।
जागृत सपन सुसोपति तुरया में नहीं आवे इनका साक्षी अपारारे ।
प्रमानन्द आत्म सरूपो सागर रूप अपारारे ।।
सतगुरू विना भेद नहीं पावे डूवैला सभधारारे ।
बालाराम सतगुरू के सरणे नोरंग चैतन पुरुष अपारारे ।।

[४३]

निरभय नंगर वसालरे मन मेरा निरभय नंगर वसालेरे ।
निरभय विना साहिब नहीं मिलता निरभय पुरी न व्यालेरे ।।
जैतू निरभय नगर में जाना चावे गुरू शब्द को ध्यालेरे ।
निरभय नगरी में वोही जावेला जो अपने स्वरूप को पालेरे ।।
सतनाम का मोरचा लगाले सत ही सत को ध्यालेरे ।
बालाराम सतगुरू के सरणे नोरंग निरभय नगर वसालेरे ।।

[४४]

निराधार अधार नहीं उनके रहता कोई सन्त फकिरारे ।

आपा न मार आप माहीं रहता देख्या खेल अपारारे ॥
असा फकिरा कोई विरला देख्या लाखों में किसी का दिदारारे ।
असा फकिरा वोही वनता जिनोने त्याग दिया माया का पसारारे ॥
दुरमत मती न दुर हटाले जद होवे मस्त फकिरारे ।
वालाराम सतगुरू के सरणे नोरंग अलमस्त फकिरारे ॥

[४५]

येक लगन विन साहिव नहीं मिलता देख्या सोच विचारारे ।
अनेक लगन से अनेक जगे भिटकावे तीन काल मझधारारे ॥
येक लगन से पार हो जावे मिल जावे साहिव दिदारारे ।
गुरू विना येक लगन नहीं पावे कह रह्या सन्त जन सारारे ॥
लगन पैड़ न हैत कर सींचो फल लागे अपरम पारारे ।
असे फल को वो ही पाता जो गुरू शब्द का पालन हारारे ॥
वालाराम सत् गुरू की लगन से नोरंग पार हुवा भव पारारे ।

[४६]

अपरमपार पार नहीं उनका असा स्वरूप हमारारे ।
अज्ञानी नर के समज नहीं आवे जावेला यंम के दवारारे ॥
असे स्वरूप को वोही लिखला जिनोने पिया अमरत धारारे ।
आतम सता को वोही जाने जिनोने ज्ञान किया इक सारारे ॥
अवनासी की पोल पर कोई रहता सन्त फकिरारे ।
वालाराम सतगुरू के सरणे नोरंग आपा माहीं आप अपारारे ॥

[४०]

अपने वचन का पालन हारारे सन्तों वोही सत को जानन हारारे ।
वचन के पालन विना कोई विश्वास नहीं करता देखो सव ही जानन हारारे ॥
वचन के पालन से सत धारी वतलावे वोही साहिव को जानन हारारे ।
वचन के पालन से आतमा का प्रकाश हो जावे जो सव जानन

वचन के पालन बिना भिटकता डोले लख चौरासी मझधारारे ।
अपने वचन का पालन वोही करता जो सूरा रहत हजुरारे ।।
बालाराम सतगुरू के सरणे नोरंग वचन का पालन हारारे ।

[४८]

प्रालब्द का भैवारा सन्तो प्रालब्द का भैवारारे ।
प्रालब्द से सुख दुःख भोगे जनम मरण मझधारारे ।
प्रालब्द से धन दोलत मिल जाते प्रालब्द से ही सकल पसारारे ।।
विना प्रालब्द के कुछ नहीं होता देख्या सोच बिचारारे ।
प्रालब्द का जो कर्ता नहीं बनता वोही रहे नित न्यारारे ।।
बालाराम सतगुरू की कृपा से नोरंग प्रालब्द से रहित अपारारे ।

[४९]

जगे जगे क्यों भिटकत डोले येक जगे को ध्यालेरे ।
मानुश जनम विरथा जावेला चौरासी को फेरो मिटालेरे ।।
एक जगह विन शान्ती नहीं मिलती थारा मन न यौं समजालेरे ।
एक जगह से मन निज मन बन जावे गुरू शब्द को ध्यालेरे ।।
निज मन से आतमा का प्रकाश हो जावे थारी भूल भरम न मिटालेरे ।
बालाराम सतगुरू के चरणों में नोरंग मन को ध्यालेरे ।।

[५०]

मानुश में इक ज्ञानी वड़ा है ज्ञानी जैसा विचार नहीं ।
ज्ञानी आदमी दिखे जगत को कता फिर भी वो कता नहीं ।।
अज्ञानी आदमी अपना जैसा समजे उसका कोई पार नहीं ।
ज्ञानी आदमी की क्या महिमा कहिये कहने में आवे नहीं ।।
ज्ञानी वनना वड़ा खटिन है कोई आसान वात नहीं ।
ज्ञानी वोही वनता जो अपने को वनावे कता नहीं ।।
वालाराम सतगुरु की कृपा से नोरंग कहेछे ज्ञानी की भेद द्रस्टी नहीं ।

[५२]

विश्वास वड़ी चीज जगत में विश्वास से प्रम गति पा जाते हैं ।
विश्वास से होत भैवारा विश्वास से साहिव मिल जाते हैं ।।

विना विश्वास के भटकता डोले वेद ग्रन्थ यों गाते हैं।
विश्वास से आत्मा वलवान वन जावे जनम मरण में नहीं जाते हैं ॥
विश्वास को जो अपनावे वो मानुश जनम सपल बनाते हैं ।
वालाराम सतगुरू की कृपा से नोरंग सही सही कह जाते हैं ॥

[५३]

गुरू विमुखी न ठोर नहीं है जावेला यम के दवारारे ।
जेसे दिप विना मन्दिर सूना नमक बिना सुवाद सारारे ॥
गुरू विना प्रकाश नहीं होवे डूबेला मज धारारे ।
अन्दकार के पड़दे में यो भोग रह्यो दुःख सुख सारारे ॥
गुरू विना भटकता डोले तीन काल मज धारारे ।
गुरू विना भेद नहीं पावे थकत भया सन्सारारे ॥
जै तू अपना मोक्स चावेतो रखो गुरू चरण दिदारारे ।
वालाराम सतगुरू के चरणों में नोरंग न सिर धारारे ॥

[५४ [

गुरू शव्द को धारण करले उनका भाग वड़ाई प्यारारे ।
भूल भरम ने दूर हटादे होजावे आनन्द रूप अपारारे ॥
गुरू शव्द विना भिटकता डोले मति मुड गंवारारे ।
गु नाम है अन्दकार का रू प्रकाश अपारारे ॥
गु नाम मिटाके रू का प्रकाश करदे सोही शव्द सिर धारारे ।
वालाराम सतगुरू के सरणे नोरंग अपरम पारारे ॥

[५५]

सतगुरू महारा ज्ञान का सागर दिन्यों भरम मिटाय ।
वहुत जनमों से विशय झर को पीता अव अमरत दियो पिलाय ॥
अमरत पीके अमर हो गया आवागमन को पिन्ड छुड़ाय ।
अब सत गुरू मुज में में सत गुरू में एक रूप दियो लिखाय ॥
नाम रूप को मिटाय के जो रह गयो सत ही सत सवाय ।
वालाराम सत गुरू की कृपा से नोरंग सत की महिमा गाय ॥

[५६]

बसन्त ऋतु भी क्या ऋतु है वो सव को मस्त वनाती है ।
बिना मस्ती के मस्त वनादे ऐसा रंग वनाती है ॥

असी मस्ती में जो मस्त हो जावे उसको ओर ऋतु नहीं सुवातीं है ॥
ईं मस्ती ने वोही जाने जो सुरता साहिब को ध्याती है ।
ये ऋतु सबसे बड़ी बतावे सबके मन को भाती है ॥
बालाराम सतगुरू के सरणे नोरंग को मस्त बनाती है ।

[५७]

सिलवन्त ओगरण तज देवे गुण न तजे गुलामरे ।
सिलवन्त रहे सन्तोसी गुलाम आदमी जला करे ॥
सिलवन्त में बहुत गुण वसे अवगुण बसे गुलामरे ।
गुण अवगुण दोनों से रहे अलग उसकी मती अगातरे ॥
बालाराम सतगुरू की कृपा से नोरंग दोनों से रहे परे ।

[५८]

मद पिवे और फैल मचावे भोगे दुःख सुख भारीरे ।
खाने को चाहे अन्न ना मिले फिर भी मद पिने की त्रशना भारीरे ॥
दुनिया को ठग-ठग कर पीजावे राड़ करे अति भारीरे ।
पीकर जब वो चालन लागे चाल चले डग मग भारीरे ॥
झूट कपट से जरा नहीं सरमावे लोभी लालची भारीरे ।
खुद शक्ति हीन हो जावे फिर भी कहे मुज में बल भारीरे ॥
सजन आदमी पास नहीं बिठलावे मुंह में बुदबो आवे भारीरे ।
यां कर्मा से नरकां में जावेला भोगे कस्ट भारीरे ॥
वालाराम सतगुरू की कृपा से नोरंग कहेछ सत की बातां भारीरे ।

[५९]

चलते-चलते सबको देखा अचल साक्षी कोई विरला नर पाते हैं ।
चन्दा भी चलता सूरज भी चलता और गगन में नोलख तारे भी चलते हैं ॥
जल भी चलता पवन भी चलता और रंग रंगिले वादल भी चलते हैं
सभी जीव प्राणी चलते जिनको सतगुरू नहीं मिलते हैं ॥
इस चला चली के चक्कर से वोही वचता जिनपे कृपा सतगुरू कर देते हैं ।
वालाराम सतगुरू की कृपा से नोरंग अचल साक्षी पदवी पाते हैं ॥

[६०]

जब में अन्तर मुखी हो जाऊं प्रकाश देखू अपारारे ।
यां प्रकासां में सत गुरू की महिमा थकत भया सन्साररारे ॥
कहन सुनन की गम नांहीं है आनन्द रूप अपारारे ।
ये ही हमारा निज घर है ये ही देश हमारारे ॥
यहाँ पर करोड़ भान प्रकासा नहीं काल का चारारे ।
इसी प्रकाश से सब प्रकाश मय होत है देखा खेल अपारारे ॥
बालाराम सतगुरू के सरणे नोरंग कहे ये ही प्रकाश हमारारे ।

[६१]

जो समजता है अपने को साक्षी भूत वो आत्मा बन जावे ।
फिर ना कंही जावे ना कंही आवे अपने आप में समा जावे ॥
ये ही भेद सन्सार का है ज्ञानी जन गुरू मुखी जान जावे ।
फिर वो भी अपने प्रेम तंत में समा जावे ॥
जो समज जावे इस भेद को वो भव दुःख बन्धन में नहीं जावे ।
सतगुरू की कृपा होवे जिनोपे यह भेद समज आजावे ॥
फिर वो भव सागर में गोता नहीं खावे अपने आप में समा जावे ।
बालाराम सतगुरू के सरणे नोरंग आपा मांहीं आप समा जावे ॥

[६२]

मस्त रहो अपनी मस्ती में दुनियां से क्यां यारीरे ।
दुनियां नाम दुरंगी यारी मत करो इतवारीरे ॥
झूट कपट का करे भेवारा सुवारत से पिरतीरे ।
ऐसी दुनियां से दिल यत लगावो रहो हुसयारीरे ॥
अपना भला चाहो तो रहो संत धारीरे ।
बालाराम सतगुरू के सरणे नोरंग अपरंम पारीरे ॥

[६३]

पड़दो भयो जद और भयो पड़दो नहीं तो आपही आप रहयोरे ।
सुवारत से पड़दा बनजावे विना सुवारत के ब्रह्म रहयोरे ॥
सुवारत का सब संसारा सुवारत विना कोई सन्त रहयोरे ।
कल्पना से जीव भयो कल्पना नहीं तो ब्रह्म रहयोरे ॥
ध्यान है वोही परमातम कहिये ज्ञानी जान रहयोरे ।

बालाराम सत गुरु के सरणे नोरंग मुक्त रहयोरे ॥

[६४]

कारण विना कार्य कौन्या देखो वेदो में फरमाते हैं ।
कारण से ही संसार की उत्पत्ति बतलाते कारण से ही लय बतलाते हैं ॥
कारण से ही मात पिता कारण से पुत्र बन जाते हैं ।
कारण से ही कुटम परिवारा कारण से ही आते जाते हैं ॥
कारण सेही लेत अवतारा कारण सेही सकल पसारा बतलाते हैं ।
बालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग कारण कारिय से रहित रह जाते हैं ॥

[६५]

तिरकुटी महल में फूल हजारा खिल रहया अपारारे ।
उसि फूल से सव कलियां लिखती कली कली में रंग न्यारे ॥
फूल मांहीं कुसवो निराली मस्त हो जावे संसारारे ।
मस्त होय कर मस्ताना बन जावे दिवाना अपारारे ॥
दिवाने की बातां दिवाना ही जाने और कोई नहीं जानन हारारे ।
दिवाना वन के देख तेरा ही दिलवर वसा है करतारारे ॥
उसि करतार को निहारले आनन्द रूप अपारारे ।
वाला राम सत गुरु के सरणे नोरंग रूप अपारारे ॥

[६६]

व्याप्क सबका द्रस्टा अपारा सन्तो व्याप्क द्रस्टा अपारारे ।
अपरंम पार पार कोई नहीं पाता थक थक कर रह गया उरली पारारे ॥
व्याप्क का भेद जो पाता वोही वन जाता द्रस्टा अपारारे ।
व्याप्क वोही है ईश्वर रूप दिदारारे ॥
दिदार से दिदार मिलाकर होजा येक रूप अपारारे ।
येक रूप माही सब कुछ है साहिव रूप मुक्त अपारारे ॥
मुक्त रूप होकर खेलले खेले अपारारे ।
खेल खेल कर भी रह जावे न्यारा अपरारे ॥

वालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग वोही है ब्रह्म अपारारे ।

[६७]

ईश्वर रूप निहार जगत ने ईश्वर रूप निहाररे ।
ये ही तेरा असली मार्ग और रूपने बिसाररे ॥
असी द्रस्टी जो कोई लावे ज्ञान विवेक से बिचाररे ।
द्रस्टी बड़ी वलवान जगत में करले बैड़ा पाररे ॥
द्रस्टी से परदा वन जावे द्रस्टी से ही अपाररे ।
वालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग द्रस्टी से ही पाररे ॥

[६८]

गाले राग अनभो भोरंगी ज्यों से रूप वनाले अपारारे ।
गाने वाला सवको अपने में लय करले फिर वन जावे ब्रह्म अपारारे ॥
सवकी सुनके आप अपनी ही सुनता रहे वोही हैं आत्म अपारारे ।
वोही है अपरंम पार पार नहीं उनका देखा खेल अपारारे ॥
खेल माहीं निरखले निज रूप को ये ही है सार शब्द तंत सारारे ।
तंत सारा है वोही अगम अपारा ज्यांका भेद विरला जन जानन हारारे ॥
वालाराम सत गुरु के सरणे नोरंग का भेद अपारारे ।

[६९]

शिसे में अपना मुख देख देख कर मन हरसावेरे ।
आपान भूल भरम में पड़कर आपोही आप भरमावेरे ॥
दुवैत स्वरूप को मिटा कर आनन्द स्वरूप अपनावेरे ।
आनन्द से प्रमआनन्द होकर एक रूप को अपनावेरे ॥
एक रूप में आपोही आप और रूप नहीं मन भावेरे ।
भावे कोई वन जावे चित की चैतना अपनावेरे ॥
वालाराम सत गुरु के सरणे नोरंग आतम में हर सावेरे ।

[७०]

सुन महल में नोपत बाजा बाजे मुरली मधुर धून भाई ।

वां बाजा की राग निराली अति मुखसम खटिन है भाई ॥
मस्त होय मस्ती में गाले तुज में ही तेरा दिलवर वसा है भाई ।
राग में से भाग बन जावे भाग सें तकदीर है भाई ॥
तकदीर का तजबीज करले गुरु शब्द में डटलेरे भाई ।
बालाराम सतगुरु की सरण में नोरंग नित रहता है भाई ॥

[७१]

देख्या खेल अपारा सन्तो देख्यां खेल अपारारे ।
अपरंम पार पार नहीं मेरा थकत भया संसारारे ॥
जिनको सतगुरु पूरा मिलयां वोही लिख्या रूप दिदारारे ।
मेरी कला सवाई मुझ में जैसे सुरज प्रकाश अपारारे ॥
सत से रहना सत का ही कहना सत का ही करो भैवारारे ।
वालाराम सतगुरु के सरणे नोरग अपारारे ॥

[७२]

प्रकृति को चलाके फिर भी रहता है स्थित स्थिर निरधार
ब्रह्म अपारारे ।
सीसाये आयने सनम जलवा दिखा देते हैं बेखुदी को मिटाके
सत स्वरूप अपारारे ॥
नजर देख नजराना देख दुनियां वालों की नजर का दिदारा
अपारारे ।
नजर में नजराना देख नजराने में झलक देख झलक में नुर
दिदारा अपरम अपारारे ॥
नजर में वोही है नजराने में भी वोही है और झलक में
झलकता रूप अपारारे ।
वालाराम सतखुरु के सरणे नोरङ्ग हर जलवे में प्रकाश
अपारारे ॥

[७३]

ज्यांकी लागी लगन ज्यांसे वो उनिके पास वतलाते हैं ।
लगन लगी थी मीरा माई के जिनोके पास साहिव वतलाते हैं ॥
लगन लगी थी नरसी भक्त के जिनोने जहाँ याद किया
वांहीं मौजूद वतलाते हैं ।

लगन लगी थी धुंव भक्त के जिनोको वालापन में दरश
दिखलाते हैं ॥
लगन लगी थी भक्त प्रहलाद के जिनोको नरसिहं रूप
धार के बचाते हैं ।
लगन के प्रताप से सभी भक्तों ने अपने अपने मनोरथ को
प्राप्त हो जाते हैं ॥
वालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग लगन से ही सतगुरु की
महिमा गाते हैं ।

[७४]

मस्त होगये जद होस में आना भूल गये जी बौल्या होंस में
आना भूल गये ।
झूंठी मस्ती छोड़ जगत की सच्ची मस्ती में बैहौस होगये ॥
जोकोई आकर होंस दिलावे जद मस्तों को वोली बोल गये ।
जव से मस्त भये जद सच्ची बादस्याई पागये ॥
मस्त और ईश्वर में कुछ फरक नहीं है कहने वाले यूं कह गये ।
वाला राम सतगुरू के सरणे नोरंग वैखुदी में खो गये ॥

[७५]

हदको छोड़ वैहद में हो जाता हद वैहद दोनों से परे रहता कोई
सन्त फकिरा ।
हद नाम है जो कहने में और करने में आजावे वैहद में वचन
अगोचर आनन्द रूप अपारा ॥
हद वैहद दोनों का स्याक्सी अपरम पार पुरुष करतारा ।
करतार में तार लगाले फिर हो जावे मस्त फकिरा ॥
फकिरा होय फिकर को तजता रहता आप हझूरा ।
फकिरा का भैद कोई विरला नर पावे जिनको मिल्या सतगुरु पूरा ॥
वाला राम सतगुरु के सरणे नोरंग फकिरा अपारा ।

[७६]

सच्चे की कोई वात नहीं माने झूंठे को जग पतियारोरे ।
सांचे को झूंठा वतलावे झूंठे को बोल वालोरे ॥
सच को झूंठ करदेवे झूंठ को सच वतावन वारोरे ।

मनत करतां जोर आवे झूंटो ही घमन्ड करने वारोरे ।।
घमन्ड करे फिर झुक जावे फिर भी मूरख नहीं मानन
वारोरे ।
बालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग को सच ही पार
लगावन वारोरे ।।

[७७]

है सवका आधार खुद निराधार रहता है भाई ।
क्या कहूं कुछ क्यों नहीं जावे कहन सुनन की गम नहीं है भाई ।।
सबमें रहता सबसे अलग भी रहता येही खेल है प्रकृति पुरुष का
है भाई ।
वोही पुरुष प्रकृति बनकर रचता है श्रेटी नित भाई ।।
यह भेद सतगुरु विना समज नहीं आवे भटक २ कर रह जाता
है भाई ।
वालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग निराधार रहता है भाई ।।

[७८]

निज ध्यान में डटले पन्छी निज ध्यान में डटलरे ।
निज विना ध्यान नहीं वनता ध्यान विना नहीं पालेरे ।।
मिल्यां विना भटकता डोले गुरु शब्द में डटलेरे ।
डटयाँ विना भैद नहीं पावे भैदी जोई निजरूप में डटलेरे ।।
निजरूप से वहु रूप वनाले ज्ञान घडन्तो घड़लेरे ।
वालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग डटलेरे ।।

[७९]

नजर भर देखले मुझको मेरा ऊद्धार हो जाये ।
तेरी इक नजर से ही तेरा दिदार हो जाये ।।
तेरे दिदार से ही मेरा तो मौक्स हो जाये ।
तेरी इक झलक से ही मेरा तो वैड़ा पार हो जाये ।।
तेरे जलवे को पाकर के गुल्य गुलजार हो जाये ।
वालाराम सतगुरु के चरणों में नोरंग तेरा इतवार होजाये ।।

[८०]

सब कुछ छोड़ उसी के सहारे होजा निर भय रूप अपारारे

तेरा विगड़ा काम वन जावे देख लिलाधर का खेल अपारारे ॥
सव कुछ मिटादे अपना फिर तुजे नहीं मिटावन हारारे ।
तेरा कुछ है नहीं तू क्यों भरमावन हारा ॥
है सो उसी का वोही खेल रचावन हारारे ।
खेल को देख उसी का जान कर वोही खेल खिलावन हरारे ॥
तूही है लिला तेरी सबकी लाज बचावन हारारे ।
वालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग की लाज वचावन हरारे ॥

[८१]

अच्छा या बुरा हमने तो कुछ बनाया नहीं उसी ने बनाया
हमको तो कुछ चिंता नहीं है ।
क्योंकि हम कुछ हैं नहीं सब कुछ वोही है जब सब कुछ वोही है
तो उसमें अच्छा बुरा कुछ रहता नहीं है ॥
अच्छा बुरा कुछ नहीं है दिन छुप जाता है तो रात हो जाती है
और दिन उगता है तो अंधेरा कहीं नहीं है ।
वोही है उसके सिवा और कुछ भिन्न नहीं है ॥
वालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग वोही है और कुछ भी नहीं है ।

[८२]

झलक देख झलक में नजराना भी देख और नजराने में नजारा
भी देख और नजारे में वेंगवारा देख ।
नूर और नुरानी देख जो भी वो दिखावे उसी का जलवा देख ॥
जलवेमें गुलशनकी वहार देख वहार में भी एक मस्त वहार देख ।
देखले इस वगीचे को देखने के लिये ही वनाया है पर उसी के
रूप से देख ॥
हर कलि कलि में मस्त वहार देख सव कलियों में रंग न्यारा
न्यारा देख ।
कलि खिलती है मस्त वनाने को और मस्त में दिलवर यार
को देख ॥
प्यार हुआ जब मस्त भया और मस्त में वरवादी देख ।
वरवादी में कुरवानी देख और कुरवानी में सांचे साहिव को देख ॥
वालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग नुर दिदारा देख ।

[८३]

भगवान जगाते ही रहे हम सोते ही रहे ।
भगवान हंसाते ही रहे हम रोते ही रहे ।।
भगवान आनन्द देते ही रहे हम दुखी होते ही रहे ।
भगवान कहते ही रहे हम अनासुनी करते ही रहे ।।
भगवान होंस दिलाते ही रहे हम बैहौंसीं में पड़े ही रहे ।
भगवान उजाला दिखाते रहे हम अंधेरेको ही देखते ही रहे ।।
भगवान सत मार्ग पै चलाते ही रहें हम असत्य पर चलते ही रहे ।
भगवान भक्त बनाते ही रहे हम अब भक्त बनते ही रहे ।।
भगवान झलक दिखाते ही रहे हम दूर भागते ही रहे ।
भगवान निज रूप दिखते हम और ही कुछ समते ही रहे ।।
भगवान पारस बनाते ही रहे हम लौहे के टुकड़े ही रहे ।
भगवान अपने समान बनाते ही रहे हम जीव बनते ही रहे ।।
बालाराम सतगुरु की क्रियासे नोरंग सत उपदेश सुनाते ही रहे ।

[८४]

घट खोज्यां बिना साहिब नहीं मिलसी घट में खोज लगालेरे ।
ईघट भीतर अड़सठ तीरथ ज्यां में गुरु शब्द से गोता लगालेरे ।।
पांचों और पचिसों का खेल निराला गुरु ज्ञान से सुध लगालेरे ।
यां घट भीतर मालिक का वासा खोजी खोज लगालेरे ।।
खोज्यां विना पार नहीं पावे भैदी से भैद लगालेरे ।
बालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग घट का भैद लगालेरे ।।

[८५]

सत रंग के रंग में रंगदे पका लाल रे रंग रिजवा ।
ओम नाम की स्याम जमि हो ।।
हरि हरि की बूंटी हो भभ के भै की डोर पड़ी हो ।
ब्रह्म ब्रह्म लो छूटी हो देखके मेरा स्याम जोगिया आसा त्रशना टूटी हो ।।
यम की आसा टूटी हो भक्तों ने माया लूटी हो ।
तार तार से मिले हरि का नाम रे रंग रिजवा ।।
ऐसा चौला रंगना जिसमें गंगा जल भी डाला हो ।

बिन्द्रा वन की हरि घास में यमना तट नन्द लाला हो ॥
श्याम जोगियां या हो बसन्ती या वो बिल्कुल काला हो ।
देखने में आला हो चौले से मात्र दुसाला हो ।
तो पहन के जायें स्याम के धाम रे रंग रिजवा ॥
ऐसा चौला रतन अमोला सब के मन को भाता हो ।
वो पहनेगी नार सुवागिन पित्तम जिसको चाहता हो ॥
उठते बैठते सोते जागते याद पिया बस आता हो ।
इस पागल दुन्यां को छोड़ एक राम प्रभू से नाता हो ॥
हर तार तार में मिले हिर का नाम रे रंग रिजवा ।
गोविन्द नाम का गुल गुलाव उस चौले में छिड़का देना ॥
सत सुगन्धी डाल के इसमें चौला घूब वना देना ।
चांद व सूरज और सितारे चौले में चमका देना ॥
ज्ञान गोट लगवा देना फिर सुख से इसे सुखा देना ।
तो पहन के चौला जायें स्याम के धाम रे रंग रिजवा ॥

[८६]

सच्चे भक्तों की यारी से भगवान भी राजी हो जावे वो ।
जगत् जंजाल के सब प्रपन्च फिके लगे इक राम प्रभू से
नाता रह जावें वो ॥
जो होते हैं कम भक्त वो भगवान को बदनाम कर जावेंवो ।
भक्त वोही जो रहे लोलिन संत में और दुनियां को सत की
राह बता जावेवो ॥
भक्त और भगवान में कुछ अन्तर नांहीं जो अपने आप में
समां जावेवों ।
बालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग आपाने आपही समजावेवो ॥

[८७]

हर सांस सांस में करूं दोय प्रणाम सतगुरु जी थे बहुत
करयो उपकारोजी ।
अनेक जनमों से सूतो म्हारो हँसो ज्याने ज्ञान उभारोजी ॥
कहां तक करू बड़ाई सतगुरु जी थकत भयो मन बुद्धि चित
हमारोजी ।

थाकी क्रिया से पाय लियो निज घर आनन्द रूप अपारोजी ॥
अब महाने डर नाहीं है निर भय कियो निसतारोजी ।
बालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग ने पायोछ सत दिदारोजी ॥

[८८]

कला भी एक युगती है युगती से मोक्स हो जावेरे ।
गाने की भी एक कला है जो सब के मन को बहलावेरे ॥
बजाने की भी एक कला है जो सब के मनको भावेरे ।
नाचने की भी एक कला है जो सबको रिझावेरे ॥
बोलने की भी एक कला है जो सबको मोहित बनावेरे ।
बालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग युगती से मुक्ति पावेरे ॥

[८९]

हम सव माही सब हम माहीं यही ज्ञान तंत सारारे ।
भूल भरम को दूर भगाया अनभो प्रकाश अपारारे ।
गट आकाश मट आकाश महा आकाश में समायोरे ये से
ही में आपा माहीं आपारारे ॥
ब्रह्म आत्मा एक है सत चित आनन्द स्वरूप ज्ञानी जिसे
जानत है निज दिदारारे ।
पृथ्वी धरन गगन सितारारे इन सबमें ही बहु रूप अपारारे ॥
बालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग सागर रूप अपारारे ।

[९०]

सत संग की महिमा भारी सन्तो जाने जानन हारारे ।
कांगा से हंस कर देवे जीव से ब्रह्म रूप अपारारे ॥
यां की महिमा कहां तक कहूं थकत भया संसारारे ।
असत स्वरूप को मिटा के सत का किया भेवारारे ॥
बालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग सतसंगयों का प्यारारे ।

[९१]

तुरया अतित साक्षी चेतन जाने जानन हारोरे ।
जाग्रत को वासो नेणां में वतलावे सपन को कन्ठ पसारोरे ॥
सुसोपति रव्य वसे तुरया को नाभी पसारोरे ।
नाभी से इक जोत चलत है ब्रहमन्ड में लियो हिलोरोरे ॥

उसि हिलोरे में संकल्प विकल्प होकर मन को कियो
पसारोरे ।
याँ मनका पसारामें सबकोई पंसया डूब मरयो संसारोरे ॥
वालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग चेतन रूप अपारोरें ।

[६२]

ऐसा देश हमारारे सन्तों ऐसा देश हमारारे ।
आवेना जावे मरे नहीं जनमें आनन्द रूप अपारारे ॥
प्रकृति पुरुष माया नहीं पहुंचे नहीं काल का चारारे ।
पांच तन्त तीनों गुण नाई उत्पति स्थिति से न्यारारे ॥
येहां देसां में वोही पहुंचे गुरु शब्द सिर धारारे ।
वालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग येक अखंडी निरधारारे ॥

[६३]

आपा माही आपको देख्या असा खेल अजब निरालारे ।
येक बूंद सागर में मिल गई होगई सागर रूप अपारारे ॥
रंग रूप रेख नहीं उनके निरभय आनन्द रूप अपारारे ।
देख-देख कर मेरा मन मस्त हो गया कहन सुननसे न्यारारे ॥
बालाराम सतगुरु के भरणे नोरंग आपां माहीं आप
निरालारे ।

[६४]

ऐसा देश हमारारे सन्तो कहन सुनन से न्यारारे ।
बोलता पुरुष प्रकृति से न्यारा कहिये येक अखंडी निरधारारे ॥
सुरत शब्द वहाँ पहूंचे नाई अगम निगम के पारारे ।
येहां देसां में वोही पहूंचेगा गुरु सेन सिर धारारे ॥
समज्या सन्त तो पार उतर गये लख्या रूप दिदारे ।
बालाराम सत गुरु के सरणे नोरंग आनन्द रूप अपारारे ॥

[६५]

भूल्या जीव भरम में भिटके भोगे दुःख सुख भारीरे ।
मान बड़ाई में फंसकर भोगे लख चौरासीरे ॥
अपनी अपनी गा गा कर औरों से करे लड़ाइरे ।
ऐसे जीव नरकां में जावेला भोगे कस्ट अपारीरे ॥
मान मानरे नर अज्ञानी तूने सतगुरु यों समझाईरे ।

दिल मत दुखावो किसिका येही सत उपदेसा भारीरे ।।
बालाराम सत गुरु के सरणे नोरंग अपने मनको समजाइरे ।

[९६]

समझ समझरे नर मुड़ अज्ञानी तेरो मोसर बित्यो जावेरे ।
गया वक्त फिर हाथ नहीं आवे पीछे पछतावेरे ।।
करता भोगता अःन्ते करण को धर्म बतलावे तू क्यों भर मावेरे ।
भूख प्यास प्राणों का धर्म है सत ग्रन्त यूं बतलावेरे ।।
प्राकृति माया का धर्म कर्म को आतमा अपने में अपनावेरे ।
इन सब का द्रस्टा स्याकसी आत्मा सतगुरु यूं समजावेरे ।।
बालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग अपने मन को समजावेरे ।

[९७]

शुद्ध आत्मा परमात्मा को प्राप्त हो जावेरे ।
मान बड़ाई छल कपट से नित न्यारे रह जावेरे ।।
संत धर्म में रहे लोलिन सन्तोसा अमरत पीया जावेरे ।
निरमल निरका ईक अमरत भरिया ज्याने सुगरा नर पी जावेरे ।।
असे अमरत को पीकर अमर हो जात है फिर नहीं आवे जावेरे ।
बालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग परमात्मा में मिलजावेरे ।।

[९८]

सत चित आनन्द रूप हमारा सन्तो सत चित आनन्द रूप हमारारे ।
आवेना जावेना मरे नहीं जनमें सदा रहे निर धारारे ।।
ख्याली खेल खेलता खेल का मांहीं फिर भी रहे नित न्यारारे ।
आप अखन्ड़ी चेतन कहिये सब का जानन हारारे ।।
अपनी मोज में आप ही रहता जाने कोई जानन हारारे ।
बालाराम सतगुरू के सरणे नोरंग सदा रहे मतवारारे ।।

[९९]

माया महा ठगनीरे सन्तों ज्याने मोय लिया सन्सारारे ।
काम क्रोद का लग्या मोरचा विशे बजार बजार बोपारारे ।।

पांच विस्यों की पांसी डाली तिरगुण जाल पसारारे ।
पांच पच्चीसों वने वोपारी लाद लाद कर हारारे ॥
ई माया ने सवको फंसाया वाकी वचे हरिजन प्यारारे ।
ई माया से वचना चाहो लेवो सतगुरू का सहारारे ॥
वालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग ने त्याग दिया माया का पसारारे ।

[१००]

दरसन दिज्यों जी म्हाने दरसन की मन में आवेछें ।
दरसन पाकर वहुत सुख पावां आनन्द रूपी अमरत पीवांछां ॥
थाका दरसना की खातिर वन-वन में बिटकावां छां ।
भक्तों की लाज राकज्यो थे नट नागर कहलावों छों ॥
वाला राम सत गुरू के सरणे नोरंग दरसन पावेछें ।

[१०१]

जाग जागरे प्राणी मानुश जनम फिर नहीं पावेरे ।
मानुश जनम देवांने दुरलव वेद शास्त्र यूं समजावेरे ॥
ऐसी योनी पायकर फिर क्यों पिछतावेरे ।
ई देही में साहिव का वासा खोज्यां से पावेरे ॥
अव के तू चूक जायलो फिर चौरासी में भरमावेरे ।
वालाराम सतगुरु के सरणे नोरंन जागकर मानुश जनम सफल वनावेरे ॥

[१०२]

समज्या जोई आनन्द रूपी अमरत पीवेछें ।
बिना समज्या विन भिटकत भिटकत वहुत दुःख पावेछें ॥
समज्यां विना साहिव नहीं मिलता सतगुरु यूं समजावेछे ।
ई समज की खातिर मानुश चौला गोविन्द देवेछें ॥
वालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग समजकर अमरत पीवेछें ।

[१०३]

देख देखरे मनवा तन सत गुरु समजावेरे ।
मो माया में फंस कर भूल भरम में भरमावेरे ॥
काल वली का जव डंका वाजे फिर मनवा घवरावेरे ।
गुरु शवद को धारन करले ज्यांसे अमरापुर घर पावेरे ॥

यो सन्सार भरम का पड़दा ज्याने ज्ञान दृष्टि से हटावेरे ।
बालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग देखकर मंगल गावेरे ॥

[१०४]

थे आवोजी नन्दलाल हरिजी नइया पार लगावोजी आवो आवोजी ।
यो सन्सार महा दुःख दाई सुजत नाय किनारोजी पार उतारोजी ॥
मेंह सुनता आयाछां थे भक्तों की लाज बचाओ छो आकर दरस दिखावोजी ।
म्हारी भी थे लाज राखज्यो थे बनवारी दिनानाथ कहावोजी ॥
वालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग न दरस दिखावोजी ।

[१०५]

भक्त कहत है इस्वर बड़ो है इस्वर कहत है भक्त बड़ोई भाईरे ।
भक्त कहत है रहे जगत से निराला इस्वर के सरणाइरे ॥
इस्वर कहत है सबको सरणा गति देवे फिर भी रहयो समाइरे ।
भक्त और भगवान में कोई अन्तर नहीं बतावे जानत है कोई सजन भाईरे ॥
नाम रूप को मिटाके दोनों येक रूप होगये देख्यो अजब तमाशो भाईरे
"वालाराम" सतगुरु के सरणे 'नोरंग' इस्वर को सरणाईरे ।

[१०६]

थे आवोजी महाराज गजान्द द्रश दिखवोजी बेगासा आवोजी
रिद्धि सिद्धि के दाता कहावो सुद बुद देवोजी
सव देवा में पहले थान मनावे थे महाको भी काज सरावोजी
लड्वन को भोग लगत है मूसा की करो असवारी जी
नो निद्धी के दाता कहावो थे महांके भी आवोजो
वालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग ने द्रश दिखावोजी

[१०७]

आनन्द सरूपी आप अपारारे सन्तो आनन्द सरूपी अपारारे ।
अन्धकार तम ज्यां नहीं रहत है सोहंग आपों आप अपारारे ॥
उतपति स्थिति से न्यारा कहिये द्रस्टा द्रस्ट अपारारे ।

ज्ञानीजन गुरु मुखा जानता है आनन्द सरूपी का दिदारारे ।।
येसा येसा खेल खेलता साहिवा मेरा जिनका वारन पारारे ।
वालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग ने देख्या खेल अपारारे ।।

[१०८]

मानुश जनम सफल वनाले अमरत पिलेरे अमरत पिलेरे ।
ई काया में अमरत भरिया गुरु शब्द से पिलेरे ।।
वहुत जनमो में भव दुख पायो अब के ओसर आयोरे ।
अवके तू चूक जायलो फिर चौरासी में आयोरे ।।
वालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग अमरत पिलेरे ।

[१०९]

भरम जाल भूल से वनता ज्यामें डूब रह्यो सन्सारोरे ।
अन्धकार के पड़दे में जीव तिरगुण ताप पसारोरे ।।
तिरगुण सेयो भव वंधन वन जावे कह रह्यो संत जनसारोरे ।
तमोगुण से तामसी वन जावे रजो गुण में घमण्डी सारोरे ।।
सतोगुण में सन्तोसी वन जावे रहे धर्म को सारोरे ।
चैतन आतम तीनों गुणों से रहित वतावे गुरु शब्द से पावो
दिदारोरे ।।
वालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग ने भूल भरम को तोड़
दियो वन्धन सारोरे ।

[११०]

मात पिता और गुरु वन्दगी इनकी सेवा कर लेरे ।
सेवा से साहिव मिल जासी यू सायर समझावेरे ।।
मानुश को यो पहलो कर्तव्य इनको सफल वनालेरे ।
यां कर्मों से पार उतर जावे फिर नहीं चौरासी में आवेरे ।।
वालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग मन को यू सम जालेरे ।

[१११ [

परमारथ का काम करे जो ईश्वर को पावन हारारे ।
परमारथ कर्म करे जो रहता मुक्त अपारारे ।।
परमारथ से दाता वनजावे पूरण रूप भन्डारारे ।
इसके भण्डार में कमी कभी ना होती देखना खेल अपारारे ।।

प्रमारत से आत्मा बन जावे व्याप्क रूप अपारारे।
प्रमारत जो नर नहीं करे भोगे लख चौरासी मझ धारारे ।।
वालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग ब्रह्म अपारारे।

[११२]

संकल्प से यो मन बन जावे रच जावे सन्सारोरे।
इछा करके जीव रूप बन गयो भोगे दुख सुख सारोरे ।।
भोगत भोगत चोरासी में फिरता देखो प्रकृति को सकल पसोरोरे।
संकल्प से रहित होये के देखो आनन्द सरूपी आप अपारोरे ।।
आपा माही आप ही दिखता देख्यों खेल अपारोरे।
वालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग ने जान लियो उतपति स्थिति को भैवारोरे ।।

[११३]

मैं हूँ मुक्त अपारा प्रकृति का सकल पसारारे।
प्रकृति जिदर मुझे लेजाती वहीं रहता साक्षी अपारारे ।।
प्रकृति खेले खेल अपारा में ही खिलावन हारारे।
प्रकृति पुरुश का भेद अपारा सतगुरु विना नहीं जानन हारारे ।।
वालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग खेले खेल अपारारे।

[११४]

ग्यानी हो सो जाने सन्तो सुरत शव्द का भेद अपारारे।
सुरत में येक नुरत द्रशत है वोही स्वरूप हमारारे ।।
वां नुरत का ढंग निराला ज्याका रूप अपारारे।
ज्ञान का ही वाजा कहिये जान का ही ढोल नंगारारे ।।
यहां वाजा में अनभो वाजे जानत जानन हारारे।
वालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग सव्दा का ही खेल पसारे ।।

[११५]

कर देखो विसवास तुही है ब्रह्म अपारारे।
तुही प्रकृति माया वन जावे फिर भी रहता साक्षी अपारारे ।।
तेरा भेद तुही जाने अगम निगम भी पच-पच हारारे।

तुज में ही सतगुरु का वासा कहिये आनन्द रूप अपारारे ॥
वालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग छिन में भव से पारारे ।

[११६]

दृष्टि का खेल अपारारे सन्तो दृष्टि का खेल अपारारे ।
जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि वन जावे देख्या खेल अपारारे ॥
जीव दृष्टि से लख चौरासी में फिरता भोगे कष्ट अपारारे ।
ईश्वर दृष्टि से ब्रह्म बन जावे रहे आनन्द रूप अपारारे ॥
सतगुरु विना दृष्टि का भेद समझ नहीं आवे भिटकत फिरे गंवारारे ।
वालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग ने जान लिया दृष्टि का पसारारे ॥

[११७]

मेरा मेरा करता सब जग गया मेरा न हुआ कोईरे ।
मेरा क्या है येह भव फैरा है भूल भरम में फंसया सब कोईरे ॥
मेरा कुछ नहीं है सब कुछ तूही है पहूंचेगा सन्त कोईरे ।
जोग जुगती का तार लगाकर गुरू शब्द में डटता है कोईरे ॥
गुरु विना पार कोई नहीं पावे थकत भया सब कोईरे ।
"वालाराम" सतगुरु के सरणे 'नोरंग' मेरा नहीं कोईरे ॥

[११८]

सब्दां से समजाले प्राणी सब्दां से समजालेरे ।
यां सब्दां में वाण चालता परखे कोई सन्त हजूरारे ॥
परखन लागे पारख होगये तव ही से हुआ उज्यारारे ।
यां उज्यारा में अन्दकार नहीं रहत है चहूं दिश दिखे रूप घनेरारे ॥
यां रूपां ने वांही देखेलो जो सब्दां को परखन हारोरे ।
वालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग सब्दां में ही मस्त फकीरोरे ॥

[११९]

मोक्ष मुक्ति फकीरी कोई विरला नर पाते हैं ।
ज्ञान वैराग विवेक साधना कोई कोई कर पाते हैं ॥
गुरुमुखी नर कोई बनते हैं गुरुनन्द को विरले नर लेते हैं ।

सुवारत सुखी सब कोई होते हैं बिना सुवारत के कोई
विरले होते हैं ॥
बालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग मस्त फकिरी पाते हैं ।

[१२०]

भहती है इक गंग धारा ज्याने पी रहया सन्त जन सारा ।
पी पी कर मस्त होगये उतर गये भव से पारा ॥
ऐसी धारा को कोई विरला पीता जिनका भाग बड़ा प्यारा ।
अमर होयके कबू नहीं आते रहते हैं इक सारा ॥
जिनपे कृपा होवे सतगुरु की वोहो पीते हैं अमृत धारा ।
बालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग पी गया गंग की धारा ॥

[१२१]

महाने सन्त मिल्या अलमस्त फकीरारे ।
आसा न मार ममता न मारी मार लिया जग सारारे ॥
इनको मगर हुवा वैरागी जब पावे नुर दिदारारे ।
वां नुरां में मुरत नाहीं देख्या खेल अपारारे ॥
वहां पर आप ही आप और नहीं दूजा दरसत रूप अपारारे ।
वालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग अजब फकिरारे ॥

[१२२]

पलपल में सूरत निरखले पिया की जद पावे पियो पियारोये ।
पलकां का करू पालणां सत नामको देऊं हिलोरोये ॥
आनन्द में प्रमान्द दरसावे प्रमान्द सोही पितम पियारोये ।
पियाकी अटरियां में सुगरा नर पहुंचे वांको भाग वड़ोही प्यारोये ॥
अनेक जन्मों से वहु दुःख पायो सतगुरू पल में ज्ञान जगायोये ।
वालाराम सतगुरू नोरंग न अपनायोये ॥

[१२३]

नाम वड़ा संसार में देखो तिरने का आधारा ।
नाम लिया था वाल्मिकजी ने वो होगये ब्रह्म समाना फिर भी
रहे इश्वर के आधारा ॥
नाम लिया था मीरांबाई ने उनको कृष्णजी ने दिया अपना
आधारा ।

नाम लिया था भक्त प्रहलाद ने जिनका काज सुधार दिया
सरजन हारा ॥
नाम लिया नरसी भक्त ने जिनको मांयेरो भर दियो कर तारा ।
सभी भक्तों ने नाम के प्रताप से पार हुये भवपारा ॥
वालाराम सतगुरू के सरणे नोरंग न जान लिया नाम का
सकल पसारा ॥

[१२४]

प्रेम पन्त हमारा सन्तों प्रेम पन्त हमारारे ।
प्रेम कटारी जब से लागी आनन्द हुवा अपारारे ॥
प्रेम नाम साहिब को कहिये जानत जानन हारारे ।
जो जान गये वो पहुंच गये फिर नहीं आवे भज धारारे ।
प्रेम पन्त सब पन्तों से न्यारा कहिये अगम निगम के पारारे ॥
वालाराम सतगुरू के सरणे नोरंग नित्य पावे प्रेम दिदारारे ।

[१२५]

अवगुण भी गुण जांणरे जीव कों भी ब्रह्म पिछांणरे ।
अवगुण में गुण बन जावें गुण से पड़े पिछांणरे ॥
गुणों की ही पूजा होती जगत में आपान आप पिछांणरे ।
आपा माहीं करतार को देखले निज रूप को पिछाणरे ॥
वालाराम सतगुरू के सरणे नोरंग रूप को पिछांणरे ।

[१२६]

महाने सतगुरू दीनी अमर जड़ी-जड़ी ।
ज्ञान सिला पर घोटत लागी रहगई खड़ी-खड़ी ॥
अमर जड़ी में अमरत भरिया पी गई सुरता झड़ी-झड़ी ।
पी करके मस्त होगई दीवानी भई लड़ी-लड़ी ॥
दिवानी होगई जब से पितम से मिल गई रह गई पड़ी:पड़ी ।
प्रितम से मिलके बहुत सुख पाई रह गई अड़ी-अड़ी ॥
वहां पर दोनों एक रूप हो गये फिर ना रही लड़ा-लड़ी ।
वालाराम सतगुरू के सरणे नोरंग पीवत भरा-भरो ॥

[१२७]

ऐसा देस हमारा सन्तो ऐसा देस हमारारे ।

काया बिन आप रहिये माया का नाई ठिकानारे ॥
अज्ञान निद्रा में बहुब ही सोया अब मोये आन जगायारे ।
ज्यांग्या जब से हुआ प्रकासी आनन्द हुआ अपारारे ॥
सतगुरु महारा सांचा साहिवा दिना ज्ञान कटारारे ।
ज्ञान बान जब महारा चाले कट जावे भरम हृदियारारे ॥
यां बाना कों कोई विरला समझे लिख्या सन में दिदारारे ।
बालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग पावेछे ख्याली का दिदारारे ।

[१२८]

सत के अन्दर चित लगाले पावे तमासो गोबिन्द मुरारीको ।
आपा माही आप खेलता देख्यों खेल बिहारी को ॥
सतगुरु विनयो भेद समझ नहीं आवे योंही ज्ञान साहिब दिदारीकों ।
वालाराग सतगुरु के सरणे नोरंग न देख्यों खेल करतारीको ॥

[१२९]

निर भय देश हमारा सन्तो निर भय देश हमारारे ।
काल जाल भरम नहीं व्यापे सदा रहे निर धारारे ॥
आवेना जावे मरे नहीं जनमें सदा रहे अमरत की धारारे ।
सुरत सिला की पटरी पर कोई लड़त सन्त हजूरारे ॥
यां देसां की की क्या कहिये जांका वार न पारारे ।
यां देसां में महारा सतगुरु पूंचावे जिनका बड़ा उपकारारे ॥
वालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग निरभय आनन्द अपारारे ।

[१३०]

महारा काया नगर का राजाजी महाने आन जगावोजी ।
ई काया में पांच चौर वसत है यांसे आन वचावोजी ॥
आसा त्रस्ण ममता न्यारी ये देवेछे फांसो भारीजी ।
राजा विना या नगरो सूनी ईन आन उभारोजी ॥
मनसा वाचा कर्मना थे इनको सुद्ध कर जावोंजी ।
वालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग न अपनावोजी ॥

[१३१]

होनी होसों होके होई सदा रहो राम दिदारारे ।

घट में साहिब घट में ही पड़दा घट ही में जानन हारारे ॥
यां घट भितर बाग लगाया जाने कोई सन्त फकीरारे ।
यां बागां में वोही सल करन्दा जो सतगुरु का प्यारारे ॥
बालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग सधारहे अलमस्त फाकिरारे ।

[१३२]

सुन्न अटारी में पीव हमारा जाने जानन हारारे ।
सुन्न बिना साहिब नहीं मिलता देख्या खेल अपारारे ॥
सुन्न नाम उनमनी धारा परखे परखन हारारे ।
उनमनी धारा अन्तर मुखी विरती वांको विरला जन
जानन हारारे ॥
अन्तर मुखी में सज सुमरण होत है वांका भेद अगम
अपारारे ।
अगम अपारको भेद सतगुरु विना नहीं पावे भिटकत फिरे
गंवारारे ॥
बालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग पिया की अटरियां में
अपारारे ।

[१३३]

मोहन थारी वांसरी की येसी महारे लागी लागताइ प्रेम
लगन में जागी ।
कान बजाइ वांसुरी रे मोय लियो जग सारो महारे मन
में येसी लगी भूल गई सुद सारी ॥
अब थारे बिना कानजी मोये और कुछ नहीं भावे थे छो
महारा छेल छबिला दुन्यां देवे गारी ।
सासु म्हारी आवा बिजली ननदल म्हारी नागी दोरानी
जठ्यानी तानामारे में कानजी आगी ॥
बालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग कान बड़ो वित रागी ।

[१३४]

तू क्या जिनके अजाणी मेरा स्वरूप अपार ।
खोजत खोजत थक गये बड़े बड़े जिनका पावन पार ॥
तू सो जानत पावे से सदगुरु की सेन अपार ।

काया बिन आप रहिये माया का नाई ठिकानारे ॥
अज्ञान निद्रा में बहुव ही सोया अब मोये आन जगायारे ।
ज्यागया जब से हुआ प्रकासी आनन्द हुआ अपारारे ॥
सतगुरु महारा सांचा साहिबा दिना ज्ञान कटारारे ।
ज्ञान बान जब महारा चाले कट जावे भरम हंदियारारे ॥
या बाना को कोई विरला समझे लिख्या सन में दिदारारे ।
बालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग पावेछे ख्याली का दिदारारे ।

[१२८]

सत के अन्दर चित लगाले पावे तमासो गोबिन्द मुरारीको ।
आपा मांही आप खेलता देख्यों खेल बिहारी को ॥
सतगुरु बिनयो भेद समझ नहीं आवे योंही ज्ञान साहिब दिदारीको ।
वालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग न देख्यों खेल करतारीको ॥

[१२६]

निर भय देश हमारा सन्तो निर भय देश हमारारे ।
काल जाल भरम नहीं ब्यापे सदा रहे निर धारारे ॥
आवेना जावे मरे नहीं जनमें सदा रहे अमरत की धारारे ।
सुरत सिला की पटरी पर कोई लड़त सन्त हजूरारे ॥
यां देसां की की क्या कहिये जांका वार न पारारे ।
यां देसां में महारा सतगुरु पूंचावे जिनका बड़ा उपकारारे ॥
वालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग निरभय आनन्द अपारारे ।

[१३०]

महारा काया नगर का राजाजी महाने आन जगावोजी ।
ई काया में पांच चौर वसत है यांसे आन बचावोजी ॥
आसा त्रस्ण ममता न्यारी ये देवेछे फांसो भारीजी ।
राजा बिना या नगरो सूनी ईन आन उभारोजी ॥
मनसा वाचा कर्मना थे इनको सुद्ध कर जावोंजी ।
वालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग न अपनावोजी ॥

[१३१]

होनी होसो होके होई सवा रहो राम दिदारारे ।

घट में साहिब घट में ही पड़दा घट ही में जानन हारारे ॥
यां घट भितर बाग लगाया जाने कोई सन्त फकीरारे ।
यां बागां में वोही सल करन्दा जो सतगुरु का प्यारारे ॥
बालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग सधारहे अलमस्त फाकिरारे ।

[१३२]

सुन्न अटारी में पीव हमारा जाने जानन हारारे ।
सुन्न विना साहिब नहीं मिलता देख्या खेल अपारारे ॥
सुन्न नाम उनमनी धारा परखे परखन हारारे ।
उनमनी धारा अन्तर मुखी विरती वांको विरला जन
जानन हारारे ॥
अन्तर मुखी में सज सुमरण होत है वांका भेद अगम
अपारारे ।
अगम अपारको भेद सतगुरु बिना नहीं पावे भिटकत फिरे
गंवारारे ॥
बालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग पिया की अटरियां में
अपारारे ।

[१३३]

मोहन थारीं बांसरी की येसी महारे लागी लागतांइ प्रेम
लगन में जागी ।
कान बजाइ बांसुरी रे मोय लियो जग सारो महारे मन
में येसी लगी भूल गई सुद सारी ॥
अब थारे बिना कानजी मोये और कुछ नहीं भावे थे छो
महारा छेल छबिला दुन्यां देवे गारी ।
सासु म्हारी आबा बिजली ननदल म्हारी नागी दोरानी
जठयानी तानामारे में कानजी आगी ॥
बालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग कान बड़ो बित रागी ।

[१३४]

तू क्या लिखरे अजाणी मेरा स्वरूप अपार ।
खोजत खोजत थक गये वड़े वड़े जिनका पावन पार ॥
तू जो जानत चावे ले सदगुरु की सेन अपार ।

मेरा स्वरूप वोही लिखला जो सत शब्दां का करत बोपार ॥
एक बूंद सागर में मिल गई जिनका वारा न पार ।
वालाराम सतगुरु से सरणे नोरंग रूप अपार ॥

[१३५]

थे आवोजी नटनागर न्या पार लगावोजी आवो आवोजी ।
था बिन महां को कुण छ जगम झूटो छ संसारोजी ॥
थे छो महांका सांचा पितम महांने द्रश दिखावोजी ।
था बिन महांने कुछ नहीं सुवावे रात दिनयो विरे सतावेजी ॥
मेह छा थाका सरणा गत महाने आन गले लगावोजी ।
वालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग ने अपनावोजी ॥

[१३६]

पन्च पसलों करवाल प्राणी पन्च पसलो करवाल ।
पहली थारा पांचों पन्चां न सम जाल पाछ उपर को घर पाल ॥
उपर का घर समज्या से पावे शब्दां से समजाल ।
शब्दां माही वाण चालता ज्यांका निसांण सही लगाल ॥
फिर थारी भूली भोंम को पाल ज्ञान का झण्डा गड़वाल ।
वालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग पन्चांन सम जाल ॥

[१३७]

मैं हूँ व्याप्क रूप मुझ से नहीं कोई न्यारारे ।
मैं हूँ साक्षी रूप सवका प्रकाश अपारारे ॥
मेरी सता से प्रकृति चलती देखो खेल अपारारे ।
मेरा भेद अगम अपारा सतगुरु विना नहीं पावन हारारे ॥
अज्ञान दृष्टि से भव संसार महा दुख पसारारे ।
ज्ञाद दृष्टि से आनन्द रूप मुक्त अपारारे ॥
वालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग दृष्टि का दृष्टा रूप
ब्रह्म अपारारे ।

[१३८]

रुत आइरे होली खेलन की रुत आइरे ।
सत को स्यालू ओढ़ सुवागण प्रेम को थुरमो सार पच रंग
का इसमें रंग डालदे जद खेलेलो नन्द लाल ॥

पांच सकी मिल खेलन लागी प्रेम पिचकारी की भरदी गगरी
जद वो खेल रह्यो नन्दलाल ।
फागन में इक पिया मिलत है ज्ञान गुलाल गरी ऊड़ाई ज्यामें
भिग रह्यो संसार ।।
बालाराम सतगुरू के सरणे नोरंग ऐसी होली अपार ।

[१३६]

जोगी जग से न्यारा सन्तों जोगी जग से न्यारारे ।
यह संसार महा दुःख धाई डुबत है सन्सारारे ।।
जोगी जुगत से खेल निरखे साहिब रूप दिदारारे ।
ऐसे जोगी को वोही जाने सूरत शब्द का जानन हारादे ।।
यां शब्दां का जो होवे पारखी वोही निरखे निरंजन दिदारारे ।
बालाराम सतगुरू के सरणे नोरंग जग से न्यारारे ।।

[१४०]

जगत सुख महा दुःख दाई आत्म सुख सदा रहत नित भाई ।
जगत सुख कभी मिल जावे कभी मिट जावे भाई ।।
आत्म सुखी रहता है प्रम आनन्द माई-भाई ।
जो आत्म को अपनाई उसिने लख चौरासी से पिन्ड छुड़ाई भाई ।।
जगत सुख में फंस रह्या संसारा डुबत है नित भाई ।
आत्म सुखको कोई विरला जन पावे जिनको सतगुरु पूरा मिल
जावे भाई ।।
बालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग आत्म रूप रहता है भाई ।

[१४१]

देख्यो अजब तमासो सन्तों देख्यो अजब तमासो ।
पचरंग की इक साड़ी रंगाई ज्यामें घूब धरयो प्रकासो ।।
ई साड़ी में न्यारा न्यारा रंग लगाया एक तार को धर दियो
सांसो ।
ई सांसा में बासा कहिये देख्यो खेल निरासो ।।
ई निरासा में खेल खेलता योही बड़ो तमासो ।
बालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग योही साँचो खेल गुरांको ।।

[१४२]

पार ब्रह्म माया बिन थाया जिनका वारन पारारे।
एक ही ब्रह्म सकल में व्यापक कहिये जाने शब्द विचारारे॥
शब्द सरूपी आप ही देवा निराधार निरधारारे।
या शब्दाँ की करे खोजना वोही पावे ब्रह्म दिदारारे॥
ऐसा मेरा दाता कहिये जिनका वारन पारारे।
बालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग निरखे ब्रह्म दिदारारे॥

[१४३]

अनभो ज्ञान में वास बसालेरे प्राणी अनभो ज्ञान में वास बसालेरे
अनभो विना मोह नहीं भागे निज नाम में वास बसालेरे।
अनभो नाम अगम की वातां थारा मन न सुरता में बसालेरे
सुरता मन जब एक रूप हो जावे फिर आत्म में बास बसालेरे
आत्मा में इक प्रमात्म बतलावे ज्या में मनन शक्ति से वास बसालेरे
बालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग अनभो बास बसालेरे

[१४४]

देख्या हदर फदर का खेल निराला ज्यामें बाज रया संतारा।
यां वाजां को सुन करके मस्त होगया फिर नहीं आवे दुवारा॥
ऐसा वाजा वाजे सन्तो हर तार तार में रूप दिदारा।
झालर शंख फकावत वाजे और नगारा न्यारा॥
सवी साज वाज वाजे जिनका तार इक सारा।
वालाराम सतगुरु सरणे नोरंग पार हुवा भव पारा॥

[१४५]

मन मन्दिर में स्याम दरसत है दिखे रूप अपारारे।
इस मन्दिर में ज्ञान का दीपक जोले सुरता का खोल किनारारे॥
जब वो दीपक जलने लागे प्रकाश होवे अपारारे।
वां प्रकासां में नूर अपारा द्रशत रूप दिदारारे॥
यां रूपां में कोई और न दूजा आप ही सरजन हारारे।
असे मन्दिर की क्या करूं वड़ाई कहने में नहीं थकत भया सन्सारारे॥
बालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग मन्दिर में रूप अपारारे।

[१४६]

यों संसार जादू की नगरी भूल रह्यो सन्सारोरे ।
काया जादू कहिये माया जादू-जादू को ही सकल पसारोरे ॥
बादीगर ने खेल रचाया खिला दियो रंग न्यारो न्यारोरे ।
आपही जादू रचता आप ही जादू गारोरे ॥
ई जादू को कोई भेद न समजे भिटकत फिरे गंवारोरे ।
बालाराम सतगुरू के सरणे नोरंग जादू को भेद अपारोरे ॥

[१४७]

जाग्या होसो पावे सन्तों जाग्या जो ही परखन हारारे ।
अज्ञान रात्री में बहुत जन्मों से सोया अब जागन हारारे ॥
ज्ञान का सूरज जब से उगया तब ही से में चैतन हारारे ।
ई चैतन में प्रमात्म द्रशत है सोही स्वरूप हमारारे ॥
असे कारोगर का ढंग निराला जाने जानन हारारे ।
बालाराम सतगुरू के सरणे नोरंग जागकर पावे अपना ही दिदारारे ॥

[१४८]

सांसा में बासा साहिब का आपा में आप समावोरे ।
सांसा नाम साहिब का कहिये ज्याने सतगुरू से अपनावोरे ॥
बिन सतगुरू भिटकता डोले जनम मरण में जावोरे ।
सांसा सुमरणी सतगुरु से चलती ज्यांका भेद विरला जन पावोरे ॥
सांसा बिखर जाने पर जोव रूप में भरमावोरे ।
सांसा को संम करके अपने में आप समा जावोंरे ॥
बालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग सांसा में स्थिर होके अपनें आपको भरंम मिटावोरे ।

[१४९]

यो संसार माया की नगरो माया कोही सकल पसारोरे ।
काया भो इक माया कहिये माया कोहीं खेल पसारोरे ॥
माया का इक महल वनाया ज्यामें खेल रह्यो सरजन हारोरे ।
याँ माया को खेल निरालो सबको नाच नचायोरे ॥

गुरू सेन बिन भेद नहीं पावे पच-पच मरयो सन्सारोरे ।
बालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग माया को भेद अपारोरे ॥

[१५०]

सतगुरु म्हारा ज्ञान का सागर दिन्यों रूप अपारारे ।
जब से मेरा भरम मिटाया तब ही से पाया दिदारारे ॥
सच्चे रूप माहीं नुर द्रशत है बरसत अमरत धारारे ।
यां रूपां ने वोही निरखलो जो सत गुरु का प्यारारे ॥
एक रूप सब को द्रसादे ऐसा जोग निरालारे ।
ऐसा जोगी अगम निगम से न्यारा जाने जानन हारारे ॥
इनकी भोम साहिब जागीरी जिनका वार न पारारे ।
बालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग सत ही का बोपारारे ॥

[१५१]

काम बलि बलवान जगत में मोय लियो सन्सारोरे ।
राजा रंक राव ओलिया सब को ही आन सतायोरे ॥
जोग करता जोगी मोये बन में मोये वन चर सारोरे ।
जल के अन्दर जल चर मोये मोये लिया पक्षी पशु सारोरे ॥
वड़े वड़ो को मोय लिया नर सव को ही नाच नचायोरे ।
बालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग काम को जान लियो भेवारोरे ॥

[१५२]

झलकत नुर अपारा सन्तो झलकत नुर अपारारे ।
सर्व घात के अन्दर झलके फिर भी रहे नित न्यारारे ॥
आप अखन्डी चेतन कहिये सबका जानन हारारे ।
येही मेरा प्रम तत है सार शब्द तत सारारे ॥
येह नुर तो उनके झलके जिनोने दुरमत दुर किया सारारे ।
बालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग नुर अपारारे ॥

[१५३]

सरगुण निरगुण से परे पुरुष अपरंम अपारारे ।
निरगुण से सरगुण बनजावे रचे खेल अपारारे ॥

सतगुरु बिना पुरुष का भैद नहीं पावे भौगे लख चौरासी
अपारारे ॥
ज्ञान घड़ी का तोल लगाले फिर नाहीं कमती बैसी होवन
हारारे ।
पूरा भया जद तोलन लागा माल खराही देवन हारारे ॥
बालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग सबका प्रकाशी अपारारे ।

[१५४]

चित चैतन में अमरत भरिया पीवे कोई तन्त पियारोरे ॥
चित में ध्यान धरले शब्द को सुरता को मोड़ किनारोरे ।
यां अमरत को सुगरा नर पोता जिनको वारन पारोरे ॥
अमरत पोके अमर होत है जिनको भाग बड़ोही प्यारोरे ।
अमर होये के साहिब से मिलता फिर नहीं पावे चौरासी
को फेरोरे ॥
बालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग अमरत भन्ढारोरे ।

[१५५]

प्रम देश मन भावे सन्तो प्रम देश मन भावेरे ।
प्रम देश परमातम कहिये जो आतम में द्रसावेरे ॥
आतम है वोही परमातम कहिये सतगुरु यूं समझावेरे ।
जीव ब्रह्म एक ही रूपा यांमें कोई भेद नहीं द्रसावेरे ॥
यह सब बातें एक रूप की है और रूप नहीं भावेरे ।
एक रूप बिना एक रूप की बातां कैसे समझ में आवेरे ॥
बालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग एक रूप में समावेरे ।

[१५६]

भूल भई जद जीव भयो मिटो भूल जद ब्रह्म भयोरे ।
गुरु बिना भूल नहीं मिटती गुरु से मुक्त भयारे ॥
मानुश तन पाय कर जो नर गुरु नहीं करता फिर
चौरासी में भयोरे ।
करले गुरु नर तूने सतगुरु भैद कह्योरे ॥
बालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग मुक्त भयोरे ।

[१५७]

सन्तोश बराबर धन नहीं है चाहे कोई कर देखो इतवारोरे ।
बिना सन्तोषके भिटकत भिटकत बहु दुख भोगे सन्सारोरे ॥
त्रस्णा चमारी ने मार हटाले जद पावे सन्तोष पियारोरे ।
यां सन्तोसां में पितम बसिया जिनको वारन पारोरे ॥
वां पितम से जाये मिल्या जद आनन्द हुयो अपारोरे ।
बालाराम सतगुरु सरणे नोरंग सन्तोष को खेल अपारोरे ॥

[१५८]

मैंहूँ अपरंम पार-पार नहीं मेरा सब मेरा ही सकल पसारारे ।
मेरी कला सवाई मुझ में झलकत रूप अपारारे ॥
मेरा ही प्रकृति स्वरूप नाम रूप अपारारे ।
प्रकृति का मैं ही साक्षी दृष्टा अपारारे ॥
बालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग मैं ही सरजन हारारे ।

[१५९]

लिखो राम रूप दिदारा सन्तो लिखो राम रूप दिदारारे ।
उठत बैठत सोवत जागत खावत पिवत सभी जगे राम
रूप दिदारारे ।
एक राम सकल में व्याप्क कहिये दूजे का सकल पसारारे ॥
मेरा राम उत्पत्ति स्थिति से न्यारा कहिये जाने जानन
हारारे ।
राम ही रमता राम ही रमिया राम के सिवा कोई और
न दूजारे ।
बालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग लिखे राम रूप दिदारारे ॥

[१६०]

सज सुमरण होत अपारो जाने कोई सन्त फकिरोरे ।
बिन जिव्या बिन बोलता देख्या कान बिना शब्द पसारोरे ॥
बिना नाक जो कुसबो लेता बिना नेन दिदारोरे ।
पांव बिना चलता हंसा बिना देहीं को देव निरालोरे ॥
ऐसे देवको खेल निरालो परखे कोई सत सुमरण वालोरे ।
बालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग ऐसो [illegible] ॥

[१६१]

ज्ञान बिना दिदारा नाहीं देख्या सौच विचारारे ।
जैसे दरपण बिना मुख नाहीं दीखे लाख जतन कर हारारे ।।
जतन बिन रतन बिगड़ जावे जानत है सब सन्सारारे ।
जतन करले बांवरे तूने सतगुरू समझा कर हारारे ।।
जतन बड़ा संसार में कर देखो इतवारारे ।
बालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग जतन कर पावेछे सत दिदारारे ।।

[१६२]

अजर अमर पूरण अखन्डी सुध चेतन निरधारारे ।
निराकार कार नहीं उनके फिर भी सदा रहे निरधारारे ।।
एक ही धारा सब से न्यारा पीवे कोई पिवन हारारे ।
पीगये वो तो पार उतर गये जिनका वारन पारारे ।।
यां देशां में वो ही जावेगा जो भूरा रहत हजूरारे ।
एक बार जो पार उतर गये फिर नहीं आवे मजधारारे ।।
बालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग सदा रहे निज धारारे ।

[१६३]

आनन्द रूप हमारा रे सन्तो आनन्द रूप हमारा रे ।
कर्म भरम नहीं व्यापे नहीं काल का चारारे ।।
करता करण क्रिया नहीं उनके रूप लेश नहीं सारारे ।
सुख दुःख से न्यारा कहिये सुद चेतन निरधारारे ।।
पांचों और पचिसों से न्यारा कहिये सब का जानन हारारे ।
वालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग आनन्द रूप अपारारे ।।

[१६४]

स्म होकर देखोरे भाई ज्याका भेद अगम अपारारे ।
स्म बिना भेद नहीं पावे भिटकत फिरे गंवारारे ।।
स्म है पृथ्वी स्म है आसमा स्म ही नोलख तारारे ।
स्म विना द्रस्टा नहीं पावे डूबेला मझधारारे ।।
स्म नाम स्थिर था ज्याने पावेला गुरुमुखी प्यारारे ।
वालाराम् सतगुरु के सरणे नोरंग स्म होकर पीवेछे अमरत दारारे ।।

[१६५]

जीवन मुक्ति मोक्स पधारत कोई विरला नर पाते हैं ।
संकल्प विकल्प से हुआ नचिता आत्म-रूपी धन को पाते हैं ।।
वां आत्म की मुक्त निसाणी परमात्मा में मिल जाते हैं ।
येही जीव ब्रह्म की एकता हुई दुजा नजर नहीं लाते हैं ।।
आपा माही आप को देखता येही मेरी मुक्त निसांणी
सुगरा नर पाते हैं ।
बालाराम सतगुरु के सरणे नोरंग मोक्स फकिरी पाते हैं ।।

।। आरती श्री सतगुरु की ।।

जय स्वामी सतगुरु दाता, जय स्वामी सतगुरु दाता,
आत्म अवगति, पूर्ण परमानन्द दाता ।
थाकी कला संवाई जग में, दूलो और नहीं दाता ।।
ऋषि मुनी और अवतारा, सब कोई गुण गाता ।
तेरा भेद वही नूर पाता, जिन पै कृपा करो दाता ।।
मेरा कुछ नहीं हैं, जग में; क्या भेंट चढ़ाऊं दाता ।
बालाराम सतगुरु की कृपा से, सेवक नोरंग आरती गाता ।।
—: ॐ जय स्वामी, सतगुरु दाता :—

श्री जय अम्बे मुद्रणालय, मिश्र राजाजी का रास्ता जयपुर ।

❀ भगवान का अवतार ❀

भगवान् एक अपूर्व जगमगाती ज्योती है । जो हर स्थान, हर समय तेजस्वमयी है । जितना देखो उतना ही प्रकाश है । आज संसार का सार उन्हीं भगवान की ज्योती में है ।

माना है रुप (अवतार) अनेक हैं । पर भगवान् के अवतार दो प्रकार के हैं (१) निमित, (२) नित्य ।

निमित्त जो होता है वह किसी कारण के लिए होता है । वह कारण को पूरा करके अदृश्य हो जाता है । वह आदर्श रखता है ।

और नित्य जो होता है वह हमेशा रहता है । इन रूपों में महापुरुष गुरु आदि बन करके परोपकार करता है । वह परोपकारी उपदेश देता है । वह देता ही रहता है ।

सन्त

सन्त किसको कहते हैं, जो इशारे में व सरलता से किसी भी बात को समझा देवे, और बन्धनों से छुड़ा देवे उसी को सन्त कहते हैं ।

जैसे कि एक समय की बात है कि एक व्यक्ति हर दिन भजन करता व कथा का पठन करता और अपने कर्म के निवृत्त होने पर बोलता कि राम नाम बोले, सो बन्धनों से छुटे । पर एक तोता था वह उसका प्रत्युत्तर दे देता कि क्यों बकते हो ? अज्ञान में फंसा तब उस पुरुष को तोते पर बड़ा गुस्सा आता और तोते को डांटता, सताता व कभी मारता भी ।

एक समय तोते को मारते समय एक सन्त वहां आ गये और बोले—क्यों भक्त ! भला इस जीव को क्यों सताते हो, तो उसने जबाब दिया कि मेरे पठन के बाद यह तोता गलत बोलता है । तब सन्त (ईश्वर रूप) ने कहा कि—सच तो कहता है तोता । तब यह पुरुष अपना सा मुँह लटकाए रह गया । तब तोते ने सन्त से कहा कि—महाराज आप इस बन्धन से निकलने की सूझ तो देवें, आप बड़े आदर्शवादी हैं । आप के परोपकार से मेरा भी उपकार हो जावेगा । उसी समय सन्त ने कहा कि तू अपने को निर्जीव बना

कर रखना, तब वह समझेगा। वह तुझ को बाहर डाल देगा, उसी सम
उड़ान भर कर मुक्त हो जाना। तोते ने ऐसा ही किया और पिंजरे से मु
हो गया। इसी को सन्त कहते हैं जो पर उपकार कर ज्ञान उपदेश देकर मुक्ति
मार्ग दिखाते हैं।

आध्यात्मवाद

अनादि काल से देहादिकों के साथ जो आत्मा का तादात्मय अभ्या
हो रहा है उस अभ्यास से ही पुरुष देह को आत्मा मानता है। और उसी
जन्म-मरण रूपी संसार चक्र में पुनः भ्रमण करता रहता है। अभ्यास
कारण अज्ञान है। उस अज्ञान की निवृत्ति जिस ज्ञान से होती है उसे आ
ज्ञान कहते हैं। तुम पृथ्वी नहीं हो और न ही जल, अग्नि रूप और नहीं वा
आकाश रूप हो अर्थात इन पाँचों तत्वों का समूदाय रूप इन्द्रियों का विशे
जो स्थूल ही है। वह भी परिणाम को मिलता है जो बाल्य अवस्था है।
कुमार अवस्था में नहीं, युवा अवस्था में है। यह दोनों अवस्था में नहीं
वृद्ध अवस्था में यह तीनों अवस्था भी नहीं रहती है। और नहीं शारीरि
हल चला ही सकता है। बाल्य अवस्था तो निषपक्ष हलचल है। और यु
अवस्था में उत्साह व जोश भरा रहता है। और वृद्ध अवस्था में तो यह ग
धीमी पड़ जाती है।

परन्तु आत्मा शरीर में ज्यों की त्यों रहती है। आत्मा अपने नि
स्वरूप में ही रहती है ?

प्रश्न—आध्यात्मिक ज्ञान क्या है ?

उत्तर—अपने स्वरूप को पालेना।

उत्तर—आत्मा जब संकल्प विकल्प करके जीव स्वरूप में हो जा
है तब दुःख भोगती है। और जब संकल्प-विकल्प मिट जाता है तब जीव स्व
में छोड़ कर वह आत्मा स्वरूप में आ जाता है। क्योंकि आत्मा ही कि
जीव के उपकार में राह देती है न कि स्थूल शरीर।

गति विधि आत्मा से ही आत्मा की गति विधि पहचानी जाती है
वही परम आत्मा को पाता है। और वही परम आत्मा परमानन्द को पा
वाला होता है। इतने पर भी उसे कर्म अवश्य करना पड़ता है। क्योंकि क

धान है। इसी से हर जीवधारी का परम उपकार होता है। और इसी उपकार में कठिनाइयों में भी वह अपने को सुखी समझता है, कभी शोक करता। अतः अपना परमानन्द वही परम आत्मा है।

कर्म

भगवान ने गीता में कहा है कि कर्म क्षेत्र का मतलब समझना जरूरीहै।

जैसे—एक व्यक्ति एक खजाने में कार्य करता है। और तब वह ढेर ी मुद्राओं के बीच ही उलझा रहता है। पर उसको उस पर दुख सुख नहीं ा क्योंकि उन मुद्राओं को अपना न समझ कर अपना कर्तव्य करता है। ोंकि वहां उसका कर्म है और उस कर्म के बदले उस सुचारू कर्म को समय भुगतान पाता है, अतः वह तनख्वाह है। अतः उस तनख्वाह में से यदि व रुपये गिर जायं या कोई झपट लेवे तो उसको बड़ा दुःख होगा क्योंकि ा रुपयों को वह अपना समझता है। अतः इस संसार में किसी भी वस्तु को पता समझने पर दुःख पैदा होता है। यही जब वह परम ईश्वर की ाझता है, तब उसको दुःख का भान नहीं होता है। इसी को कर्म योग हते हैं।

आत्मा के शत्रु

(१) राग और (२) द्वेष।

(१) राग—मन पसंद वस्तु पर मोहित होना तथा (२) द्वेष—ना सन्द वस्तु पर नफरत करना।

राग के कारण माया और लोभ पैदा होता है और द्वेष के कारण ोध व अहं उत्पन्न होता है।

अतः हर सासांरिक वस्तु राग द्वेष से भरपुर है। परन्तु परम सन्त नको भी अपना पथ प्रदर्शक बना कर प्रगति पाते हैं। अतः अपने को निर्बल न कर चलना तथा अपने को तुच्छ तिनका बना कर परम ईश्वर उपकार राह में लग कर चलना व जीव धारियों को राह पर लगा कर मोक्ष की राह बतलाना ही श्रेयष्ककर होता है।

माया से रहित रहकर चलना तथा क्रोध घमंड आदि से रहित रखना और पर उपकार में अपना जीवन बिताना ही इन राग द्वेष से वंचित रखना

है। कारण आत्मा के शत्रु बन जाने से जीव का पतन व नष्ट भ्रष्ट हो जाता है।

दोहा—

निन्दा जो हमारी करें, मित्र हमारा सोय ।
साबुन लेवे गांठ का, मेल हमारा धोय ।।

सच्चा मित्र

सच्चा मित्र हमारा वही है जो अपनी वाणी से किसी आत्मा ठेस न देवे, दुःख को हरता हो और शरीर से जीव का उपकार करे।

जैसे भटके यात्री को गलत राह न बताना तथा जीव (शरीर) की रक्षा की सामग्री जुटाना तथा भली से भली सामग्री पैदा करना और जीव का भीड़ पड़ने पर तन-मन-धन से उपकार करना।

परन्तु अधिकतर मयावी मित्र ही मीलते हैं जो प्रायः स्वार्थी होते हैं। जो प्रायः पराई वस्तु हथियाने की भावना रखते हैं।

एक आदर्श है कि भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन के मित्र बने जो सबके लिए अनुकरणीय है और एक पति-पत्नी भी परस्पर के मित्र है। क्योंकि भीड़ पर यह भी एक दूसरे का साथ देते हैं। यह भी आज पूर्वजों की परमपरा गत है।

बन्धन और मुक्ति

जैसे :—किसी को निद्रा आ जाती है तो वह शारीरिक व्यवहार भूल जाता है। इसी तरह से अगर कोई आत्मा जगत् में भी सब कुछ भुला रहे और कर्म भी करे तो उसका कोई बन्धन नहीं है, यह तो मुक्त ही है।

दुष्ट कर्म

जैसे कोई व्यक्ति किसी व्यक्ति का खून कर देता है तो उसके दिल धड़कन रहती है। वह किसी से छुप नहीं सकता है। इस तरह से कोई दुष्ट कर्म करके छुप नहीं सकता है क्योंकि उसे उसके करे हुए पाप का डर जाता है। इसलिए उसका डर रहता है तो वह सबकी नजर में आ जाता और किसी निर्दोष को सताना या अपने लालच स्वार्थ के लिए किसी को देना यही दुष्ट कर्म है।

सच्चा साधु

१. सकल विश्व की शान्ति चाहने वाला सबको प्रेम और स्नेह की

आंखों से देखने वाला ही सच्चा साधु होता है।

२. शान्ति का मधुर संगीत सुनाकर ज्ञान का प्रकाश दिखाने वाला कर्त्तव्य व वीरता का डंका बजाकर प्रेम की सुगन्ध फैलाने वाला अज्ञान और मोह की निद्रा से जगाने वाला ही सच्चा साधु है।

३. ज्ञान चेतना की गंगा बहाने वाला मधुरता की जीवित मूर्ति बनाने वाला ही सच्चा साधु है।

४. मन और इन्द्रियों के विकारों को जीतने वाला आत्मा विजय की सदा प्रतिक्षा में रहने वाला ही सच्चा साधु है।

५. आत्मा श्रद्धा की नौका पर चढ़कर निर्भय और निर्द्वन्द्व भाव से जीवन यात्रा करता है।

६. विवेक के उज्जवल झंडे के नीचे अपने व्यक्तित्व को चमकाने वाला सच्चा साधु है।

७. राग व द्वेष से रहित वासनाओं का विजेता और हिमगीरि के समान अचल अडिग रहने वाला ही सच्चा साधु है।

८. दुनियां के प्रवाह में स्वयं न बह कर दुनियां को अपनी ओर आकर्षित करता है। मानव संसार को अपने उज्जवल चरित्र से प्रभावित करता है वह सच्चा साधु है।

अज्ञान और ज्ञान

अज्ञान का स्वरूप :—मेरा और मैं इन दोनों में फंस कर आत्मा अपने आपको भूल जाता है।

ज्ञान का स्वरूप :—सत्‌चित् आनन्द सत् इसलिए है उसका कभी नाश नहीं होता है। वह सबको जानता है। आनन्द इसलिए है कि उसको कभी दुःख नहीं होता है।

प्रबल प्रेम के पल्ले पड़कर प्रभु के नियम पलटते देखा यानि सच्चे भक्त के वश में होकर भगवान को हर तरह का काम भी करना पड़ता है। प्रेम में संभलना मुश्किल हो जाता है। जो सम्भल जाता है, वह भवसागर पार हो जाता है।

सच्चा जीवन

१. भूख से कम खाना चाहिए।
२. बहुत कम बोलना चाहिये।

३. व्यर्थ नहीं हंसना चाहिए।
४. अपने से बड़े को जी कहना चाहिए।
५. सदा उद्यमशील रहना चाहिए।
६. गरीबी से नहीं शरमाना चाहिए।
७. धन पर नहीं अकड़ना चाहिए।
८. किसी पर नहीं झुंझलाना चाहिए।
९. किसी से छल कपट नहीं करना चाहिए।
१०. सत्य के समर्थन से नहीं डरना चाहिए।
११. सबसे मधुर बोलना चाहिए।
१२. संकट सहते हुए भी हसना चाहिए।

आत्मा और संसार

आत्मा जब तक संसार में फंसा हुआ रहता है तब तो संसार उसकी कदर नहीं करता है और जब आत्मा संसार से मुख मोड़ कर अपने आपको देख लेता है तो उसकी कदर संसार अपने आप ही करने लग जाता है। क्योंकि उसमें सत् का प्रकाश आ जाता है। सत् के आगे सबको झुकना पड़ता है। सत् की प्राप्ति ही ईश्वर की प्राप्ति है। और इसी को जीवन मुक्ति कहते हैं। जब हम दुनियां को चाहते थे तो दुनियां हमको नहीं चाहती थी और जब हमने दुनियां को चाहना छोड़ दिया तो दुनियां हमको चाहने वाली हो गयी। हम दुनियां वाले की महफिल में बैठे थे तो दुनियां हमको देखती थी और हम दुनियां वालों की नजर को देखते थे।

सच्ची मानवता

१. अज्ञानी को ज्ञान देना मानवता है।
२. ज्ञान के साधन विद्यालय आदि खोलना मानवता है।
३. भूखे प्यासे को संतुष्ट करना मानवता है।
४. भूले हुए को मार्ग बताना मानवता है।

सच्चा ज्ञान

१. जहां विवेक होता है वहां प्रमाद नहीं होता है।
२. जहां विवेक होता है वहां लोभ नहीं होता है।
३. जहां विवेक होता है वहां स्वार्थ नहीं होता है।
४. जहां विवेक होता है वहां अज्ञान नहीं रहता है।

पश्चाताप

१. प्रति दिन विचार करो कि मन से क्या-क्या दोष हुए हैं। और वचन से क्या-क्या दोष हुए हैं और शरीर से क्या-क्या दोष हुए हैं।

सच्ची मर्यादा

१. पहनने ओढने में मर्यादा रखो।

२. घुमने-फिरने में मर्यादा रखो।

३. सोने-बैठने में मर्यादा रखो।

४. बड़े-छोटे की मर्यादा रखो।

उत्तम भक्ति

भगवान किसी को अपनाता है तो भक्त के दिल में अपनी याद पैदा कर देता है। याद को आना और याद को रखना ही उसकी भक्ति है। क्योंकि जिसको जिसकी याद रहती है उसको उसकी प्राप्ति हो जाती है। और प्राप्ति का हो जाना ही मोक्ष है। मर के जीना क्या है। मैं तूं को त्यागना ही मर कर जीना होती है। जिसकी आत्मा दृष्टि हो जाती है। वह अजर अमर हो जाता है। एक ही देखता वह एक ही हो जाता है। जिस रूप से देखता है वैसा ही रूप बन जाता है।

प्रश्न:—भक्ति किसे कहते हैं।

उत्तर:—भय से रहित होने को निर्भय हो जाना और अपने स्वरूप की चाहना, इसी का नाम उत्तम भक्ति है।

प्रकाश

१. बिना परोपकार के जीवन निरर्थक है।

२. बिना परोपकार के धन निरर्थक है।

३. जहां परोपकार नहीं वहां मनुष्यत्व नहीं है।

४. जहां परोपकार नहीं वहां धर्म नहीं है।

५. परोपकार की जड़ कोमल हृदय है।

६. परोपकार का फल विश्व अभय है।

७. कल करे सो आज कर आज करे सो अब।

८. बिना धन के भी परोपकार हो सकता है।

९. दूसरे के हृदय को सदा शान्तमय बनाना चाहिए, इसी कहते हैं।

काल

मन सांसारिक विषयों में लिप्त रहता है। तो उसकी स्मरण शक्ति नष्ट हो जाती है। स्मरण शक्ति नष्ट है तो भय हो जाता है। भय हो जाता है तो काल बन जाता है। काल का मतलब जीवित और मरण मन जब सांसारिक विषय में लिपटा हुआ नहीं रहता तो स्मरण शक्ति नष्ट नहीं होती है तो भय नहीं होता। यह नहीं होता है तो काल नहीं बनता। काल नहीं बनता है तो जन्म नहीं होता और मरण भी नहीं होता है। जन्म मरण नहीं होता है तो आत्मा ईश्वर के सत् स्वरुप में समा जाती है।

आत्मा का खेल

आत्मा अपने को भूल जाता है। और जब भूलता नहीं तो पार हो जाता है। क्योंकि रचता भी आप ही है तो याद भी अपने को रखना चाहिए। याद रखता है तो आबाद रहता है। आबाद रहता है तो सत् स्वरुप को पा लेता है। सत् स्वरुप को पालने पर कभी जन्म मरण नहीं होता। क्यों कि ईश्वर के सत् स्वरुप में मिल जाता है।

आत्म विश्वास

आत्मा है वह कर्मों से बंधा हुआ है और एक दिन वह बन्धन से मुक्त होकर सदा के लिए अजर अमर परमात्मा भी हो सकता है। इस प्रकार के आत्मा विश्वास का नाम ही ज्ञान है।

कर्म

आत्मा यह स्वयं ही कर्म करने वाला है। और स्वयं ही उसका फल भोगने वाला भी है। स्वयं संसार में परिभ्रमण करता है। और ए दिन कर्म साधना के द्वारा स्वयं ही संसार बन्धन से मुक्ति भी प्राप्त लेता है।

मुक्ति क्या है ?

कर्म बन्धन से रहित होने का नाम ही मुक्ति है।

आत्मा क्या है ?

जो स्थूल सूक्ष्म कारण और इन तीनों शरीर से भिन्न हैं। और जो जा स्वप्न और सुपुप्ति इन तीनों अवस्थाओं का साक्षी सच्चीदानन्द है वही आ है। तृष्णा का नाम ही बन्धन है और उसके नाश का नाम मोक्ष है जिसने ऐस निश्चय किया है कि स्वरुप आत्मा ही है वह शारिरादिकों के व्यापार से रहि

जाता है । और वहीं जीवन मुक्त भी कहा जा सकता है अर्थात् जिस काल मन नाना प्रकार की कल्पना से रहित हो जाता है उसी काल में वह मुक्त हा जा सकता है ।

ईश्वर के दर्शन

जैसे मकान में बिजली मौजूद रहती है । पर सुइच चालु करने पर बिजली चालू होती है । इसी तरह से भगवान् तो सब जगह पर मौजूद है । अपने मन को जिस प्रकार सुईच की तरह चालू रखे तब हमें ईश्वर के हो सकते हैं । कहने का तार्त्यय यह है कि मन को ज्शवर में लगाने से होते है ।

मिट जाना मिट जाने से ही भगवान का आनन्द आता है । जिस र की अनाज को पिस कर हम आटा बनाकर उसकी रोटी बनाते हैं । खाते हैं । तब उसका आनन्द आता है । उसी प्रकार से भगवान के लिए मिटना पड़ता है मिटने का अर्थ है कि पहले स्मरण, मन, निश्यवाण्ना के मन को संकल्प विकल्प मिटाने पड़ते हैं तब आत्म स्वरूप को पाता है । तभी परमात्मा का आनन्द आता है ।

आत्मा का व्यापक स्वरूप

हे मानव ! धर्म और अधर्म सुख और दुःख दायित्व ये सब मन के है । तुझ व्यापक आत्मा के नहीं = अर्थात तेरा स्वरूप व्यापक है । उसके सब धर्म नहीं है । किन्तु परिच्छिल मन के सब धर्म हैं । अतः एव न तू कर्ता है, न भोगता है । किन्तु तू स्वयं मुक्त स्वरूप है । तू ही एक सच्चि- दानन्द और परिपूर्ण रूप से सब का द्दष्ठा है । वैसे तू ही स्वयं प्रकाश और समस्त जगत का द्दष्टा है । अपने से भिन्न किसी को द्दष्टा मानता है यही में वन्धन है ।

गुरु ज्ञान

मानव जब तक सच्चा गुरु नहीं बनाता और उनसे आत्म ज्ञान नहीं लेता जब तक उसको दुख ही दुख है । क्योंकि संसार में सुख है ही नहीं सुख तो अपने ही आत्मा में है । उसको गुरु ही बतलाते हैं । मन तो एक है । बंधन चाहो तो संसार में लगाओ मुक्ती चाहो तो ईश्वर में लगाओ । ईश्वर में लगाते हो तो संसार में नहीं लगा सकते हो अगर संसार में लगाओ तो ईश्वर में नहीं लग सकते क्योंकि मनतो एक ही है ।

अज्ञान की निन्द्रा से जागना

यह आवश्यक है पर अनेक घट रूपी उपाधियों के साथ वह अनेक को प्राप्त हो रहा है। और जब घट रूपी उपाधि नष्ट हो जाती है तब घटाकाश महाकाश से मिल जाता है। वैसे ही जिस अन्त करण में ज्ञान प्रकाश उदय होता है वही अन्तः करण नाश को प्राप्त हो जाता है। वहीं जीव जो अब तक बन्धन में था, मुक्त हो जाता है। बाकी सब बन्ध बड़े रहते हैं। उदाहरण के लिए दस मनुष्य सो रहे हैं वे अपने-अपने सवप्न देखते हैं। और जिसकी निन्द्रा दुर हो जाती है उसी का स्वप्न नष्ट हो है, और लोग अपने स्वपनों को देखते ही रहते हैं। और जो अज्ञान निन्द्रा से जाग और अपने ज्ञान स्वरूप को प्राप्त होकर सुख पूर्वक संसा विचरता है। एक कार्य हो सकता है। तन संसार में हो और मन ईश्व हो तब तो कार्य हो सकता है। यानी ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है, एव दो काज हो सकते हैं। क्योंकि गीता में भगवान अर्जुन से कहते हैं कि अ तू उन ज्ञानी तत्ववेता ब्रह्म निष्ट गुरु के पास जाकर छल-कपट को त्याग नम्र पूर्वक उनको प्रणाम करके पहुंचना वह तुझ को उस ज्ञान का करेंगे तब तुझ को आत्म ज्ञान का मालूम होगा, तभी तुझ को अ मिलेगा।

आशा वहां बाशा

कहते हैं कि आशा वहां बासा। संसार की आशा तो संसार में मि है। ईश्वर की आशा ईश्वर में मिलती है। और जैसे बालक सुख दुख रहित रहता है। वह आग को भी पकड़ लेता है। सांप को भी पकड़ लेगा क्योंकि उसको यह पता नहीं रहता है कि मुज को आग जला देगी। और काट लेगा। क्योंकि वह निलिप्त रहता है। इसी तरह से सच्चा भक्त वन से और समंअवस्था या लेने पर पाप पुण्य से अलग रहता है। क्योंकि अच्छा बुरा नहीं समझता है। और वह ईश्वर से मिल जाता है।

चेतनता

जब गाय अपना दूध आपही चूंक जातीहै तब उसका धनी उसे खूंटे पर देता है इसी प्रकार यह गाय रूपी चेतनता विसभूं में जाती है तो गुरु से सं पा कर बांध दी जाती है प्रेम वह कर्म की गति महान है कि उसे कोई पा सकता याद है जिसको जो आबाद है। भूल जाता जो बरबाद है। इसी

जिसको ईश्वर की याद है, जो आबाद और जिसने ईश्वर की याद भुलादी बरबाद है। सच्चाई कभी छुप नहीं सकती उसको कभी प्रकट होना ता है।

साधु

जग के दाने से या राख रमाने से या मुड़ पर तिलक लगाने से साधु हीं कहलाता जो तीन कर्म से बच चुका उसका नाम साधु है, सती, चोरी र मित्या और बाकी साधु की इच्छा यानि स्त्री सम्पर्क से बचना और रीर से चोरी नहीं करना व वचन से झूठ नहीं बोलना इन तीनों से बचता उसी का नाम साधु है फिर क्या होता है जैसे पावर हाउस से बिजली बन्द जाती है तो सभी जगह बिजली आती बन्द हो जायेगी। इसी तरह से मन वश में कर लेने से सब इन्द्रियां वश में हो जाती है। फिर उसमें शक्ति जाती है। जैसे बन्दूक में गोली भरी रहती है उसी तरह से ताकत में रहती है। जब गोली छोड़ दी जाती है तो उसकी ताकत खतम हो जाती है। सी तरह से जब मन एक जगह रहता है, तो उसमें ताकत हो जाती है। और मन बिखरा हुआ रहता है तो उसकी ताकत नहीं रहती है, और सुख ख भोगता रहता है। और लख चौरासी के आकार में फिरता रहता है।

शरीर में आत्मा

स्थूल सुक्ष्म और कारण तीन शरीर एक पिंजरे के अन्दर दूसरे पिंजरे समान है। जो आत्मा को ऊपर नहीं उड़ने देते। आत्मा इन तीनों पिंजरों अन्दर एक तोते के समान कैद हो जब पिंजरे काट दिये जाते हैं, तब वह पने होश में आती है, और उड़ने के लिए आजाद रहती है, यही सच्ची क्ति है जिसे प्राप्त करना है।

परमात्मा के नाम

(क) नाम परमात्मा का रूप है।

(ख) नाम सभी वस्तुओं को बनाने वाला है।

(ग) नाम जीवन है।

(घ) नाम सभी मनुष्य की ज्योति है।

आत्मा के शत्रु

आत्मा के सच्चे शत्रू क्या है? राग और द्वेषी राग [illegible] सिन्द चीज पर मोह। और दवेस क्या है; पसन्द चीज पर [illegible]

कारण माया और लोभ उत्पन्न होते हैं। और द्वेष के कारण क्रोध तथा उत्पन्न होते है। अगर आत्मा की उन्नति चाहते हो तो इन दोनों शत्रुओं बचना चाहिये।

ईश्वर प्रेम की वर्षा

वर्षा हो तो है जमीन में घास स्वतः ही उगता है। उसी से गुरु शब्द को धारण करने से ज्ञान अपने आप होता है। और किसान बोता है तो उसकी यही इच्छा रहती है कि खेत में धान पैदा हो, घास नहीं पर उसमें घास अपने आप मिलता है। इसी तरह से मनुष्य को गुरु के या ईश्वर की इच्छा रखनी चाहिये फल की नहीं। उसको फल अपने आप मिलता है। अगर कोई फल की ही इच्छा रखता है। तो उसे फल ही हो मोक्ष कदापि नहीं, अगर कोई सत कर्म करता है, और फल की व मोक्ष दोनों ही की इच्छा नहीं रखता तो उसे कल भी मिलता है, और मोक्ष मिलता है।

शरीर के दोष

मनसा वाचन कर्मना मन से किसी के प्रति बुरा भाव नहीं रख चाहिये वचन से ऐसा कोई शब्द नहीं कहना जिससे किसी की आत्मा को दु होवें। शरीर से ऐसा कोई कर्म वहीं करना जो किसी को दुख होवे इन ती कर्म से जो वच जाता है तो उसकी आत्मा शुद्ध या साफ हो जाती है, पाप पुण्य से भी अलग रह जाती है, और मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।

आत्मा और परमात्मा

किसी स्त्री को सांसारिक सुख कितना भी मिल जावे, फिर भी उस सच्चा सुख तो उसके पति के मिलने पर ही मिलेगा। इसी तरह आत्मा सांसारिक सुख कितना ही मिल जावे उसको सच्चा सुख नहीं मिलता। सच्च सुख तो उसको ईश्वर को प्राप्ति होने पर ही मिलता है। क्योंकि जैसे स्त्री पति होता है इसी तरह आत्मा का पति ईश्वर ही होता है। और जैसे स्त्री सम्बन्ध माता-पिता करवाते हैं। इसी तरह आत्मा और परमात्मा का स गुरु ही करवाते हैं। जैसे फूल में सुगन्ध होती है पर उसका भान सुंघने से होता है। इसी तरह गुरु शब्द को धारण करने से ईश्वर का ज्ञान होता है इसमें दो गति होती है। हंस और परमहंस भी जो आत्म ज्ञान को पा लेता है

उसका नाम हंस गति है। और जब आत्मा परमात्मा एक हो जाती है उसका नाम परमहंस गति है।

दोहा:—आत्मा परमात्मा में कर्म का ही भेद है।
काट दे यदि कर्म तो फिर भेद है ना खेद है।।

जैसे कोई पुरुष बादशाह से कंगाल हो जावे या कंगाल से बादशाह हो जावे, पर पुरुष से स्त्री नहीं हो सकता इसी तरह आत्मा कर्म से बन्धन में पड़ जाती है और कर्म से रहित हो जाने से मुक्ति हो जाती है। पर आत्मा तो वहीं रहती है। जैसे स्त्री से पुरुष व पुरुष से स्त्री नहीं हो सकता इसी तरह से कर्म या शरीर ही पलटते हैं पर आत्मा तो वहीं रहता है।

सच्चे विचार

१. जगत् अनादि है।
२. आत्मा अमर है।
३. आत्मा अन्नत है।
४. आत्मा ही परमात्मा होता है।
५. आत्मा ही कर्म बांधता है।
६. आत्मा ही कर्म तोड़ता है।
७. कर्म ही संसार है।
८. कर्म का क्षय ही मुक्ति है।
९. कर्म खुद जड़ है।
१०. अशुद्ध भावों से कर्म बांधते हैं।
११. शुद्ध भावों से कर्म टूटते हैं।
१२. स्वर्ग नर्क और मोक्ष है।
१३. पुण्य पाप है।
१४. जात पात कोई नहीं है।
१५. शुद्ध आचरण ही श्रेष्ठ है।
१६. अहिंसा ही सबसे बड़ा धर्म है।

अठारह दोष

(१) मिथ्यात्व असत्य विश्वास, (२) अज्ञान, (३) क्रोध, (४) मान, (५) माया कपट, (६) लोभ, (७) गति=सुन्दर वस्तु के मिलने पर हर्स, (८) अरति=असुन्दर वस्तु के मिलने पर खेद, (९) निद्रा, (१०) सोक,

(११) अधिक झूंठ, (१२) चोरी, (१३) मत्सर दाड़, (१४) भय, (१५) हिंसा, (१६) राग=आसकति, (१७) किड़ा खेल तमाशा नाच रंग, (१८) हास्य=हसीं मजाक।

इन अठारह दोष को आत्मा नहीं त्यागता है तो वह खुद मुक्त नहीं होती है। इनको त्याग देती है तो वह खुद मुक्त हो जाती है।

हिंसा

१. किसी जीव को सताना हिंसा है।
२. झूंठ बोलना क्रुध बोलना हिंसा है।
३. दम करना देखा देना हिंसा है।
४. किसी की चुगली करना हिंसा है।
५. किसी का बुरा चाहना हिंसा है।
६. दुख होने पर घबराना हिंसा है।
७. सुख में पल कर जकड़ना हिंसा है।
८. किसी की निन्दा और बुराई करना हिंसा है।
९. गाली देना हिंसा है।
१०. अपनी बड़ाई हाकना हिंसा है।
११. किसी पर कलंक लगाना हिंसा है।
१२. झगड़ा बनना फिर मजाक उड़ाना हिंसा है।
१३. किसी पर अन्याय देखकर खुश होना हिंसा है।
१४. शक्ति होने पर भी अन्याय को न रोकना हिंसा है।
१५. जालस्य और प्रमाद में निस्क्रिय पड़े रहना हिंसा है।
१६. अवसर आने पर भी सत्कर्म से जी चुराना हिंसा है।
१७. बांट कर नहीं खाना अकेले खाना हिंसा है।
१८. इन्द्रियों का गुलाम रहना हिंसा है।
१९. दबे हुए कलंक को उखाड़ना हिंसा है।
२०. किसी की गुप्त बात को प्रकट करना हिंसा है।
२१. किसी को अछुत समझना हिंसा है।
२२. शक्ति होते हुए सेवा न करना हिंसा है।
२३. बड़ों की विनय भक्ति न करना हिंसा है।
२४. छोटों से स्नेह सद्‌भाव न रखना हिंसा है।

२५. ठीक समय पर अपना फर्ज अदा न करना हिंसा है।
२६. सच्ची बात को किसी बुरे संकल्प से छिपाना हिंसा है।
२७. दुनियां कि जनजाल में तन्मय रहना हिंसा है।

माया और आत्मा

घर से मैं आ रहा था तो मुझ पर माया ने झपटा मारा तब मैंने माया को कहा माया क्या है, जो वस्तु अपनी नहीं है उसकी तरफ़ मन का चलना ही माया है। जैसे दूध को जमा कर दही बना लिया जाता है उसमें से मक्खन निकाल लिया जाता है तो जल में छोड़ दिया जाता है, अगर जल उसको बोले तेरे को मुझ में मिला लूंगा तो नहीं मिल सकता क्योंकि वह तो खुद ही मुक्त हो गया। इसी तरह मुक्त आत्मा हो जाने पर उसको माया बांध नहीं सकती, क्योंकि यह तो पवित्र हो चुकी है। इसलिए उसको माया नहीं बांध सकती। जैसे चोरों को अंधेरे में दाव लगता है उसी तरह से आत्मा अज्ञान से ही बंधन में रहता है। ज्ञान हो जाने पर मुक्त हो जाता है। अज्ञान क्या है, अस्तेय को सत्य जानना ही अज्ञान है सत्य को सत्य जानना ज्ञान है अज्ञान क्या है और सत क्या है कभी बनता कभी बिगड़ जाता है यही असत्य है जो सत्य है वह सत्य ही रहता है बच्चों को अगर अच्छा कोई नहीं रखता तो बच्चों को कोई बुरा नहीं कहेगा क्योंकि वह अच्छा बुरा जानता नहीं, उसके मां-बाप को ही बुरा कहेंगे। क्योंकि वह बच्चों को अच्छा नहीं रखते इसलिए उनको बुरा कहेंगे। बच्चों को बुरा नहीं कहेंगे क्योंकि वह असमंथ है इस तरह से सच्चा भक्त बन जाता है तो वह सब कुछ भगवान के सहारे छोड़ देता है तो उसका कोई काम बिगड़ जाता है तो भक्त का कुछ नहीं बिगड़ता क्योंकि वह भगवान के सहारे छोड़ देता है तो भगवान को लाज आती है इसलिए उस भक्त की लाज भगवान को रखनी पड़ती है। चिन्तन जो हो चिन्तामणी है। जिसकी चिन्ता करेगा उसी का गुण उसमें आ जायेगा। जैसे जल का सुवाविक गुण शीतलता है। पर जब उसको आग के ऊपर रखकर गर्म कर लेते हैं तो गर्म हो जाता है। यानी आग का समाकर लेने से अपना सुवाविक गुण को छोड़कर तेज का गुण आ जाता है यानी गर्म हो जाता है चिन्ता करे जो नर और की जो नर पशु जान चिन्ता करे ईश्वर की जो नर श्रेष्ठ जान जीता है मन तब तक तो जीव ही रहता है। मर जाता है मन तब ब्रह्म नाम पाता है। संकल्प से मन होता है और मन का रचा संसार यदि मन ना होता तो ब्रह्म ही सुख सार है। एक

रेडियो ऐसा चला है उसमें गाने वाला भी दिखता है। इसी तरह मनुष्य शरीर रूपी हृदय में भगवान दिखता है। कोई देखने वाला हो तब तेरा जलवा जिसने देखा वह तेरा हो गया। यानि एक बार ईश्वर के दर्शन होने पर बार-बार जन्म का दुख दूर होता है। नीचे जीव उसके ऊपर माया और माया के ऊपर ईश्वर तब जीव और ईश्वर के बीच में माया निकाल दी जाती है तो जीव और ईश्वर का सम्बन्ध हो जाता है।

जीवन मुक्त

ज्ञानवान शत्रु और मित्र में सम दृष्टि वाला रहता है। और संपूर्ण अवस्था में एक रस ज्यों का त्यों प्रकाश मान रहता है और सर्वत्र देखता हुआ सुनता हुआ स्पर्श करता हुआ। बोलता हुआ और चलता हुआ भी इच्छा से रहित रहहा है क्योंकि उसका चित महान् ब्रह्म में लीन रहता हैं। और इसी से वह जीवन मुक्त है।

प्रश्न और उत्तर

प्रश्न—आध्यात्मिक ज्ञान क्या है ?

उत्तर—अपने स्वरूप को पा लेना।

प्रश्न—अपने स्वरूप को पा लेने का मतलब समझाओ।

उत्तर—आत्मा जो है संकल्प विकल्प करके जीव रूप में हो जाता है और दुःख भोगता रहता है और तब संकल्प विकल्प को मिटा देता है, तो जीव रूप को छोड़ कर आत्मा स्वरूप में आ जाता है तब परमात्मा को भी पा लेता है। अर्थात् मोक्ष हो जाता है। और हमेशा के लिए आनन्द में रहता है। क्योंकि वह अपने में कर्ता हूं ऐसा भाव नहीं रखता है और राग द्वेप रहित रहता है और सुख में हर्ष नहीं करता, सूख-दुख करता दोनों में समान रहता है। इसलिए करता हुआ अकर्ता है। और नित्य आनन्द में रहता है और शरीर छोड़ने पर ईश्वर की परम गति में चला जाता है।

फूल

खीले हुए फूल को सब कोई तोड़ना चाहते हैं पर उसको तोड़ने में नुकसान होता है। और अगर तोड़े नहीं खाली देखते ही रहे तो उसका आनन्द आता है। और अच्छी गति मिल जाती है। अच्छी गति मिल जाना ही ईश्वर की प्राप्ति है और ईश्वर की प्राप्ति से ही दुःख दूर होते हैं।

प्रेम

प्रेम पद क्या है ?

प्रेम में कहना नहीं होता। कहना नहीं होता तो करना नहीं बनता तो कर्ता ही रह जाता है ।

रंग में रंग जानना क्या है ?

जो जिस रूप में चाहता है उसको उस रूप में मिल जाता है किसी वाजे ले ने कहा—अपने सुर में आवो यानी अपने ही ध्यान में रहना चाहिये।

चकोरी

आंख भी क्या चीज है चन्दा की चकोरी है चन्दा भी क्या चीज है कोरी का दिल चुराकर चित चकोरा है।

आत्मा समुद्र जैसा है

जैसे समुद्र में अनेक बूंदे और तरंग उत्पन्न होते हैं। फिर समुद्र में ही य हो जाते हैं समुद्र से भिन्न नहीं है । वैसे ही मन के संकल्प से यह जगत उत्पन्न हुआ है। और मन के ही लय होने से जगतलय हो जाता है। आत्मा दैव शुद्ध और मुक्त है। वह कदापि बन्धन को नहीं प्राप्त होता है। बन्धन और मोक्ष दोनों मन के धर्म हैं। मन के शान्त होने से बन्धन और मोक्ष का ाम ही नहीं रहता । आत्मा में मन के लय करने से सारा जगत लय को प्राप्त हो जाता है।

हरि का भजन

हरि भजे सो उतरे पार अर्थात् हे भगवान जो कुछ भी है सो आप ही हैं।

भजो = यानी भय से दूर हो जाना। इसी का नाम हरि भजना होता है। मस्तों की जिन्दगी में सदावहार रहती है। इसका अर्थ यह है कि वह नित्य हमेशा अपने ही ध्यान में रहता है।

माइरी मैं तो स्वप्ने में पायो गोपाल इसका अर्थ यह हुआ कि मैं देखी तो नहीं परन्तु हर उनके नाम को याद रखती हूं। इसलिए उसको स्वप्ने में पाया । जब सभी नदियां समुद्र में समा जाती हैं । इसी तरह से सच्चा भक्त भी सच्चा प्रेमी ईश्वर से मिल जाता है। सच्चाई में कष्ट बहुत सहन करने पड़ते हैं। जो इस बात का प्रण कर लेता है तो वह लिए कष्ट से मुक्त हो जाता है।

मन और ईश्वर

दोड़ ले मन जहां, तक तेरी दोड़ ।
दोड़ मिट्टी धोखा, मिथ्या वस्तु ठोर की ठोर ।।

दोड़ का यह अर्थ है । भाव अभाव इच्छा अइच्छा या संकल्प विक यह सब रहते हैं । तब तक यह जीव चौरासी लाख योनियों में जन्म मर रूपी दुःख भोगता रहता है ।

यह जीव गुरु की सरण ले लेता है तब गुरु इसको ज्ञान बतला जो उपर बतलाये हुये हैं । उन सबको ज्ञान से मिटाकर जीवन मुक्ति लेता है । और नित्य हमेशा आनन्द घन परमात्मा के आनन्द में म रहता है ।

आत्मा का क्या स्वरूप है ।

सुख शान्ति शीतलता आनन्द ज्ञान स्वरूप अगर कोई समुद्र के कि का मेल देख कर कहे कि हमने समुद्र को देखा है । पर उसने नहीं देख क्योंकि उसने मेल को ही देखा है आत्मा को कोई नहीं देखता । कल्पनाओं फंस कर मन इन्द्रियों के लालच में फंसा हुआ रहता है । लगन बिन मिल करतार लगन का मतलब संत स्वरूप में लय हो जाना । लय का मत संत स्वरूप में समा जाना । इसी को मोक्ष कहते हैं ।

आत्मा भिखारी

जैसे कोई राजा स्वप्न में भिखारी बन जावें और फिर जागने वह भिखारी नहीं रहता है । इसी तरह से आत्मा संसार के स्वप्न में अ को भिखारी बना लेता है । और जब ज्ञान हो जाता है । तब वह भिख बनना छोड़ देता है । भिखारी का अर्थ है कि अनात्मा के धर्म आत्मा अपने में मानता है । और आत्मा के धर्म अनात्मा में मानता है । इसी से वह बन्धन में रहता है । और जब ज्ञान हो जाने पर वह मुक्त हो जाता है । और वह अनात्मा के धर्म अनात्मा में ही मानता है वह आत्मा के धर्म आत्मा में ही मानता है । इसी से वह मुक्त रहता है ।

आत्मा का सुवाविक कर्म

आत्मा हमेशा ईश्वर की तरफ खींचती रहती है । पर वह स्वार्थ और लालच में फंस कर वापिस संसारे बन्धन में पड़ जाता है । जैसे कोई

चोरी या अनेक प्रकार के दुष्ट कर्म करता है । तो उसके अपने दिल में धड़कन या लज्जा उत्पन्न होगी पर वह उसको नहीं मान कर उस कर्म को कर लेता है । तो वह बन्धन में पड़ जाता है। बार-बार आत्मा का उपदेश क्यों करते हैं। आत्मा अपने निज स्वरूप को भूल जाता है, इसलिए उसको बरावर याद दिलाकर जगाते हैं।

सत की सुगन्ध

युगती बिगर जुगती नहीं, जुगती बिगर मुक्ति नहीं। जैसे किसी बगीचे में कोई जाता है । तो उसको फूलों की सुगन्ध आती है। इसी तरह आत्मा जब परमात्मा के बगीचे में जाता है । तो उसको आनन्द आता है। अगर आत्मा यह चाहती है मैं उसी आनन्द में रहूँ वह कभी उस आनन्द को नहीं छोड़ेगा क्योंकि उसको और कुछ कोई अच्छा ही नहीं लगता।

वाणी का विचार

जैसे कोई व्यक्ति साईकल चलाता है तो वह आगे देखता रहता है। कि मुझ से कोई टक्कर न हो जावें साईकल चलाने का कर्म भी चलता रहता और टक्कर वाली बात पर भी ध्यान रखता है। इसी प्रकार ज्ञानी प्रारब्ध रूपी भोग तो भोगता है पर वह ध्यान रखता है कि मुझ से पुनः कोई दुबारा कर्म लागू न हो जावे। तब वह कर्म करता है । तो उसको लागू क्यों नहीं होगा क्योंकि वह समझता है कि मैं कुछ भी कर्म नहीं करता हूँ। वास्तव में आत्मा कुछ भी कर्म नहीं करता है कर्म तो अज्ञान से होता है इसलिए वह अक्रिता ही रहता है।

सत का रंग

असत्य के रंग में तो सब को देखा पर सत्य के रंग में किसी-किसी को देखा। जी चुराना ही उसका काम होता है और जी चुराने से उसका काम बन जाता है। यानी उसका ध्यान उसमें लग जाता है ध्यान लगना ही उसकी प्राप्ति है प्राप्ति से ही उसको मोक्ष मिलता है । प्रेम किसी को लग जाता है। तो वह कह नहीं सकता है और बता भी नहीं सकता है। और सब कोई समझ भी नहीं सकता है पर कोई-कोई समझ लेते हैं जो समझ लेते हैं वह उसको पा भी लेते हैं जो पा लेते हैं वह उसको मोक्ष भी दे देते हैं।

जीवन मुक्ति के लक्षण

जिस ज्ञानी को अपना स्वरूप ही भूमि है। अर्थात् विश्राम का

है। जिसको अपने स्वरूप में विश्राम करके किसी प्रकार की भी चिन्ता नहीं होती है। चाहे देह रहे या नहीं रहे वही जीवन मुक्ति है। वही संसार में निवृत है। ब्रह्मा से लेकर सम्पूर्ण जगत मेरा ही रूप है। अर्थात मैं ही सर्व रूप हूं ऐसा निच्चय करने वाला जो पुरुष है वही निर्विकल्प समाधि वाला जीवन मुक्त है। वही विषय रूपी मल के सम्बन्ध से भी रहित है। वही शांत चितवाला है। और वही प्राप्त विषयो में इच्छा रहित है। वहीं परम शन्तोष वाला है। वहीं अपने आत्मानंद में ही पूर्ण है।

देह अभिमान पाप

जो देह के अभिमान से पुरुषों को पाप होता है। वह करोड़ो गो के वध करने वाले की शुद्धि के लिए शास्त्र में प्रायश्चित लिखा है। गो शुद्धि हो सकतीहै पर देह अभिमानि की शुद्धि के लिए शास्त्र में कोई भी प्रायश्चित नहीं लिखा। वास्तव में जाती आदि जो देह के धर्म है। उन धर्मों को जो आत्मा में मानते हैं। वही देह अभिमानी कहे जाते हैं और वे ही सदा वन्धायमान रहते हैं। और जो जाति वर्ण के धर्मों को आत्मा में नहीं मानते हैं। किन्तु अपने आत्मा को असंग नित्य मुक्त और शुद्ध मानते है। वे नित्य ही मूक्त हैं। क्योंकि शास्त्रों में दो दृष्टि कहीं है। एक तो शास्त्र दृष्टि दुसरी लोकिन दृष्टि शास्त्र दृष्टि से तो देहादि के धर्म के अभिमानों का नाम ही चमार है। क्योंकि अपने के चर्म का अभिमानों मानता है। और जो चर्म के अभि- मानों से रहित है। वहीं अपने को देहादि को से भिन्न नित्य शुद्ध और ... मानता है। वही मुक्त हो अर्थात वह जीवन के लिए अजर अमर है।

सन्तों का ज्ञान

सन्त महात्मा और शास्त्र वतलाते है कि मन ही से वन्धन और ... ही से मोक्ष हो मन को सांसारिक विषयों में लगा लेने से वन्धन में पड़ ... है। और मन को आत्मा में लगा लेने से मोक्ष हो जाती है। यानी ईश्वर ... प्राप्ति हो जाती है। जैसे पति व्रता स्त्री पियर में रहती है। पर उसका मन अपने पति में रहता है। इसी तरह से तन संसार में हो और मन ईश्वर में रहना चाहिये। मन ईश्वर में रहने का क्या मतलव ? इसका मतलव यह है जहां से संकल्प विकल्प उठे वहां पर ही लगा देना और जहां पर से भाव अभाव उत्पन्न होवें वहां पर ही लगा देना उसी का नाम मन को ईश्वर में लगा देना होता है। वन्धन और मोक्ष क्या है वन्धन कहते है हमेशा दुःख

आत्म भ्रान्ति

जो देहादि में चत्रिकार की आत्म भ्रान्ति हो रही है। में देह हुं
इन्द्रीय हुं में ब्राह्मण हुं में कता और भोक्ता हुं इस भ्रान्ति की जो निवृति हो
न में देह हुं न में कता और भोक्ता हुं किन्तु देहादि से परे इन सब का
साक्षी सुद्ध ज्ञान स्वरूप हूँ ऐसा अपने स्वरूप का जो यर्थात बोध है यदि शास्त्र
विचार का और गुरु के उपदेश का फल है आत्मा नित्य है और शारिरी
अनित्य है। इन दोनों के विवेचन करने वाले का नाम विवेकी है और आनन्द
रूप ब्रह्म की प्राप्ति का नाम मोक्ष है।

सच्चे दर्शन

सच्चे दर्शन से प्रसन्नता। प्रसन्नता से आनन्द। आनन्द से प्रेम।
आनन्द = प्रेम आनन्द से ईश्वर आनन्द। ईश्वर आनन्द से प्रेम गति प्रेम गति
से मोक्स गति। मोक्स गति से जीवन मुक्ति प्रेम के अन्दर सब कुछ भूल जाना
ही उसकी भक्ति है। श्याम ने राधा पर ऐसी पिचकारी मारी वह अपनी तन
मन की सुध भूल गई। तब उसने कहा मत मारो श्याम पिचकारी यानी अ
मुझ से सहन नहीं हो सकती। सत को पकड़ लेने से जीत होती है। ध्या
से अध्यान न ही होना चाहिये यानी सब कुछ करते हुये ईश्वर का ध्या
रखना चाहिये इसी को उत्तम भक्ति कहते हैं। आप अच्छे हो गये तो दूस
को भी अच्छा कर सकते हैं। एक रूप से भय का नाश और आनन्द
परमात्मा की प्राप्ति होती है। घर के अन्दर झाड़ु न देने पर कचरा अप
ही आप हो जाता है पर झाड़ु लगानी ही पड़ती है। इसी तरह से खोटे क
अपने ही आप हो जाते हैं। पर अच्छे कर्म करने पड़ते हैं अगर आत्मा सु
ही भोगती रहती है तो उसे दुःख का ज्ञान नहीं होता क्योंकि उसने क
दुःख भोगा ही नहीं दुख भोगने से ही अच्छे बुरे कर्म का ज्ञान होता है
कर्म करने में तो जीव स्वतन्त्रता है। यानी कुछ भी कर्म कर सकता है
कर्म का फल देना ईश्वर के हाथ में है। जैसे चुम्बक लोहे को खींच लेती
इसी तरह से मुक्त आत्मा हो जाने पर उसमें आर्कषन शक्ति हो जाती है
फिर उसकी तरफ दूसरी आत्मा खिचती रहती है जैसे लकड़ी के साथ
पत्थर या लोहा वांध दिया जाता है पर लकड़ी को भी डुबा लेगा क्यों
सम्बन्ध करने से बन्धन में पड़ जाती है देह धारया को दण्ड है। सब कोई
होना ज्ञानी काट ज्ञान से अज्ञानी काट रोय जैसे किसी आदमी के प

ोर पीछे लग जावे तो उसका बचना मुश्किल हो जाता है इसी तरह से इस
ीव के पांच चोर पीछे पड़े रहते हैं यही जीव को बन्धन में फंसाते हैं। अगर
ोई गुरुमुखी इन पांचो चोरों की रुखाली कर लेता है तो ईश्वर से मिल
ाता है। पांच चोर यह है—(१) काम (२) करोध (३) लोभ (४) मोह
(५) मय। आत्मा जब शरीर में रहती है तो उमसे सब कोई प्यार करता
जब आत्मा शरीर से निकल जाती है तो उससे कोई प्यार नहीं करता है
ात्मा से ही प्यार करते हैं।

सुक्ष्म ज्ञान

संसार का हर जीव सुख और आनन्द चाहता है पर उसको सुख और
ान नहीं मिलता है क्यों नहीं मिलता क्योंकि वह संसार का बना हुआ नहीं
है। जो उसको आनन्द मिले क्योंकि कहते हैं ईश्वर जीव हन्स अविनाशी
इसका मतलब है किसी जीव ईश्वर का हंस है इसलिए उसको ईश्वर से
ानन्द मिल सकता है।

ईश्वर को तीन स्वरूप बतलाया है सत्चित् आनन्द सत इसलिए है
के उसका नास कभी नहीं होता, चित इसलिए है कि वह सबको जानता है सो
ात्मा है इसलिए वह परमात्मा में मिल जाता है जीव का स्वरूप क्या और
आत्मा का स्वरूप क्या जीव का स्वरूप जीव का स्वरूप अज्ञान है आत्मा का
स्वरूप ज्ञान है परमात्मा का स्वरूप परमानन्द है क्योंकि आत्मा उसे पाकर
कभी दुख या जन्म नहीं पाता है क्योंकि वह परमात्मा में मिल जाता है।
जैसे सूरज की तरफ मुंख करने से छाया पिछे रह जाती है। जैसे उसके
सामने पीठ करने से आगे छाया हो जाती है इस तरह संकल्प विकल्प बन
जाने से जीव का स्वरूप बन जाता हैं क्योंकि जीव नाम अज्ञान का है और
संकल्प विकल्प भी अज्ञान का होता है और संकल्प विकल्प मिट जाने से
आत्मा का स्वरूप पा लेता है आत्मा स्वरूप पा लेने से परमात्मा में मिल
जाता है क्योंकि मिट्टी के अनेक वर्तन बना लेने से उनके नाम रूप भी जुदा
जुदा हो जाते हैं पर नाम रूप को मिटाकर स्वरूप सब का एक है और जैसे
सोना है उसके अनेक जेवर बना लिए जाते हैं। पर उसके नाम जुदा जुदा हो
जाते हैं। पर उन सब का सोना स्वरूप एक ही है और जैसे लोहा है

अनेक औजार बना लिए जाते हैं। पर उन सब का नाम रूप जुदा जुदा है जाता है। पर नाम रूप को मिटा कर सब का लोहा स्वरूप एक ही है। इ तरह से जीव नाम को मिटाकर आत्म स्वरूप को पा लेने से परमात्मा क भी पा लेता है। जैसे किसान है बीज बोता है तब एक बीज के अनेक बी उत्पन्न हो जाते हैं इसी तरह से कर्म अच्छा हो या बुरा उसका फल भ अनेक हो जाता है।

मानव

मनुष्य उत्तम और श्रेष्ठ बतलाया है क्योंकि इसमें योग भोग दो हैं शेष जितनी योनियां है वास्तव में भोग है योग नहीं है दुनियां कहती है काल खा जाता है पर यह नहीं जानती कि काल क्या है काल का स्वरू बतलाते हैं मन भवरां यह काल है जिसे लहरी लिपटाय ताहीं सग रमा फिरे फिर-फिर भटका खाय यह मन विषयों के अन्दर लिपटा हुआ रहता है काल स्वरूप बन जाता है और विषयों से मुख मोड़कर आत्मा में लिन जाता है तो परमात्मा में मिल जाता है माया ही माया को देखती है इसलिए वह जीव रहता है और जन्म मरण में आता है और ज्यों देखने वाला है जाता है सो आत्मा बन जाता है सो परमात्मा में मिल जाता है और ज परमात्मा ही रह जाता है और फिर माया को चलता है फिर भी माया से अलग रह जाता है फिर आगे कुछ कह नहीं सकते क्योंकि जैसे को स्त्री से पूछे कि तेरे पति में कैसा आनन्द आता है तो वह बतला नहीं सकती क्योंकि वह कह देगी तेरा पति तुझ को मिलेगा। तब पता ल जावेगा इसमें मुझ से जो गल्ती कोई शब्द निकले उसे क्षमा करना क्योंकि सुनने वाले भी आप और देखने वाले भी आप और लिखने वाले भी आप इसमें फिर गलती किसकी और क्या वह आप ही है जब आप ही हैं फिर यह खेल क्यों बनाया गया क्योकि यह खेल इसलिए बनाना गया कि यह संसार कसोटी है इसमें असली नकली की प्रकस्या होती है और प्रकाश करने वाला भी आप ही होता है जैसे बालक अपने ही आप खेलने लग जाता है और अपने ही आप रोने लग जाता हैं और हर किसी के पास चला जाता है। क्योंकि अपना पराया कोई नहीं समझता और भक्त को जिस रूप से भेज ता है तो वह वैसाही कर्म को करता है और जैसा ही उसको फल मिलता

समद्रिटी प्रेम संदर्भ इतना समझ जाने पर निर्जीव हो के रहना पड़ता है का मतलब संकल्प विकल्प मिट जाते हैं तब फिर जीव नहीं रहता है। त्मा ही रहता है सो परमात्मा में मिल जाता है इसी को ईश्वर की प्राप्ति लाया है ईश्वर के रूप से तो आप ही हैं पर संसार के रूप से आपका क।

नोवंरगीलाल

जब मैं दिवाना हो जाता हूँ तो मुझ पर दुनियां दीवानी हो जाती है कि मैं किसी पर दिवाना हूँ और जब दिवाने से दिवाना मिलता है तो कुछ कह नहीं सकता क्योंकि कोई और नहीं और जब और नहीं तो एक ही और जो एक ही है वो ही शेष है और जो शेष है वह सब कुछ है और जो क ही से प्रेम करने वाला और एक ही को मानने वाला और एक ही को जानने वाला वह भी एक हो जाता है।

प्रेम की बांसुरी

किसी भक्त के प्रेम की बांसुरी लग जाती है तो वह कुछ कह नहीं सकता क्योंकि कहने वाली बात ही नहीं है क्योंकि जब प्रेम की बांमरी बजेगी तब अपने आप ही पता लग जावेगा और जब पता लग जाता है तब भक्त कहलाता है।

"लाली देखन मैं गया, तो खुद भी हो गया लाल जब लाल हो गया तो जिधर देखता हूँ उधर लाल ही लाल नजर आता है क्योंकि लाल के सिवाय कुछ भी नजर नहीं आवे।

पूर्ण

सब बिद शुभ कार्य गजानन्द यानी जो सबकी इच्छा के अनुसार करताहै उसी का नाम पूर्ण है क्योंकि सबको पालता है देखते हैं पर देखने में अच्छा बूरा नहीं देखते इसलिए देखते हुए भी कुछ नहीं देखते हैं अपने सत स्वरूप को जान लेता है और दूसरी आत्मा को भी वह स्वरूप दिखाई देती है और मुक्त कर देती है क्योंकि सत का संग करने से सत स्वरूप हो जाता है तो मुक्त हो जाता है मुक्त हो जाने का नाम ही मोक्ष है और मोक्ष का मतलब फिर उसको कोई बन्धन नहीं रहता और जब बन्धन ही नहीं रहता तो आत्मा सपने आनन्द स्वरूप में रहती है और आनन्द स्वरूप का प्राप्त कर लेना ही ईश्वर कि प्राप्ति है।

भगवान की नजर

भगवान सबको एक नजर से देखते हैं इसलिए उनकी नजर में आता है वह वैसा ही बन जाता है क्योंकि उनकी नजर का यही काम है और जब आत्मा इस्वर के बगीचे में पहुँच जाती है तो देखती है आनन्द आता है वह कुछ नहीं कह सकती केवल देखती ही रह जाती क्योंकि वहाँ देखने में ही सब कुछ भूल जाती है और सब कुछ भूल जाना हीं याद रखना यही भक्ति है और भक्ति से ही मुक्ति मिलती है।

सच्चा विचार

(१) सुख का मूल धर्म है।
(२) धर्म का मूल दया है।
(३) दया का मूल विवेक है।

सच्चा कर्त्तव्य

(१) विवेक से उठो।
(२) विवेक से चलो।
(३) विवेक से बोलो।
(४) विवेक से खाना खाओ।
(५) विवेक से सब कार्य करो।

इश्क और परवाना

परवाना जब इश्क के पास दिवाना है के जाता हो तो इश्क कहता कि तू मेरे पर दिवाना हो के आया है। पर मैं तुझ को गले से लगाता हूँ तू जल जाता है और नहीं लगता हूँ तो मेरे महमान की इज्जत नहीं होती इसलिए में कुछ नहीं कहता हूँ तेरे जचे सो कर, इसलिए वह चुप रहता और वास्तव में सही भी है। जैसे चिराग पतंगे को कहता नहीं है कि तू में आकर जल जा, इश्क तो कुछ भी नहीं कहता है। और पतंगा कहता इश्क को अगर में तुझ में जलकर भस्म हो जाऊं तो एक बार मेरे दिल अरमान तो निकल जायें यानी की मैं तुझ को पालूं और हमेशा के लिए तु में मिल जाऊं और जो हमेशा का तेरी याद का दुःख था, मिट जावें क्यों मैं तो रहूंगा ही नहीं केवल तू ही रह जावेगा, क्योंकि मैं तो तेरे में जल भस्म हो जाऊंगा फिर केवल तू ही रहेगा फिर मेरा काम कुछ ही नहीं है तू जाने तेरा काम जाने क्योंकि मैं तो रहता ही नहीं केवल तू ही रह जाता और दिवाना हो तो ऐसा हो जो अपने आप को उसके लिए मिटा दें और जब

ना कामी कर लेता है, तो फिर इश्क दिवाने को गले लगा कर अपने समान लेता है। यानी फिर दो स्वरूप नहीं रहते यानी माया का स्वरूप मिट कर सत स्वरूप आनन्द घन परमात्मा ही रह जाता है।

भगवान का सैर करना

एक दिन भगवान कहीं सैर करने को गये थे तो किसी भक्त ने उनको लिया तो भगवान तो सैर करके चले गये और भक्त के दिल में फिर वान आये भक्ति कि इच्छा के लिए उनको आना पड़ा तब भक्त कहता है वान आप कैसे आये तब भगवान ने कुछ भी नहीं कहा तब भगत कहता भगवान आप बिमार है इसलिए आये हैं तब भगवान ने कहा आपको कैसे लगा कि मैं बीमार हूं फिर भक्त ने कहा मैं खुद बिमार हूं इसलिए आप मुझ बीमार पे नजर आते हो फिर भगत कहता है इसलिए मैं कुछ भी जानता क्योंकि मैं तो केवल आपको ही जानता था जो आप आ ही गये आटा जाने आप का काम जाने क्यों कि मैं तो हूँ ही नहीं आप ही है। लिए आय आप को क्या जाने और क्या पहिचाने क्यों कि भक्त आर वान दो नहीं रहे क्यों कि भक्त भगवान में मिल गया इसलिए केवल फिर वान ही रह गया।

आत्मा की भूल

आत्मा दुखी क्यों रहती है। आत्मा स्वयं आनन्द स्वरूप रहते हुए दूसरी जगह से आनन्द चाहती है। इसी से दुखी रहती है। और जब को सच्चा ज्ञानी या गुरु मिल जाता है। तो वह इसको बतला देते हैं कि खुद आनन्द स्वरूप होते हुए दूसरी जगह से आनन्द चाहता है। इसी से को आनन्द नहीं मिलता नहीं तो आनन्द ही आनन्द है।

आत्मा रूप मिश्री

जैसे कोई आदमी मिश्री खाता है तो उसको कोई पूछता है कि कैसी गी और कैसा आनन्द आया, तब वह कहता है कि मीठी लगी और बड़ा नन्द आया। इसी तरह सब कोई कहते हैं पर उस मीठे पन और उसके नन्द के बारे में कुछ कह नहीं सकते और ना बता सकते हैं कि ऐसा मीठा और ऐसा आनन्द है यानी कहते ही हैं कि मीठा लगा और बड़ा आनन्द या पर उस मीठे पन का और उस आनन्द का वास्तव स्वरूप नहीं बता कते हैं कि ऐसा मीठे का स्वरूप है और ऐसा आनन्द का स्वरूप है। यह

स्वरूप भी नहीं बता सकता है क्योंकि वह कहने में नहीं आ सकता क्योंकि उ
मीठेपन का और उस आनन्द का ऐसा ही स्वरूप है। यानी वचन अगोचर
यानी वचन से उसका वर्णन नहीं कर सकते है उसको तो केवल अनुभव कि
जाता है और कोई बडभागनी बुद्धि उसका अनुभव करती है। इसी तरह आत
को भी सब कोई कहते हैं कि आत्मा है पर उसको ऐसा कोई नहीं बतला
कि वह ऐसा है और ऐसा आनन्द आता है यानी आत्मा के स्वरूप को को
बता नहीं सकता और ना उसके आनन्द को कोई बता सकता है क्योंकि उस
स्वरूप और उसका आनन्द ऐसा ही है यानी वचन अगोचर है यानी वचन
उसका वर्णन नहीं कर सकते हैं उसको तो केवल अनुभव किया जाता है औ
कोई बडभागनी गुरु की प्यारी बुद्धि उसका अनुभव कर लेती है तो वह इत
मस्त हो जाती है कि वह कुछ कह नहीं सकती है और अपने को भूल जाती है
क्योंकि उसमें विलेय हो जाती है यानी आत्मा से अलग नहीं रहती है यानी उस
स्वरूप में समाकर उसी का स्वरूप बन जाती है। इससे यह साबित हुआ कि
जो विरति रूपी बुद्धि या मन आत्मा में से कल्पना रूप बनाता था वह भी ज
तक अज्ञान था तब तक ही बनता था, और अब गुरु की पूर्ण कृपा से ज्ञान
अज्ञान का स्वरूप मिट कर केवल सत्त स्वरूप आत्मा ही रह जाता है क्योंकि
जैसे उजाला नहीं होता है तब ही अंधेरा रहता है और जब उजाला होता है
तो अंधेरा अपने आप ही दूर हो जाता है। इसी तरह ज्ञान का उजाला होता
तो अज्ञान रूपी अंधेरा अपने आप ही दूर हो जाता है और जैसे सपने में आदम
कहीं चल जाता हैं और अपने को मरा समझता है और देखता है और ज
सपन काल से जगता है तो वह कहता है कि मैं तो कहीं नहीं गया था और म
भी नहीं था केवल सपने के कारण से यह सब हुआ था और देखता था औ
अब सपने से जाग गया तो मैं तो कहीं नहीं गया था और ना मरा था। मैं त
जिन्दा ही हूँ क्योंकि जब जाता तो आता कैसे और मर जाता तो जानता कैसे
और कहता कैसे कि यह सब सपने का काम था। इसी तरह आत्मा भी अज्ञान
के सपने में अपने को जन्मना और मरना मानता था और जब गुरु की पूर्ण
कृपा से अज्ञान का सपना समाप्त हो जाता है और ज्ञान रूप से जाग जाता है
तो अपने को अजर अमर आनन्द स्वरूप महसूस करता है और मानता है औ
वास्तव में आत्मा का स्वरूप ऐसा ही है कि उसको केवल अनुभव किया जाता
उसमें कहना नहीं बनता है और ना बताना, बनता है क्योंकि कोई भार की

वस्तु नहीं जो बता सके और समझा सके वह तो केवल अन्दर की चीज है जो उसको तो अन्दर में अन्तर मुखी होके देखेगा तब ही उसका अनुभव होगा और आनन्द प्राप्त होगा तब फिर वह जान पावेगा इतना पुरुषार्थ कर लेगा तब ही आत्मा का आनन्द मिलेगा।

ईश्वर की दूकान

जैसे कोई दुकानदार अपनी दुकानदारी भी करता है यानी जो जैसा सामान लेने आता है तो उसको वैसा ही सामान देता है। यानी षट कर्म करता हुआ भी अपना निजी ध्यान कहा रखेगा यानी धन में रखेगा और सोचता रहेगा कि यह धन ज्यादा हो जावे। इसी तरह आप भी संसार का काम करते करते हुए भी अपना निज ध्यान परमात्मा में ही रखेगा तो आपको उनकी प्राप्ति हो जावेगी और आपने अपने पुरुषार्थ वल से ऐसी अवस्था कर लीनी तो आप फिर संसार का कर्म करते हुए भी अकरता रह जायेगा। जैसे उस दुकान दार ने सबको सौदा देते हुए उन सौदा लेने वालों में से किसी की तरफ कोई सुख दु.ख नहीं हुआ क्योंकि उनमें किसी में भी उसकी पिती नहीं थी यानी उनमें किसी में भी उसका निज ध्यान नहीं था उसका निज ध्यान तो केवल धन में ही था तो उसी धन में से अगर एक पैसा भी चला जाता है तो उसको दुख महसूस होगा और जब वह पैसा मिल जाता है तो सुख महसूस होगा तो फिर उसको कौनसा कर्म लागू हुआ यानी उसको धन के कर्म ही लागू हुए क्योंकि उसका निज ध्यान धन में ही था और बाकी जितने भी कर्म थे उन सबसे वह अकरता ही रह गया। यह तो संसार स्वरूप की बात हुई और अब आप ईश्वर की तरफ आ जाईयेगा जैसे उस दुकानदार ने कर्म किया था उसी प्रकार आप भी कर्म कीजियेगा यानी आप संसार के सारे कर्म करते हुए भी अपना निज ध्यान ईश्वर में ही रखोगे तो आप को संसार के कर्म लागू नहीं होंगे क्योंकि आपका निज ध्यान तो केवल ईश्वर में ही था यानी आपकी प्राप्ति व आसक्ति तो केवल ईश्वर में ही थी इससे साबित हुआ कि आपको ईश्वर का ही कर्म लागू हुआ तो आपको ईश्वर की ही प्राप्ति होगी संसार की प्राप्ति नहीं होगी क्योंकि आपकी प्राप्ति तो केवल ईश्वर से ही थी तो आपको ईश्वर ही मिलेगा और जब ईश्वर की प्राप्ति मिल जाती है तो आपको आनन्द आनन्द मिल जावेगा फिर आपको कभी भी दुःख नहीं होगा और जै

अग्नि को बुझा देता है और जल के कचरे को हवा साफ कर देती है और गर्म लोहे को ठंडा लोहा काट देता है इसी तरह शान्ति स्वरूप ज्ञान स्वरूप आत्मा भी काम क्रोध की अग्नि को शान्त कर देते हैं और अज्ञान के कचरे को ज्ञान रूपी हवा साफ कर देती है और शान्ति स्वरूप आत्मा जन्म मरण के बन्धनों को काट देती है।

हंस और काग

जैसे एक हंस की दोस्ती एक कांग से हो गई। वह कांग बोला की हे हंस मुझको तेरे देश में ले चल तब हंस ने वैसा ही किया यानी अपने देश ले गया तो हंस का देश होता है समुद्र तो वह हंस उस काँग को समुद्र में ले गया तो वहां पर हंस तो अपने मोती चुगने लग गया और काग से कहा कि तू भी मोती चुगले तब काग मोती नहीं चुग सका क्योंकि वह हंस स्वरूप तो था नहीं जो मोती चुग पावे तब काग ने कहा कि हे हंस मुझको अपने देश ले चल तब हंस ने वैसा ही किया तो रास्ते में दोनों आ रहे थे तो एक पेड़ के नीचे वह दोनों आराम करने लग जाये तो वहां पर एक राजा भी आराम कर रहा था तो उस राजा को कुछ धूप आ गई थी तो वह हंस राजा के ऊपर छाया कर रहा था तो इतने में ही काग ने उड़ते हुए उस राजा के मुंह पर मींट कर दीनी तो राजा ने उठते ही उस हंस को बाण मार दिया तो वह मरने ही वाला था इतने ही देर में राजा ने पूछा कि तू हंस होते हुए तेरे को कैसे बाण लगा और तू ने ऐसा काम क्यों किया जो अब मर रहा है तब हंस ने कहा कि हे महाराज मेरे एक दुष्ट नीच काग से दोस्ती हो गई थी वह और मैं दोनों यहां आराम करने के लिए रूक गये थे तो आप भी यहां आराम कर रह रहे थे तो आपको कुछ धूप आगई थी तो मैंने आपके ऊपर छाया कर रहा था तो वह काग उड़ते हुए आपके मुंह पर मींट कर दीनी तो वो तो उड़ गया और मैं रह गया इसी से आपने मुझको बांण मार दिया तो अब मैं मर रहा हूँ। इसी प्रकार आत्मा अभी हंस होते हुए भी जन्म मरण के फेर में फिरा करती क्योंकि विषय रूपी काग का संग करने से और जब इसको कोई सच्चा ज्ञानी गुरु मिल जावे तो वह इन काग स्वरूप विषयों से छुड़ाकर हंस स्वरूप बना देते हैं और इसको सत उपदेश दे देते हैं तो वह हंस रहते-रहते प्रेम हंस हो जाता प्रेम हंस कहते हैं परमात्मा को तो वह हंस फिर प्रेम हंस हो जाता है यानी प्रेम में मिल जाता है तो वह खुद

आत्मा स्वरूप हो जाता है यानी दो भेद थे सत स्वरूप असत स्वरूप तो गुरु के बताए हुऐ जन विवेक से असत स्वरूप मिट के केवल सत स्वरूप परमात्मा ही रह जाता है। इसीको संत महात्माओं नें जीव ब्रह्म की एकता बतलाई है।

विवेक

जैसे एक किसी पेड़ का फल है तो वह साफ शुद्ध पवित्र होगा तो अच्छी कीमत में जावेगा और जब उसमें कीड़ा लग जाता है या वो गल जाता है तो वह बहुत कम कीमत में जावेगा या ज्यादा ही खराब हो जाता है तो उसको कोई नहीं लेगा। इसी तरह परमात्मा रूपी पेड़ के आत्मा रूपी फल लगता है तो उसको साफ सुन्दर पवित्र रखते हैं तो परमात्मा के यहां अच्छे भाव में चला जाता है और तब उसके काम क्रोध लोभ मों भय और रूप रस गन्ध शब्द स्पर्श यह कीड़े लग जाते हैं तो उसकी आत्मा शुद्ध नहीं होती जैसे किसी कपड़े को जल में ही डुबो रखोगे तो वह गल जायेगा। इसी तरह आत्मा को भी इन्द्रियों के विषयों रूपी गन्दे जल में डुबो रखोगे तो वह गल जायगी और किसी काम की नहीं रहेगी यानी परमात्मा के पास नहीं पहुंच पायगी जैसे एक राजा अपना भेष बदलकर कहीं पर गया तो लोगों ने राजा को पकड़ लिया और उसे चोर समझा वे तब राजा ने सोचा कि कहता हूं तो पोल खुलती है नहीं कहता हूं तो चोर बनता हूं। तब राजा ने कुछ भी नहीं कहा सब लोगों ने उसे मारा और मार के छोड़ दिया और राजा अपने स्थान पर आगया फिर किसी की ताकत नहीं रही जो कि राजा को मार या पीट सके। इसी तरह आत्मा रूपी राजा अज्ञान का भेष बनाकर अन्धकार रूपी राजा में शरीर धारण करता है और इन्द्रियों के विषयों रूपी चोरों में फंस जाता है तो काल इसको पकड़ लेता है और खूब मारता पीटता है यानी लख चौरासी के चक्कर में घूमाता और खूब दुःख भुगताता है और फिर छोड़ देता है यानी तब मनुष्य शरीर मिलता है यदि उस समय इस मनुष्य शरीर को कोई सन्त या गुरु मिल जाते हैं कि हे मनुष्य तेरा भेष अज्ञान का नहीं है तू तो ज्ञान स्वरूप राजा है तो फिर राजा आनन्द स्वरूप परमात्मा की गोद में बैठ जाता है और जैसे कपड़ा बनाते हैं और कपड़े को इकट्ठा बनाकर थान बना लेते हैं तो फिर उसको खरीद लेता है तो वह थान में से कट कर छोटे-छोटे टुकड़ों में बट जाता है और

जिसका जरूरत होती है वो जाता है इसी को कमीज, कुर्त्ता या पजामा साफा पतलून कुछ भी बनाना होता है तो वह अपनी इच्छा अनुसार इन कपड़ों को बना लेता है यानी एक थान के कई विभाग हो जाते हैं और वही थान कई रूप धारण कर लेता है फिर इसको कोई भी रूई या थान के नाम से नहीं पुकारता है जिन्होंने जैसा बनाया वैसा ही पुकारते हैं यानी किसने पेन्ट बनवायी है वह पेन्ट के नाम से पुकारता है कमीज बनवायी है तो कमीज के नाम से कहेगा यह नहीं कहेगा कि यह कपड़ा सूत है इसी तरह सब को समझ लेना इससे साबित होता है। कि स्वरूप से देखने से मालूम हो जाता है कि इन सब का स्वरूप तो रूई या कपड़ा को दे और जिन्होंने कपड़े में जिस-जिस प्रकार के स्वरूप बनाये हैं वह सब कल्पना का साज हैं यानी असल स्वरूप तो कपड़ा या सूत ही है। इसी तरह अज्ञानी आदमी भी कल्पना मा स्वरूप यानी असत्य स्वरूप की तरह ज्यादा ध्यान देते हैं और सत्य स्वरूप की ओर कम ध्यान देते हैं कोई बड़ भागी गुरू का प्यारा यानी सत्य की ओर ध्यान देता है इसी तरह अज्ञानी जीवों ने अनेक प्रकार विषयों वासनाओं में फंस कर इस विचार को अनेक रूप से बना लिया है और कल्पना साज स्वरूप को यानी असत्य स्वरूप की ही तरफ अधिक ध्यान देते हैं।

जैसा कोई बनता है वैसा ही स्वरूप बन जाता है और जैसा स्वरूप बन जाता है खुद भी जैसा ही बन जाता है। यानी असत्य स्वरूप की तरफ ध्यान देते हैं और असत्य स्वरूप से ही देखते हैं तो खुद भी वैसे ही बन जाते हैं यानी असत्य स्वरूप बनकर बार-बार जन्म लेना पड़ता है और सुख दुःख भोगना पड़ता है जब यह किसी सच्चे गुरू की शरण ले लेता है तो उसकी ज्ञान क्रिया हो जाती है और वह ज्ञान विवेक्य हो जाता है तो वह वास्तव में आत्मा या परमात्मा कुछ भी नहीं देखता जो पहले अज्ञान को स्वरूप मानता था वह अब अज्ञान की तरफ देखना भी नहीं क्योंकि पहले वह अज्ञान के चक्कर में था और उसे सभी वस्तुएं असत्य स्वरूप ही नजर आती थी परन्तु अब वह अज्ञान नहीं रहा क्योंकि गुरू ने अपने प्रभाव से असत्य को सत्य में परिवर्तित कर दिया और अब उसे गुरू की कृपा से आनन्द घन परमात्मा ही नजर आता है और अब में उसके आनन्द स्वरूप में ही मस्त हूं क्योंकि उनके आनन्द स्वरूप के सिवाय कुछ है ही नहीं।

ज्ञान की अग्नि

जैसे अग्नि के पास कौन अकेला जो उसमें जल कर भस्म हो जावेगा यानी जो वस्तु जल जाती है फिर उसकी राख हो जाती है तो वो राख ही उस के पास रुकती है यानी पहले उस वस्तु का स्वरूप और था तो फिर उसने अग्नि में जल कर राख का स्वरूप बना लेती तब ही अग्नि के पास वह रुकती है यानी राख ही अग्नि के पास रुक सकती है उसके सिवाय कोई दूसरी वस्तु नहीं रुक सकती यानी उसमें अपना स्वरूप पलटा तब ही वह उस तेज के पास रुकी इसी प्रकार आप भी अपना स्वरूप पलटा लोगे तब ही उस ईश्वर की तेज शक्ति के पास रुक सकते हैं स्वरूप पलटने का मतलब है कि अभी आपका स्वरूप विषय वासना स्वरूप है और जब आप अपना विषय वासना स्वरूप को छोड़कर निर्भोग स्वरूप हो जावेंगे तब ही आप ईश्वर की तेज शक्ति में रुक सकते हो और जब आप उसमें रुक जाते हैं तो आप के अन्दर भी उनके समान तेज शक्ति हो जाती है यानी वह फिर उस का स्वरूप बन जाता है क्योंकि उसमें जलकर भस्म हो जाता है यानी आत्मा जब ईश्वर के प्रेम में जल कर भस्म हो जाती है फिर आत्मा तो रहती नहीं है क्योंकि परमात्मा में जल कर उसी का स्वरूप बन जाती है जलने का मतलब भस्म होना नहीं है केवल उस परम पिता परमात्मा की याद की लगन में अपने आपको मिटा के उसी में मिल जाना यही जलना और भस्म होना है।

जो प्राणी गुरु की क्रिया से इतना कमाई कर लेता है वह उससे अलग नहीं रहता उसी में मिलकर उसी का स्वरूप बन जाता है जैसे दूध में पानी मिलाने पर वह पानी भी उसी दूध का स्वरूप बन जाता है। इसी प्रकार आत्मा परमात्मा के बारे में भी समझ लेना और जब आत्मा परमात्मा एक स्वरूप हो जाती तब उसको सतचित आनन्द स्वरूप भी कहते हैं सत का मतलब है कि उसको तीन काल में भी कोई नष्ट नहीं कर सकता और न वह अस्त हो सकता है इसी से उसको सत कहते हैं और चित का मतलब है कि वह सब को जानता है उसको चित कहते हैं और आनन्द का मतलब है [illegible] जब अपने पुरुषार्थ से चित सत में मिल जाता है तो वह [illegible] परमात्मा बन जाता है और वह सब को आनन्द देता है [illegible] आनन्द घन परमात्मा कहते हैं तो फिर वह परमात्मा [illegible] कोई जिस रूप से देखेगा उसको वैसा ही रूप दिखावेगा [illegible]

चावेगा उसको वैसा ही फल प्राप्त हो जावेगा और जैसे सूरज सब को प्रकाश देता है इसी प्रकार सत स्वरूप आत्मा बन जाने के बाद में सब को प्रकाश देता है और सब को प्रकाश मान बताता है प्रकाश का मतलब है कि जो उसको जैसा देखे उसको वैसा ही दीखे।

साधना

जब तप यज्ञ पूजा पाठ भक्ति व ज्ञान इत्यादि कदा भी कर्म कर लो पर जब तक ईश्वर के प्रेम भावी लहर में आत्मा नहीं डूबेगी तब तक ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती और नशा किसी भी प्रकार का करलो कुछ भी नहीं होता जब तक ईश्वर के प्रेम रूपी मस्ती का नशा नहीं करोगे तब तक ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती।

जैसे जल निमल होता तो उसको सब अपनाते हैं और पीते हैं पर अग्नि कठोर होती है यानी तेज होती है इसी से उसको कोई नहीं अपनाता। इसी तरह कठोर आत्मा को यानी कडवी आत्मा को कोई नहीं अपनाता तो ईश्वर कैसे अपनावेगा ईश्वर तो जो निर्मल आत्मा होती उसी को अपनाता है और सब बन्धन में पड़े हुए हैं कोई नशे के बन्धन में तो कोई खाने के बन्धन में तो कोई पीने के बन्धन में तो कोई काम के बन्धन में तो कोई क्रोध के बन्धन में और कोई माया के बन्धन में तो कोई मोह के बन्धन में तो कोई क्रोध के बन्धन में तो कोई भय के बन्धन में तो कोई आशा के बन्धन में तो कोई ऋण के बन्धन में तो कोई ममता के बन्धन में इसी तरह अनेक बन्धनों में आत्मा पड़ी हुई है तो इन बन्धनों से जब तक आत्मा मुक्त नहीं होती तो ईश्वर की प्राप्ति नहीं होती है और इन बन्धनों में आत्मा फंस जाती है तो उसकी स्मरण शक्ति नष्ट हो जाती है तो ज्ञान शक्ति भी नष्ट हो जाती है तो वह ईश्वर के पास नहीं जा सकती क्योंकि संसार में ही शक्ति के बिगर कोई काम नहीं हो सकता तो ईश्वर के पास में जाने के लिए तो तिबर ज्ञान विवेक शक्ति होनी चाहिए तब ही उसके पास जा सकते हैं।

सत और असत

असत कभी बनता है। और कभी मिलता है। इसी तरह होते होते असत खत्म हो जाता है। केवल सत ही रह जाता है और जब सत ही रह जाता है तो ना कभी बनता है और ना कभी मिटता है। वो तो एक रस ज्यों रहता है। इस लिए उसको भगवान या परमात्मा कहते हैं। एक

मारवाड़ी भाषा में कहावत भी है। चुल्हे की आग और परिंढे का पानी कभी खत्म नहीं होना चाहिये वहां पर किसी बात की कमी नहीं होगी चुल्हे की आग का अर्थ यह है, इस शरीर रूपी चुल्हे में ज्ञान की आग नहीं बुझानी चाहिये व परिंढे का पानी का अर्थ है कि सीतलता रूपी आसन परिंढे में प्रेम रूपी नहीं बुझना चाहिये ये दोनों चीज बनी रहेगी तो ईश्वर को अवश्य पालेंगे।

सच्चा परोपकार

१. मन से दूसरे का भला चाहना ही परोपकार है।
२. वचन से दूसरे को सुख पहुँचाना ही परोपकार है।
३. शरीर से दूसरे की सहायता करना ही परोपकार है।
४. धन से किसी का दुख दूर करना परोपकार है।
५. भूखें प्यासें को सन्तुष्ट करना ही परोपकार है।
६. भूले भटके को सही मार्ग दिखाना परोपकार है।
७. अज्ञानी को ज्ञान देना या दिलाना परोपकार है।
८. ज्ञान के साधन विद्यालय आदि खोलना परोपकार है।
९. लोकहित के कार्यों में मुद्रा सहयोग देना परोपकार है।
१०. किन्तु बिना मन के परोपकार नहीं हो सकता है।
११. धन का मोह परोपकार नहीं देता है।
१२. शरीर का मोह परोपकार नहीं होने देता है।
१३. परोपकार करने के लिये धनी होने की राह देखे वह मूर्ख है।
१४. फल प्राप्ति की आश से जो परोपकार करे वह मूर्ख है।
१५. विना स्नेह और प्रेम से परोपकार करे वह मूर्ख है।
१६. भोजन के लिये जीवन नहीं किन्तु जीवन के लिये भोजन है।
१७. धन के लिये जीवन नहीं किन्तु जीवन के लिये धन है।
१८. धन से जितना अधिक मोह होता उतना पतन है।
१९. धन से काम लेना चाहिये पर मोह नहीं करना चाहिये।

मानव देह किस लिए ?

जैसे पशु सुबह उठ कर उदर पूर्ति के लिये चले जाते हैं और शाम को आ जाते हैं फिर अपने बच्चों की उदर पूर्ति करते हैं और फिर सो जाते हैं फिर सुबह चले जाते हैं। इसी तरह से मनुष्य भी खाना-पीना और सोना

अपने बच्चों को खिलाना-पिलाना और सुलाना इन्हीं सासांरिक कर्म में लगे रहते हैं यह कर्म तो पशु भी करते हैं। केवल इन्हीं कर्मों को करने के लिये मानव रूप नहीं मिलता। क्योंकि जितनी भी योनियाँ है वह तो सब भोगयोनि हैं कर्म योनि तो मानव जन्म ही है और मानव जीवन ही उत्तम और श्रेष्ठ है। क्योंकि यह खास कर ईश्वर की प्राप्ति के लिये ही मिलता है। इसमें ईश्वर को प्राप्त नहीं किया तो फिर पछताना पड़ेगा। इसलिये ईश्वर की प्राप्ति के ही कर्म करने चाहिये।

मन

एक काम हो सकता हैं तन संसार में हो और मन ईश्वर में हो तब तो काम बन सकता हैं यानी ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है। एक पन्थ दो काज हो सकते हैं। क्योंकि गीता में भगवान कृष्णा ने अर्जुन से कहा है—हे अर्जुन तू उन ज्ञानी तत्ववेत्ता ब्रह्म निष्ठ गुरु के पास जाकर नम्रता पूर्वक ष्टांग प्रणाम करके पूछना वो तुझ उस ज्ञान का उपदेश करेंगे तब तुझ को आनन्द मिलेगा।

प्रेमी

जब प्रेमी से प्रेमी मिलता है तो फिर कोई परदा नहीं रहता और जब परदा नहीं रहता तो दोनों का स्वरूप एक हो जाता है क्योंकि दो नहीं थे। केवल एक ही था दिखने में दो नजर आते थे और अब दोनों एक हो गये तो एक ही नजर आता है क्योंकि केवल देखने का भेद था जो भेद समझ में आ गया और मैं एक ही देखता हूं क्योंकि मैं एक ही हूं। इसलिए मैं अपने आपको ही देखता हूं क्योंकि मेरे सिवाय कुछ है ही नहीं।

ध्यान की बूटी

शंकर तेरी बूंटी ने दीवाना कर दिया यानी तेरी मस्ती के सिवाय और तेरी याद के सिवाय और तेरे आनन्द के सिवाय कुछ नजर ही नहीं आता। जिधर देखता हूं उधर तू ही नजर आता है क्योंकि वास्तव में तू ही है! जग में कुछ भी नहीं है इसलिए तू अपने आपको आप ही जानता है और आप ही अपने को देखता है। फिर तुम आनन्द स्वरूप हो जाते हो इसलिए जो तुमको कोई देखेगा उसको भी आनन्द मिलता है और आप अपना ही आनन्द लेता है और जब आप ही हैं तो दिखता क्या है दिखता कुछ भी नहीं है। देखने वा

कमजोरी थी इसलिए माया का स्वरूप नजर आता था। वह फिर रहता
ीं है केवल सतस्वरूप आप ही रह जाता है।

अपना घर

किसी आदमी ने कहा पहले अपना घर फूंक कर तमाशा देख।

प्रश्न—अपना घर फूंकने का और तमाशा देखने का क्या मतलब
ा है ?

उत्तर—संकल्प और विकल्प, राग, द्वेष, आशा, घृणा, इच्छा, वासना
में से किसी को भी नहीं रखना पड़ता केवल ईश्वर के आधार पर ही रहना
ता है। इसी को अपना घर फूंकना कहते हैं और तमाशा देखने का मतलब
जो अकर्ता हो जाता है वह फिर तमाशा देखने वाला हो जाता है और जब
ाशा देखने वाला हो जाता है तो वह मुक्त स्वरूप हो जाता है तो दूसरों को
मुक्त स्वरूप बना देता है उसी को तमाशा देखने वाला कहते हैं।

पागल

किसी ने मुझ से कहा तू पागल है तब मैंने सोचा मैं कुछ कहता नहीं
र तुम मुझे जानते नहीं। इसलिए तुमने मुझको पागल कहा क्योंकि मैं
ुको जानता जरूर हूँ पर कहता कुछ भी नहीं हूँ इसलिए तुम मुझको पागल
झते हो।

प्रश्न—पागल से दुनियां क्यों डरती है और देखती क्यों है।

उत्तर—पागल से दुनियां डरती इसलिए है पता नहीं वह क्या कर दे
योंकि वह पागल है और पागल से कोई कहता कुछ भी नहीं और कोई कहता
तो उसी को पागल कहेंगे क्योंकि वह पागल था पर उसके साथ तू भी पागल
ा गया क्योंकि तू जानता था यह पागल है तो तेरे को उससे बात नहीं करनी
ी। इसी तरह से सच्चे भक्त को भी दुनियां पागल कहती है और समझती है
र भगवान तो उसी को सच्चा भक्त समझता है। क्योंकि उसमें अच्छाई और
राई नहीं रहती क्योंकि वह जानता ही नहीं अच्छा और बुरा क्या होता है।
सी से भगवान की नजरों में वह सच्चा होता है और दुनियां झूंठी है क्योंकि
ह अच्छा या बुरा नहीं समझती है। पागल को दुनियां देखती इसलिए है कि
सको देखने में आनन्द आता है।

भोग

प्रश्न—कोई कहे कि जब इतना ज्ञान हो जाने के बाद में वह आत्मा

परमात्मा को प्राप्त हो जाने के बाद में फिर शरीर से मुक्त क्यों नहीं जाती है ?

उत्तर—प्रथम तो उनका शरीर से बन्धन रहता ही नहीं है क्योंकि बन्धन उसी को होता है जिसको शरीर से मोह होता है। जैसे—किसी पि का लड़का कहीं परदेश चला जाता है और उसको यह झूठी खबर मिलती है कि तेरा लड़का मर गया तो उसको बहुत दुःख होगा और फिर वह ज़िन्द वापिस आ जाता है तो उसको बहुत सुख होगा। जब किसी को मोह नहीं होता है तो उसको न दुख और न सुख रहता है। क्योंकि वह यह जा लेता है कि एक रोज जाना ही था और जायेगा वह जरूर जावेगा और आ जाना यही संसार है। इसी प्रकार इतन आत्मा जानती है। उसको शरीर मोह नहीं होता और जब मोह नहीं रहता तो उसको कोई बन्धन नहीं हो फिर वह मुक्त ही रहता है। फिर केवल प्रारब्ध रूपी भोग ही रहता है वह शरीर को भोगना ही पड़ता है और जब भोग का भुगतान पूरा होते ही आत्मा परमात्मा को प्राप्त हो जाती है।

दृष्टांत—जैसे किसी आदमी को कोई बीमारी हो जाती है तो वह उस इलाज बहुत करवाता है मगर उसकी बीमारी ठीक नहीं होती है। इससे इ होता है कि वह प्रारब्ध रूपी भोग कहलायेगा। वह तो भोगने से ही दूर ह और जैसे किसी मिट्टी के बर्तन में पानी रखा हुआ है या तो उसको काम लावे तब ही वह पानी खत्म होगा या वह बर्तन विलेय हो जाने के वह पानी पृथ्वी में लीन हो जावेगा। इसी प्रकार ये शरीर प्रारब्ध रूपी रूप बना है तो वह तो भोगना ही पड़ता है और वह भोग समाप्त होते ज्ञान रूपी आत्मा परमात्मा में लीन हो जाती है। इसलिए ही यह मानुस शरीर मिलता है। भोग को काटने के लिए और आगे के लिए भोग नहीं के लिए। जब गुरु के ज्ञान रूपी शब्द से आगे के लिए भोग पैदा नहीं क है तो फिर योग नहीं होता यानि आत्मा को शरीर का मिलना और बिछु नहीं होगा फिर वह आत्मा परमात्मा में लीन हो जाती है क्योंकि जो जहां से आती है वह वहीं चली जाती है पर किसी कारण के वजह से नहीं पाती और जब कारण समाप्त हो जाता है तो वह वहां पहुंच जाती है। प्रकार आत्मा परमात्मा में से आती है और वहीं जाना जरूरी चाहती है कुछ विषयों के कारण से वहां नहीं जा पाती और जब यह आत्मा गुरु के

शब्द से उस कारण को मिटा देती है तो फिर आत्मा जहाँ से आती है पर पहुँच जाती है यानि परमात्मा में लीन हो जाती है।

जैसी भावना वैसा ही फल

एक सेठ था। वह चन्दन की दुकान करता था। यह किस्सा सतयुग है। पहले के जमाने में राजा अपनी प्रजा की देख-रेख करते थे कि कौन है कौन सुखी है ! उस सेठ के पास काफी चन्दन था। उसका इतना न नहीं बिकता था क्योंकि वह बहुत महँगा था। उसके दिल में यह भावना रहती थी कि किसी दिन यह राजा मरेगा तब मेरा चन्दन काम में आवेगा मालदार हो जाऊँगा। तब एक रोज राजा अपनी प्रजा को देखने के लिये शहर में गये तो उस सेठ की दुकान को भी देखा राजा ने उसकी भावना जान लिया क्योंकि राजा सत्यवादी था राजा ने हुक्म दिया और वजीर से कि इस सेठ की दुकान को तुड़वा दो। वजीर ने वैसा ही किया और कहा तेरी यह दुकान टूटेगी। तब सेठ ने कहा कि इसकी वजह क्या है। यह मेरे बतला और इसका उपाय भी बतलाओ जिससे यह नहीं टूटे। तब वजीर कहा कि तेरी भावना को राजा ने जान लिया है। इसलिए तुड़वाने को कहा। तब सेठ ने कहा कि हे महाराज! कुछ उपाय बतलाओ। तब वजीर ने कि तेरी भावना को शुद्ध करले तब तो नहीं टूट पावेगी। तब सेठ ने वैसा किया यानी जो राजा के प्रति बुरी भावना की उसको निकाल दी। तब जा ने भी जान लिया कि अब मेरे प्रति सेठ की कोई बुरी भावना नहीं है। राजा ने वजीर से कहा कि मैं अभी जा रहा हूँ। तब राजा ने कहा क्या रूरत है मत तुड़वाना तो सेठ ने शुद्ध भावना करी तब ही उसकी दुकान नहीं ट पाई इस प्रकार आप भी अपनी भावना को शुद्ध कर लोगे तो आपका भी न्म-मरण नहीं होगा।

एक डोकरी थी। उसकी एक बेटी थी। वह अपनी बेटी सहित कहीं ा रही थी। रास्ते में एक नौजवान घोड़े वाला भी जा रहा था। उस डोकरी कहा कि हे घोड़े वाले मेरी लड़की को तू बिठाले और आगे छोड़ देना। घोड़ ाले ने इन्कार कर दिया। तब डोकरी ने कहा जैसी तेरी मरजी। तब वह फिर घोड़े वाला आगे जा के वापस आया। क्योंकि पहले तो उसकी भावना लट गई उसने सोचा कि मेरे जैसा भी कोई पागल नहीं है। नौजवान लड़की ो छोड़ कर आ गया कहीं ले जाता तो मेरे को कौन कहने वाला था। इसी

भावना को लेकर वापस आया और डोकरी से कहा कि ला तेरी लड़की को बिठा ले चलूं तब उस डोकरी ने कहा कि जो तेरे अन्दर चैतनदेव बैठा हुआ है उसी ने मुझको कहा है कि अब इसके साथ में मत बैठना क्योंकि तेरी भावना अब पलट गई इसी से अब मैं तेरे साथ नहीं भेजती क्योंकि वो ही चैतनदेव मेरे में भी हैं जिसने मेरे को इन्कार किया है अब मैं उसका कहना कैसे टालूं तब वह घोड़े वाला अपना सा मुंह लेके चला गया और उसको भी ज्ञान हो गया कि किसी के प्रति बुरी भावना नहीं करनी चाहिए। इसी प्रकार आप भी बुरी भावना छोड़ेगे तब ही चैतनदेव की बात समझ में आयेगी क्योंकि डोकरी के दिल में कोई बुरी भावना नहीं थी केवल शुद्ध भावना रहती थी! इसी से वह चैतनदेव की बात को समझती थी।

दगा किसी का सगा नहीं।

एक राजा था। उसके एक नाई नौकर था। वह राजा की खूब सेवा करता था। राजा को खुश रखता था। इसी नाई के एक गरीब ब्राह्मण दोस्त था। एक रोज इस ब्राह्मण ने उस नाई से कहा कि हे दोस्त तू मेरे बारे में भी राजा को कहना तब नाई ने एक रोज खुद राजा की सेवा करी तब राजा ने पूछा कि बोल तेरे को कोई तकलीफ होवे सो कहना तब नाई ने कहा कि महाराज आपकी कृपा से मुझको तो किस प्रकार की कमी नहीं बड़ा आनन्द है पर मेरा एक दोस्त गरीब ब्राह्मण है उसके पांस खाने तक को नहीं है आप उसकी कुछ मदद कर सकते हों तो बतलावे तब राजा ने कहा कि उसको जो चिट्ठी देवे उससे खजाने में से पाच रुपये ले आया करे तब नाई ने ब्राह्मण को कहा तब ब्राह्मण ने वैसा ही किया ऐसे करते-करते बहुत दिन बीत गये और ब्राह्मण की भी अच्छी हालत हो गई तब नाई ने सोचा कि मेरे को अब तक कुछ नहीं दिया क्योंकि उसके दिल में यह था कि मैं इसको राजा से कुछ दिला दूंगा तो यह भी मुझको कुछ देगा यानी उसने इस लालच से ही यह काम करवाया था और जब उस ब्राह्मण ने नाई को कुछ भी नहीं दिया तो नाई ने राजा के पास जाके उस ब्राह्मण की चुगली करके कहा कि हे महाराज वह ब्राह्मण आपकी निन्दा करता है और कहता है कि राजा के मुख में से दुर्गन्ध आती है तब राजा कहता हैं कि मैं कैसे मानलूं कि वह मेरी निन्दा करता है और वैसा कहता है ? तब उस नाई ने कहा कि आपके पास सुबह को आवे तो देख लेना कि वह मुंह के आगे पल्ला

के आवेगा तब राजा ने कहा कि वह जब ऐसा हो जावेगा तो क्या करना हिये तब नाई ने कहा कि आप उसको पैसे देते हैं वह बन्द कर देना। र तो नाई राजा के पास चुगली कर गया और उधर जाके उस ब्राह्मण कहा कि राजा वहुत नाराज हो रहे थे और कह रहे थे कि उसके मुख से त बदबु आती है और कहा कि उसको बोल देना कि अब आवे तो मुंह कपड़ा डालकर आवे यह बात कहकर अपने घर आ गया। फिर सुबह ह्मण राजा के पास गया मुंह पर पटी बांधे हुवे तब राजा ने सच मुच ान लिया कि वह नाई ठीक कहता था तब राजा को वहुत गुस्सा आया र उसको पैसों वाली परची में लिख दिया कि यह चिट्ठी देवे उसी का क काट लेना, पूछना ताछना कुछ भी नहीं अब उस ब्राह्मण ने सोचा कि ने नाई को कुछ भी इनाम नहीं दिया तो अब मैं यह चिट्ठी नाई को दे ता हूं तब वह खजाने से रुपये ले लिया करेगा क्योंकि मेरे पास तो काफी सा हो गया नाई की कृपा से ही हुआ तो अब मेरे को नाई को कुछ देना ाहिये तो अब मैं यह चिट्ठी नाई को देता हूँ। तब वह चिट्ठी नाई को दे । और कहा कि यह पैसे तुम ले लिया करो तब वह नाई बड़ा ही खुश हुआ योंकि वह पढ़ा लिखा तो नहीं और ना वह ब्राह्मण पढ़ा लिखा था तब ह चिट्ठी नाई लेकर खजाने में गया और उसको देखते ही नाई को कहा क अन्दर आओ और जो वहां पर पहरेदार जल्लाद रहते थे उनको हुक्म दया कि नाक काटलो तब उन्होंने वैसा ही किया तब नाई चिल्लाते हुवे ाजा के पास गया. तब राजा ने पूछा कि तेरा यह हाल कैसे हुआ। मैंने तो चट्ठी ब्राह्मण को दी थी तेरे को कैसे मिली तेरा भी उसमें कुछ हाथ होगा, सच बता क्या हुआ । तब उस ब्राह्मण ने राजा को सारा हाल पीछे का सुनाया। तब राजा ने कहा कि तूने उसके साथ दगा किया है उससे तेरे को वैसा ही फल मिला है।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न—चार वर्ण कौन हैं?

उत्तर—ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य और शुद्र।

प्रश्न—आठ मद कौन से हैं?

उत्तर—कुल मद १. शील मद, २. धन मद, ३. रूप मद, ४. ब मद, ५. विद्या मद, ६. तप मद, ७ राज मद ८.

प्रश्न—नौ खण्ड कौन से हैं ?

उत्तर—१ भरत खण्ड, २ परख खण्ड, ३ निराकार खण्ड, ४ खण्ड, ५ केतपाल खण्ड, ६ हरी खण्ड, ७ पृथू खण्ड, ८ मीन ख वर्ण खण्ड ।

प्रश्न—पांच मुद्राए' कौन सी हैं ?

उत्तर—खेचरी १ भूचरी, २ चाचरी, ३ उनमनी, ४ अंगोचरी ५

प्रश्न—अवस्थाए' क्या हैं ? और उन अवस्थाओं का निर्णय क्या

उत्तर—जाग्रत अवस्था का नेत्र स्थान है। भूमि का शुम इच्छा विचारना सतोमानसा वाणी वेखरी भोग स्थूल शक्ति क्रिया गुण रजोगुण आकार अभिमानी देवता ब्रह्म मुक्ति सालोक भाव अयोन्या वेद रिग्वेद प्रज्ञान महानन्द ब्रह्म १ स्वप्न अवस्था कंठ स्थान भूमि का सत्वापती मदा भोग सूक्षम शक्ति ज्ञान गुण सतोगुण मात्रा उकार अभिमानी तेजस विष्णु मुक्ति सामीप भाव प्रछवमा वेद युजर वेद मंत्र अह ब्रह्मास्मी सुसोपति अवस्था का हृदय स्थान है भूमिका असंग शक्ति वाणी प्रसती आनन्द शक्ति द्रव्य गुण तमो गुण मात्रा मकार अभिमानी प्राण वेद श्याम मंत्र अहं तत्व मशी ब्रह्म ३ तुर्यि अवस्था का मुरधनी स्थान है भोमिका भावनी वाणी परा भाग आनन्द भास शक्ति इच्छा शुद्ध संतो गुण अमात्रा अभिमानी साक्षी चेतन देवता याम विसिस्ट ईश्वर मुक्ति सायुज अनंता वेद अर्थ वर्ण वेद मत्र अय आत्मा ब्रह्म ४ ।

दोहा

जाग्रत तो नैणा वसे स्वप्न कंठ में जान ।
शुशुप्ती हृदय वसे तुरिय नामी स्थान ।।

प्रश्न—चवदा भवन कौन से हैं ?

उत्तर—१ विवेक २ विचार ३ सन्तोष ४ सत्य ५ वैराग्य ६ प्रेम भक्ति ८ योग ६ धर्म १० दया ११ निस्य १२ प्राणायाम १३ उदास आनन्द ।

प्रश्न—सर्व दुखों की निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति कैसे होवे कृपा करके कहो ?

उत्तर—हे भाई ब्रह्म निस्टि और ब्रह्म श्रोतरीये दो विशेषण

ह की पूर्ण कृपा से होवे हैं और सत गुरु के महाकाव्य से सर्व दुखों की और प्रमानन्द की प्राप्ति होती है।

प्रश्न—समाधि सो क्या है और कितनी प्रकार की है।

उत्तर—समाधि दो प्रकार की है १ सविकल्प समाधि २ निरविकल्प।

प्रश्न—सविकल्प कितनी है और कौन है ?

उत्तर—विकल्प नाम फोरना का है सहित फुरने के आत्मा में स्थिति त्रिपुटी को ब्रह्म रूप जानना इसको सविकल्प समाधि कहते हैं। श्रुति यत्र यत्र मोनो याति तत्र तत्र ब्रह्म दर्शनम्।

प्रश्न—निरविकल्प समाधि सो क्या ?

उत्तर—सर्व फोरनों से रहित वृत्ति ब्रह्म कार हो जाय उसको निर-ल्प समाधि कहते हैं।

प्रश्न—सर्व फोरना रहित वृत्ति कैसे होवे।

उत्तर—संत गुरु शरणे जावे और ज्ञान लेवे जब वृत्ति सर्व फोरना होवे हैं।

प्रश्न—ज्ञान कितनी प्रकार का होता है।

उत्तर—ज्ञान दो प्रकार का होता है प्रोक्ष १ अप्रोक्ष २

प्रश्न—प्रोक्ष ज्ञान सो क्या है ?

उत्तर—अपसे से परमात्मा को दूर समजना और प्रमात्मा है इसको ज्ञान कहते हैं और वह दो प्रकार का है दृढ १ अदृढ २ है।

प्रश्न—दृढ ज्ञान सो क्या है ?

उत्तर—दृढ ज्ञान परमात्मा सर्वज्ञ अर्थात सारी सृष्टि को जानता है न्य पाप को देखता है पाप का फल दुख धर्म का फल सुख देता है इस हम पाप नहीं करते हैं इस ज्ञान को दृढ अप्रोक्ष ज्ञान कहते हैं। प्रमात्मा न्तु पाप करते समय भूल जावे उसको अदृढ ज्ञान कहते हैं।

प्रश्न—अप्रोक्ष ज्ञान कितने प्रकार का है ?

उत्तर—जो परमात्मा सर्व व्यापक है सो मैं हूं इसे अप्रोक्ष ज्ञान कहते र वह दो प्रकार का है दृढ १ अदृढ २।

प्रश्न—दृढ अप्रोक्ष ज्ञान सो क्या है ?

उत्तर—अपने स्वरूप की निस्टा परिपक होवे और जनम-मरण हानि सुख दुःख आदि धर्म माया प्रकृति का है मैं इनका साक्षी कूटस्थ ब्रह्म

सर्व का अधिस्टान और प्रकासक हूँ ऐसा जान कर के सभी विपत्ति आ
पर चित की वृत्ति चलायमान नहीं होवे जिसको दृढ अप्रोक्ष ज्ञान कहते हैं

प्रश्न—अदृढ अप्रोक्ष ज्ञान सो क्या है ?

उत्तर—मुख से कहना कि मैं आत्मा अविनासी चेतन ब्रह्म हूं पर
थोड़ा सा दु:ख बिपति आने से चित वृत्ति चलायमान हो जावे और अपने
दु:ख में दु:खी तथा सुख में सुखी जाने उसको अदृढ अपरोक्ष ज्ञान कहते हैं।

प्रश्न—बिद्या कितने प्रकार की है।

उत्तर—विद्या तो चवदह प्रकार की है परन्तु मुख्य दो प्रकार
मानी है।

प्रश्न—दो प्रकार की विद्या कौन है ?

उत्तर—परा विद्या १ अपरा बिद्या २ ये दो मानी है।

प्रश्न—परा विद्या सो क्या है।

उत्तर—परि ब्रह्म को प्राप्त करते वाली विद्या कहते हैं।

प्रश्न—अपरा विद्या सो क्या है।

उत्तर—माया रूपी सामग्री या पदार्थो को जानने वाली विद्या
अपरा विद्या कहते हैं।

प्रश्न—दो प्रकार की वुद्धि कौनसी है।

उत्तर—निश्चयात्मक १ संशयात्मक है २।

प्रश्न—निश्चयात्मक वुद्धि सो क्या है ?

उत्तर—मैं अविनासी ब्रह्म हूँ और पांच कोस तीन शरीर आदियों
साक्षी आधार भूत हूँ ऐसी निश्चय को निश्चयात्मक वुद्धि कहते हैं।

प्रश्न—संशयात्मक वुद्धि किसको कहते।

उत्तर—मैं शरीर हूँ वा शरीर से भिन्न हूं कर्ता हूं व नहीं करता
इत्यादिक काटिक ज्ञान वाली वुद्धी को संशयात्मक कहते हैं।

प्रश्न—मुक्ति कितने प्रकार की है कौनसी है।

उत्तर—मुक्ति दो प्रकार की है ? जीवन मुक्ति विदेमुक्ति।

प्रश्न—जीवन मुक्ति सो क्या है।

उत्तर—जीवन अवस्था में प्रालव्द कर्म को भोगते हुए तथा व्यवहा
करते हुए ब्रह्मात्मिक तत्व में स्थिति को जीवन मुक्ति कहते हैं।

प्रश्न—विदेह मुक्ति सो क्या है।

उत्तर—देहादिक प्रपन्च की प्रतीति से रहित ब्रह्म स्वरूप में स्थिति व प्रालब्द भोग के अनन्तर स्थूल शरीर सहित अज्ञान का ब्रह्म में लीन होना इसको विदेह मुक्ति कहते हैं जीवन मुक्ति व विदेह मुक्ति की प्राप्ति के वास्ते प्रत्येक मनुष्य को प्रयत्न करना चाहिये मनुष्य देह मिलना मुश्किल है ।

प्रश्न—वैराग्य कितना है और कौन है ।

उत्तर—वैराग्य नव प्रकार का है पर वैराग्य १ अपर वैराग्य २ यतमान वैराग्य ३ व्यतिरेक वैराग्य ४ एकेन्द्रिय वैराग्य ५ वसीकार वैराग्य ६ मन्द वैराग्य ७ तीव्र वैराग्य ८ तरतीव्र वैराग्य ९ जिस्में से दो वैराग्य मुख्य है पर वैराग्य १ अपर वैराग्य २ यतमान वैराग्य ९ व्यति रेख वैराग्य २ एकन्द्रिय वैराग्य ३ वसीकार वैराग्य ४ यह चार वैराग्य अपर वैराग्य से निकले हैं मन्द वैराग्य १ तीव्र वैराग्य २ तरंतिव्र वैराग्य ३ यह तीनों वैराग्य वसीकार वैराग्य से निकले हैं ।

प्रश्न—नो वैराग्य का अर्थ क्या है सो कहो ।

उत्तर—सुख देव मुनी की नाइ बचपन से लेकर संसार के विषयों से अलग रहना पर वैराग्य है १ जनक आदिकों के समान सतसंग और सतशस्त्रों के द्वारा संसार तथा उसके भोगों को मिथ्या जानकर चित में वैराग्य का उत्पन्न होना अपर वैराग्य है २ सतसंग और शास्त्रों को सुनकर परिश्रम द्वारा अपनी इन्द्रियों को दुराचरणों से हटाना यतमान वैराग्य है ३ शेष रहे हुए विकारों से भी वृति को हटाना व्यतिरेक वैराग्य है ४ मन को इन्द्रियों सहित संसार के भोगों से हटाकर परोपकार तथा इश्वर ध्यान में लगाना एक इन्द्रिय वैराग्य है ५ ब्रह्मा आदि लोकों के भोगु को काग विस्टा के तुल्य जान कर स्वप्न में भी भोगों की इच्छा न करना वसीकार वैराग्य है ६ धन स्त्री पुत्र आदिकों के मृत्यु होने से अथवा इनके न प्राप्त होने से वैराग्य का उत्पन्न हाना मंद वैराग्य है ७ धन स्त्री आदि सर्व सुख होने पर भी यह संसार स्वार्थ का है सम्पूर्ण भोग मिथ्या है और दुखों के समुन्द्र हैं भोगों के अधिक सम्बन्ध से नरक की प्राप्ति होती है ऐसा विचार उदास चित से ज्ञानवान होकर संसार में विचरना तीव्र वैराग्य है ८ इस लोक से लेकर ब्रह्म लोक तक भोगों को विस्टा के समान जानकर भोगों को ग्रहण नहीं करना अथवा सहज स्वभाव से मिले हुये धन पदार्थ और स्त्री आदिकों को त्याग देना तर तिव्र वैराग्य है ९ ।

प्रश्न—मस्तक में छः मकान कौन से है।

उत्तर—१. भंवर गुफा २. गगन मण्डल ३. झीनोकार ४. रणोकार ५. सोहन सिकर ६. सुन चकर

प्रश्न—अनुभव का क्या अर्थ है सो विधि पूर्वक कहो।

उत्तर—स्ययं ब्रह्मा स्वयं विस्ण स्वय मिद्र स्वयं शिलः। स्वयं
विश्व मिंद स्वस्मा दन्यन्न विज्यन ।। वि०चु० ३६८।।

ब्रह्माजी विस्णुजी इन्द्र और जगत सब मुज में लीन है मेरे से भिन्न नहीं है सर्व मेरा ही स्वरूप है आत्मा स्वयं स्वरूप के निश्चय को अनुभव कहते हैं।

प्रश्न—शब्द की उत्पत्ति कहां से होती है।

उत्तर—शुन्न से शब्द की उत्पति होती है।

प्रश्न—शब्द की सामग्री क्या है।

उत्तर—स्वर व्यंजन शब्द की सामग्री है।

प्रश्न—शब्द की वृत्ति कौन है नाद कहां से प्रकट होता है और शब्द की जात क्या है।

उत्तर—हृदाकाश में दहराकाश है वहां से नाद प्रकट होता है। शक्ति लक्षण वृति शब्द की है इसकी बाणी परामानी है और शब्द की जात दो मानी है ध्वनि विलोचनी यानी वर्णन ध्वनिरूप।

प्रश्न—अनुभव पांच कौन है ज्ञान पांच कौन है और निश्चय कहां ठहराता है सो कहो।

उत्तर—हे भाई शुन मतिश्रुति मन पर जय बोद्य और केवल ये पांचु कठो है। हढ़ अपरोक्ष आत्मा अपरोक्ष आत्मा अनुभव पद पाता है। जो पुरुष सतगुरु के वचन और वेद के महा वाक्यों द्वारा निश्चय अपने स्वरूप में ब्रह्म हूं ऐसा जान गया है वो फिर जनम मरण से रहित होता है।

प्रश्न—उलट बोद्य का है गुरुजी गोरख नाथजी की बाणी में कहते हैं अंधा देखे सो क्या है और बहरा सुने सो क्या है और बिना नासिका सुघन लेवे सो क्या है और बिन पग नाच करे सो क्या है। मुख बिना और जिभ्या बिना राग भजन करे सो क्या है। ठूठा पहाड़ उठाता है। बिना हाथ ताल बजाता है सो क्या है। बद्धली अग्नि में सुख पावे सो क्या है। बांजड़ी के पुत्र कौन है। कीड़ी हाथी को पकड़ा सो क्या है। और गऊ सिह ने खाया सो

क्या हैं। कीड़ी नो मण सुरमा सारां सो क्या है। मूसा बिल्ली को पकड़ा सो क्या है। या मारा सो क्या है। डुङ्गरी पर ढोल बाजे बिन गाना सुणै सो क्या है।

उत्तर—अहंता ममता रूपी आंख से, इन्द्रियों से रहित ज्ञानी पुरुष अंधा जान। ध्यान समाधी में अनहद्य नाद दस प्रकार का बाजा सुनता और श्रोत्रेन्द्रियों के जो सम्बन्ध से रहित है वह बहरा: राग शास्त्र नाद की जो सुनता है। सत पुरुष महात्मा स्थानी कंवल सुगन्ध स्थानी महात्मा का अदवैत ज्ञान है नासिका इन्द्रियां: रहित जिज्ञासु भवर सुगन्ध रुपी वचन सुनकर आता है। पांच इन्द्रियों से रहित ज्ञानी पुरुष इच्छा स्थानी पृथ्वी पर नाच करता है गूंगा स्थानी ज्ञानी पुरुष राग भजन स्थानी ब्रह्म का चिन्तन करता है मैं ब्रह्म हूं। टूंटा स्थानी ज्ञानी महात्मा है हस्त इन्द्रि के सम्बन्ध से रहित टूंटा है। और महान कृत्य रुपी परवत को उठाया मानों। फिर टूंटा ताल बजावे सो ज्ञानी पुरुष अभेद ज्ञान रुपी ताली बजाकर सन्शे रुपी पक्षी को उड़ाता है। शुद्ध वुद्धि रुपी मछली जान वृह रुपी यानी ब्रह्म ज्ञान रुपी अग्नि में निश्चय रुपी सुख पावे है फिर ब्रह्मकार वृति होकर कहती है मैं ब्रह्म हूं। बांजड़ी स्थानी सात्विक वृत्ति है इसके पुत्र स्थानी ज्ञान है। कीड़ी स्थानी अन्तर मुख वुद्धि है 'हाथी स्थानी मन है ऐसा जान। राई स्थानी मैं ब्रह्म हूं ऐसी सूक्ष्म वृति रुपी राई जान परबत स्थानी अज्ञान है और माया रुपी समावे है। गऊ स्थानी सील वृति रुपी गऊ जान और सील पुरुष ज्ञानी सिंग स्थानी अहंकार को खाया कहिये मीटाया जान 'कीड़ी स्थानी सुध वृत्ति नो मण काजल स्थानी इश्वर की नो प्रकार की भक्ति नोद्या जान। मूसा स्थानी ज्ञान बिलाइ स्थानी अविद्या को मारा कहिये मिटाया जान। डुङ्गरी स्थानी उच्चपद है ढ़ोल स्थानी में ब्रह्म हूं ऐसे महात्मा का वचन रुपी ढोल है श्रोत्रेइन्द्रिय रहित ज्ञानी अनन्तर वृत्ति वान जान।

शब्दार्थ—ओं = इश्वर का मुख्य नाम। भूः = सत्त। भुवः = चित। स्वः = आनन्द। सवितु = जगदुत्पादक। देवस्यः = दिव्य गुण युक्त इश्वर के। तत = उस। वरेण्यम = ग्रहण करने योग्य। भर्गो = शुद्ध स्वरुप को। धीमही = धारण करें। यः = जो। ना = हमारी। धियः = वुद्धियों को। प्रचोदयात = प्रेरित करे।

आनन्द

जैसे बिज में पेड़ होता और पेड़ में बीज होता है इसी प्रकार आत्मा में मन होता है और मन में आत्मा होती है इसी प्रकार प्रमात्मा में आत्मा रहता है और आत्मा में प्रमात्मा रहता है और प्रमात्मा में संसार रहता है और संसार में प्रमात्मा रहता है यानी जैसे मंदी के पत्ते में लाली छुपी हुई रहती है पर दिखने में नहीं आती है पर जब उस मंदी को घोट कर लगाते हैं तो उसकी लाली नजर आती है इसी प्रकार प्रमात्मा सब के अन्दर और सारे ब्रह्माण्ड में परि पूर्ण रूप से ओत पोत भरा हुआ है पर किसी को नजर नहीं आता पर जब किसी वड़भागी आत्मा को सत गुरु मिल जाता है तो वह उस आत्मा को अपना निज ज्ञान रूपी शब्द दे देते हैं तो फिर उस आत्मा को सब जगे प्रमात्मा ओत पोत परि पूर्ण आदन्द रूप से नजर आता है फिर उस आत्मा का भव बन्धन का फेरा मिट जाता है और आनन्द धन प्रमात्मा को प्राप्त हो जाता है।

साक्षी

जैसे किसी नाटिक ड्रमा में कलाकार काम करते हैं तो उस के क्रत भोगता वो ही होते हैं देखने वाले नहीं इसी प्रकार प्रकृति भोगता धर्म का प्रक्रिति का है मुज आत्मा का नहीं क्यों कि प्रकृति का साक्षी आत्मा देखने वाला है क्रता भोगता नहीं जो आत्मा गुरु से शब्द लेके ज्ञान विवेक से अपने को अक्रता अभोगता प्रकृति का साक्षी देखने वाला समजता है वह भव बन्धन से मुक्त हो जाता है और प्रमात्मा को प्राप्त हो जाता है।

इच्छा

इच्छा से रहित हो के जो कर्म करता है उसको कर्म लागू नहीं होता क्योंकि खुद की इच्छा तो कुछ रखता नहीं दूसरे की इच्छा से कुछ करता है इसी से खुद करता नहीं क्योंकि जिसकी इच्छा होती है उसका करता वो ही होता है इसी से जो इच्छाओं से रहित हो के जो रहता है और दूसरे की इच्छा से कुछ करता है वह अक्रता ही रहता है और प्रमात्मा को प्राप्त हो जाता है

प्रकृति

जैसे सरदी का मौसम आता है तो सरदी अपने आप ही हो जाती है और गरमी का मौसम आता है तो गरमी अपने आप ही हो जाती है और [illegible]श का मौसम आता है तो बारिश अपने आप ही हो जाती है इसी प्रकार

प्रकृति रूप संसार और शरीर बना हुआ है और यहीं बनता है और मिटता है और यहीं अपना काम आप ही कर लेता है क्योंकि प्रकृति का सुबाव और कर्म यही है इसमें प्रकृति का साक्षी देखने वाला आत्मा है प्रकृति को चलाने वाला नहीं क्योंकि प्रकृति अपने आप ही चलती है इसका चलाने वाला या कर्ता अज्ञान से आत्मा बन जाता है तब ही यह जीव रूप बन जाता है और चौरासी लाख प्रकृतियों की योनियों में फिरा करता है और सुख दुःख भोगता रहता है और जब इस आत्मा को सच्चा गुरु मिल जाता है तो वह इसको अपना निज ज्ञान रूपी शब्द देके कहते हैं कि तेरा काम प्रकृति को चलाने का या कर्ता बन जाने का नहीं है तू तो इसका साक्षी अकर्ता अभोगता देखने वाला है इस माफिक रहेगा तो परम आनन्द परमात्मा को प्राप्त कर लेगा।

किसिका प्रश्न।

किसी प्रकृतिमाया ने मुझ से कहा की आप कौन हैं और क्या हैं तब तब मैंने उस दुवेत वाले को कहा की आपने जो प्रश्न किया है वह तो दुवेत प्रकृति माया वाले जीव के कर्म हैं इसी से सिद्ध होता है की आप अभी तक प्रक्रिति माया वाले जीव ही हैं क्योंकि आप अ'द्वेत प्रक्रितिमाया के साक्षी आत्मा होते तो कहन सुनन से रहित क्रिया रहित सितल स्यान्त आनन्द ज्ञान स्वरूप होते और आप किसी से किसी प्रकार का प्रश्न नहीं करते क्योंकि अ'द्वेत साक्षी आत्मा में आनन्द के सिवा कुछ नहीं बनता है और इसके अलावा जो भी कुछ बनता है वह सब प्रक्रिति माया वाले जीव में बनते हैं इसी से सिद्ध होता है की अभी तक आपने अपना मानुश चोला बेकार ही खोया है अभी भी आप जल्दी चेतकार किसी सतगुरु से ज्ञान रुपी शब्द लेके अपने निज अद्वेत साक्षी आत्मा में स्थित स्थिर हो जावो और प्रमानन्द प्रमात्मा को प्राप्त हो जावो और अपना मानुश चोला सफल बनालो।

प्रश्न और उत्तर

प्रश्न—किसी प्रश्न कृता ने कहा की जब ईश्वर निराकार है दिखता नहीं और कोई आकार ही नहीं तो उसका नाम कैसे रखा और उसका स्वरूप बतलाओ—

उत्तर—उत्तर दाता ने कहा की जब आपके किसी प्रकार की चोट लग जाती और आपको भूख प्यास लगती है और भीं सीत भुकार इत्यादिक कुछ हो जाता है तो यह सब दिखने में नहीं आती है और ना इनका रंग रूप

नजर आता है फिर भी आप इनका नाम क्यों रख देते हो और महसुस भी करते हो इसी प्रकार परमात्मा का नाम रखा जाता है और वह सच्चे भक्तों को मसुम में भी आते हैं—

दृष्टि

जैसे दृष्टि वैसी श्रेष्ठी यानी जिस रूप से देखोगे वैसा ही बन जावोगे माया की दृष्टि से देखोगे तो मायावी जीव बन जावेगी और लख चोरासी मे फिरा करोगे और सुख दुःख भोगते रहोगे और जब गुरु के ज्ञान बल से ईश्वर दृष्टि से देखोगे तो प्रमानन्द परम तत्व ब्रह्म बन जावोगे और ना आवोगे ना जावोगे अपने ह्स्थाई स्वरूप में स्थित स्थिर हो जावोगे।

चलना

जैसे आदमी चलता है तो उसके साथ में उसकी छाया भी चलती और जब वह चलना बन्द कर देता है तो उसकी छाया का भी चलना बन्द हो जाता है इसी प्रकार आदमी का मन माया में चलता है तो उसके साथ जन्म मरण रूपी छाया भी चलती है और जब आदमी का मन माया में ना चलता है और आत्मा में अचल रहता है तो उसका जन्म मरण रूपी छाया का चलना होता है वह समाप्त हो जाता है और परमानन्द परमात्मा प्राप्त हो जाता है।

ब्रह्म ज्ञान

प्रश्न—ब्रह्म ज्ञान किसको कहते हैं।

उत्तर—जो सब के अन्दर अपने को देखता है और सब में अपने को दिखा देता है।

परमात्मा

आत्मा, माया, जीव, सन्सार !

ऊपर जो बिन्दु बतलाई गई है उसीके समान निजन निराकार जोती स्वरूप परमात्मा है उसी में से आत्मा आती है। माया की साक्षी रहने के लिए पर यह आत्मा साक्षी तो रहती नहीं माया में फंस कर जीव रुप बन जाती है और संसार में बार बार आती जाती है और सुख दुःख भोगती रहती है और यह माया में ना फंसकर केवल साक्षी होके रहती है तो यहां से आई थी वहीं पर चली जाती है यानी परम पिता परमात्मा में समा जाती है इसी को मोक्ष व मुक्ति कहते है।

साधु

भगवान कहते हैं कि—साधू मेरी आत्मा में साधू की देह—रुम रुम में रम रहा ज्यों बादल में मेह।

प्रश्न—ऐसा साधू कौनसा है जिसके रोम रोम में भगवान निवास करते हैं ?

उत्तर—जो आत्मा प्रकृति माया की साधना को छोड़ कर एक परमात्मा की साधना में निथ्ये हमेशा जुटा रहता है उसी में परमात्मा निवास करते हैं और उसीको सच्चा साधू कहते हैं।

प्रश्न उत्तर

आनन्द रूप में भक्त लीन होकर उसका रोम रोम आनन्द स्वरुप हो जावे दुसरा विभिन्न रुप ना रहे उसी का नाम भक्त है और वोही ईश्वर को प्राप्त कर पाता है।

प्रश्न—अध्यातिम्क ज्ञान किसको कहते हैं।

उत्तर—जिसको यह ज्ञान हो जावे की सारा संसार मेरा ही स्वरुप मेरे सिवा दुसरा विभिन्न रुप कोई भी नहीं है उसी को अध्यात्मिक ज्ञान कहते हैं और वोही परमात्मा के स्वरुप को प्राप्त हो जाता है।

दोहा—नोरंग तेरी झौंपड़ी अभय पढ़ के पास।
अपनी-अपनी करणी जायेंगे तू क्यों भया उदास॥

आवश्यकतायें

जैसे आदमी को ज्यादा आवश्यकतायें हो जाने से और उनकी पूर्ति ना होने से चिन्ता लग जाती है और चिन्ता से चित की चेतन शक्ति नष्ट हो जाती है और चेतन शक्ति के नष्ट हो जाने से आदमी को सुमरण शक्ति नष्ट हो जाती है और सुमरण शक्ति के नष्ट हो जाने से आदमी अपने सत से गिर जाता है और सत से गिर जाने से बार-बार जन्मता और मरता रहता है और सुख दुःख भोगता रहता है और जब आदमी गुरु से ज्ञान रूपी शब्द लेके आवश्यकताओं से ऊपर उठकर रहता है तो उसको चिन्ता नहीं रहती है और जब चिन्ता नहीं रहती है तो चित की चेतन शक्ति नष्ट नहीं होती है और जब चेतन शक्ति नष्ट नहीं होती है तो आदमी की सुमरण शक्ति नष्ट नहीं होती और जब सुमरण शक्ति नष्ट नहीं होती है तो आदमी अपने सत से नहीं गिरता है और जब सत से नहीं गिरता है तो सत में ही

समा जाता है क्योंकि सत को ही भगवान कहते हैं और उसि सत की सता में से आत्मा रुपी सता निकलती है और उसी सता में सता समा जाती है।

तत्व ज्ञान

प्रश्न —तत्व ज्ञान किसको कहते हैं।

उत्तर—भाव अभाव दोनों से रहित रहने को।

प्रश्न—भाव अभाव किसको कहते हैं।

उत्तर—मन में संकल्प होने को भाव कहते हैं और मन में संकल्प ना होने को अभाव कहते हैं पहले तो तत्व ज्ञानी का मुख्य कर्तव्य यह है कि भाव अभाव दोनों को ना होने देना अगर प्रालब्द के अनुसार होते भी हैं तो उनको अपना नहीं मानना और ना मैं इनका कर्ता हूं क्योंकि यह प्रकृति माया के सुभाव हैं और मैं इनका अकर्ता साक्षी देखने वाला सत चित आनन्द स्वरुप आत्मा हूं जो इस प्रकार अपनी भूली हुई समझ को गुरु से समझ लेता है वही परमात्मा को प्राप्त हो जाता है और इसी समझ को तत्व ज्ञान कहते हैं।

मोत

मोत भी क्या चिज है यह भी एक भरम का परदा है इस परदे को दूर हटाके देखो खुद खुदा हाजर हजूर नजर पड़ता है—मरना भी क्या चीज है यह भी एक भरम का परदा है इस परदे को दूर हटा के देखो झलता नूर खुदा का है। दोहा—सतगुरू सेन दीनी अति भारी

सब चराचर में व्यापक सता हमारी

प्रश्न—भगवान किसको कहते हैं—

उत्तर—जो सोये हुए अज्ञानी जीवों को अपनी ज्ञान दृष्टि से अपने समान आनन्द स्वरुप करके अमर करदे और दुःख के दङ्गल में मङ्गल करदे उसी को भगवान कहते हैं।

सच्चा इश्क

दो दिलों के तार हो, एकता तो आसानी की मंजिल है। बसि तसबीर जब दिल में तो मिलना कैसे मुश्किल है, जिनो को इश्क सादिक है वो कब फ़रियाद करते हैं, जुबां पर मोहर खामोसी दिलों में याद करते हैं।

सम

पहले भोगे हुये भोगों में जिसकी असक्ति नहीं है और आगे भोग भोगने की इच्छा नहीं है इन दोनों में सम जो रहता है ऐसा पुरुष मिलना मुश्किल

है, कोई करोड़ों में एक निकलता है। वही ज्ञानी है, वह अपनी आत्मा में ही मस्त रहता है।

तार

एक तार से बहु तार होके संसार बनाता वोही और बहु तार से एक तार होके रहता वोही गुरु बनके देता सीख वोही सिश्य बनके सीख लेता वोही हर फूल बनके खिलता वोही देखने वाला होकर तोड़ता वोही और कहां तक उसका वर्णन करे कहने में नहीं आता हर जरे-जरे में जलवा उसी का और जलवे वाला भी वोही।

अधेत

अधेत को दुवेश बुद्धि वाले ने कहा कि आप भी कुछ कहो तो उसने कहा कि मैं कुछ हूं ही नहीं जो कुछ कहूं क्योंकि ईश्वर या उसकी सत्ता है उसके सिवा कुछ भी नहीं है और उसमें कुछ कहना बनता नहीं तो दुवेश वाला भी समझ गया और उसने कुछ भी नहीं कहा इसी समझ को समझने के लिए गुरु बनाना पड़ता है।

दिवाने

दिवाने वही होते हैं जो अपनी सुद-बुद खो देते हैं और उनको सुद-बुद कोई और हो दिलाते ऐसे दिवानों का बेड़ा पार ईश्वर ही लगाते हैं शक्ति वही है जो सबके दिलों को हिला दे और अपने में लय करले ऐसी शक्ति को पाकर सबको मस्त बनाते हैं और सच्ची ईश्वर की झलक दिखाते हैं उस झलक को कोई जान जाते हैं वह दिवानों की महफिल में शामिल हो जाते हैं और ईश्वर को प्राप्त हो जाते हैं।

मस्तों की जिन्दगी

मस्तों की क्या जिन्दगी है खुद जलते हैं फिर भी मस्त रहते हैं ऐसी मस्ती पाकर वो ईश्वर में लोलीन रहते हैं उनकी लीला अपरम पार है जो मस्तों को मस्त बनाती है और मस्त बना के ईश्वर से मिलाती है।

मस्तों की बहार

अजब है मस्तों की बहार जो सबको मस्त बनाती है और सभी जगह अपनी मस्ती का नूर दिखाती है ऐसे नूर को देख-देख कर बड़े-बड़े विरान हो जाते हैं और विरान होकर अरमानों में भय जाते हैं जब भहते-महते उस प्रमत्त में समा जाते हैं।

कविता दिवानों की

दिवाना किसको कहते हैं जो मिटा दे अपनी हंसती को और रहते हैं उस मस्ती को उस मस्ती में एक हसती रहती है जो शाही नूर खुदा को इसको देखकर सब झूमते रहते हैं दिल दयाव फकिर को ऐसी फकिरी को कोई विरला ज़ाने जो देखा हो अपने नूर को नूर और नुरानी जुदा नहीं रहती है ऐसे खेल देखे हैं साहब दिदार को बाला राम सत् गुरु के सरण नोरंग न पायो भेद अपार को ।

योग

सूरत शब्द के साधना करने का नाम योग है सुरता कहते हैं सबको जानने वाली शक्ति को और शब्द कहते हैं मनन रूपी शक्ति को अ गुरु से ज्ञान का इशारा लेके मनन रूपी शब्द को सुरता में लीन करे औ सुरता को आत्मा में लीन करे फिर आत्मा प्रमात्मा में लीन होवे यह योग गु से मिलता है और इसी योग को प्राप्त करने के लिए मानुश जन्म मिलता और इसी योग को प्राप्त करने के लिए गुरु बनाना पड़ता है ।

कली

हर कली कली में फूल खिलता तू हर फूल फूल में कुसबो देता तू औ हर कुसबो में जलवा दिखाता तू और हर जलवे में लहराता तू और उस लह राने में नजर आता तू तूही तू तेरे सिवा और कुछ भी नहीं ।

गुरु और सत गुरु

गुरु किसको कहते हैं और सत गुरु किसको कहते हैं जैसे बीज से वरक और वरकस से बीज होता है इसी प्रकार जब संसार में अज्ञान का अंधेरा ह जाता है तब अज्ञान के अंधेरे को और ज्ञान का प्रकाश करने को सतगुरु पर पिता प्रमात्मा गुरु रूप में आकर अपना निजज्ञान रूपी शब्द देके प्रकाश करते हैं यानी सतगुरु ही गुरु रूप में आते हैं और सतगुरु स्वरूप में समा जाते हैं सतगुरु और गुरु मे कोइ भेद नहीं होता सतगुरु है वोही गुरु है और गुरु है वोही सत गुरु है इनमें कोई भेद समझता है उसको बड़ा भारी पाप लगता है ।

घर

एक परमात्मा का हो जाने पर सारे संसार का प्यारा हो जाता है क्यों कि एक परमात्मा ही सारे संसार में व्याप्क है इसी से जो एक परमात्मा का प्यारा हो जाता है वह सारे संसार का प्यारा हो जाता है और जो एक

परमात्मा का तो प्यारा होता नहीं और सारे संसार का प्यारा होना चाहता है वह संसार का भी प्यारा नहीं होता और ना परमात्मा का प्यारा होता है क्योंकि जो एक का ना हुआ वह सबका कैसे हो सकता है इसीलिए तो कहते हैं दुःख दया में दोनों गये माया मिलन राम और यूं भी कहते हैं कि हर का हुआ ना घर का इसी से जो एक पमात्मा के घर को हो जाता है वह सब घर का आदिकारी हो जाता है क्योंकि परमात्मा सब घरों में निवास करते हैं उसके सिवा कोई भी घर खाली नहीं है।

नुगरा और सुगरा

नुगरा जो आदमी होता है वह अपने नूर से जुदा रहके प्रकृति माया जीव रुप से रहता है और उसकी जीव दृष्टि रहती है इसी से उसके लिए जीव ही सृष्टि रहती है और उसमें पाप पुन्य सुख दुःख जनम-मरण यह सब लागू रहते हैं और भोगता रहता है और गुरु मुखी सुगरा आदमी जो होता है वह अपने नुर में समाया हुआ रहता है और आत्म रूप से रहता है और उसकी ईश्वर दृष्टि रहती है इसी से उसके लिए ईश्वर ही सृष्टि रहती है और उसमें पाप-पुन्य सुख-दुःख जनम-मरण कुछ भी नहीं रहता केवल साक्षी आनन्द स्वरूपी आत्मा रहता है जो ना आता है ना जाता है केवल अपने आप में स्थित स्थिर एक रस अवस्था में रहता है।

अवस्था

जैसे नींद में सपने की अवस्था भी आपकी होती है और जागने पर सपना ना रहने की अवस्था भी आपकी होती है इसी प्रकार अन्धेरा रुपी रात्री की अवस्था भी उसी की और उजाले रुपी दिन की अवस्था भी उसी की। इसी प्रकार प्रकृति माया जीव रुप अवस्था भी आपकी और प्रकृति माया जीव रुप अवस्था से रहित स्थित शांत आनन्द ज्ञान स्वरुप अवस्था भी आपकी यानी वोही ईश्वर सत्ता संसार स्वरुप प्रकृति माया जीव रुप होके अपने आप से आप ही खेल खेलती है और वोही ईश्वर सत्ता संसार स्वरुप प्रकृति माया जीव रुप से रहित होके खेल खेलना बन्द करके साक्षी स्वरुप होके अपने आप में स्थित स्थिर हो जाती है।

अचल

जैसे चिराग को हवा लगेगी तब तक अचल नहीं होगा और ना प्रकाश देगा पर जब हवा बन्द होते ही अचल हो जाता है और प्रकाश देता है

इसी प्रकार आप भी वासना रुपी हवा से अचल नहीं हो जावोगे तब तब परमात्मा के आनन्द रुपी प्रकाश को नहीं प्राप्त कर पाओगे और जब वासन रुपी हवा बन्द हो जाती है तो आप भी अचल हो जाते हो और परमात्मा के आनन्द रुपी प्रकाश को प्राप्त हो जाते हो फिर तुम खुद आनन्द मय हो जा हो फिर ना आते हो ना जाते हो अपने आप में स्थित स्थिर हो जाते हो।

गुरु

प्रश्न—गुरु किसको कहते हैं ?

उत्तर—'गु' नाम है अन्धकार का और 'रु' नाम है आत्मा का जो 'गु' अन्धकार को मिटा वे, 'रु' रूपी आत्मा का प्रकाश कर दे उसी का नाम 'गुरु' है।

कर्ता

कर्ता उसी को कहते हैं जो संसार रुपी कर्म कीचड़ में फंस जाता है। जैसे कि उदाहरण के लिये :—

बनता हैं कर्ता वोही कर्म कीच में फंसता जो।
कर्म कीच में फसता है वोही गरब-अग्नि में रंदता जो।।
गरब-अग्नि में रंदता है वोही जन्म-मरण में फिरता जो।
जन्म-मरण में फिरता है वोही सुख दुःख भोगता जो।।

अगर जो इन्सान कर्ता नहीं बनता है, केवल प्रालब्द रुपी भोग में सम रहता है वह परमात्मा का आनन्द रुपी अमरत पिकर अजर अमर हो जाता।

सृष्टि की उत्पत्ती

सृष्टि की उत्पत्ति वहुत प्रकार की मानी है किसी ने अनादि पदार्थों से मानी है किसी ने व्रह्म की इच्छा से मानी है किसी ने अपने आप से सृष्टि की उत्पत्ति मानी है, और अनेक वार सृष्टि उत्पन्न हुई है अनेक वार ही प्रलय हुई है परन्तु सूक्ष्म रिति से तो पहले ऐक व्रह्म ज्योति स्वरुप था उसके साथ उसकी तेज शक्ति भी थी जैसे सूर्य का प्रकाश सूर्य से भिन्न नहीं से है वैसे ही इश्वर की शक्ति इश्वर से भिन्न नहीं हैं अर्थात् इश्वर के अन्तर्गत है उसी शक्ति से परमात्मा ने शुद्ध सत्तोगुण और मलीन सत्वगुण माया में व्यापक व्रह्म के प्रतिविम्व पढ़ने से माया में क्षोभ हुआ और अहम शब्द फुरने लगा अतः ओम पुरुष अपने को ईश्वर समझने लगा उस ईश्वर में अहम शब्द के करने से

सूक्ष्म साढ़े तीन मात्रायें उत्पन्न हुई अकार, उकार, मकार और अर्द्ध बिन्दी और सूक्ष्म रुप महतत्व भी उत्पन्न हुए फिर अकार से ब्रह्मा उकार से विष्णु और मकार से शिव स्थूल रुप से उत्पन्न हुए इन सबों ने सत्तो गुण रजोगुण व तमो गुण यह सब मिलकर उपरोक्त प्रकार से संसार की उत्पत्ति की इस प्रकार शास्त्रकारों ने भी संसार की उत्पति अनेकों प्रकार से दिखाई है क्योंकि यह एक ही बार तो उत्पन्न और लय को प्राप्त नहीं हो चुकी है क्योंकि सृष्टि अनन्त है जो उत्पन्न होकर फिर लीन हो जाती है यह कारोबार सर्वदा चलता रहता है।

प्रश्न उत्तर

प्रश्न—इश्वर किसको कहते हैं।

उत्तर—शुद्ध सत्तोगुण माया में ब्रह्म का प्रतिबिम्ब इन तीनों के सम्बन्ध को इश्वर कहते हैं।

प्रश्न—इश्वर के शरीर कितने हैं।

उत्तर—इश्वर के तीन शरीर है। १. विराट २. हिरणी गर्भ ३. अभ्याकृत।

प्रश्न—ईश्वर के तीनों शरीरों का अलग-अलग विवरण बतलाओं ?

उत्तर—हे भाई सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ज्यो आंख से दिखता है वह ओनमात्र स्थूल शरीर मिलकर इश्वर का विराट शरीर माना जाता है। सम्पूर्ण जो समष्टि सृष्टि स्वप्न सृष्टि वह सर्व वृष्टि सूक्ष्म शरीर याने सबका सूक्ष्म शरीर मिल कर ईश्वर का हिरनी गर्भ शरीर माना जाता है। और जो समष्टी कारण शरीर मिल करके ईश्वर का अभ्याकृत शरीर मिल करके इश्वर का अभ्याकृत शरीर माना जाता है।

प्रश्न— ईश्वर के धर्म कितने हैं और क्या हैं।

उत्तर—हे भाई ईश्वर के धर्म आठ हैं। १. सर्वज्ञ २. सर्व शक्तिमान ३. व्यापक ४. एक पना ५. सामर्थ ६. स्वतन्त्र ७. प्रोक्ष ८. माया उपाधीवान इस प्रकार अष्ट धर्म माना है।

प्रश्न—इश्वर की अवस्था कितनी है और क्या है भिन्न-भिन्न करके कहो।

उत्तर—है भाई इश्वर की अवस्था तीन है। १. उत्पति २. स्थिति ३. प्रलय सर्व जीवों की जाग्रत अवस्था मिलकर ईश्वर की स्थिति अवस्था

इसी प्रकार आप भी वासना रुपी हवा से अचल नहीं हो जावोगे तब तक परमात्मा के आनन्द रुपी प्रकाश को नहीं प्राप्त कर पाओगे और जब वासना रुपी हवा बन्द हो जाती है तो आप भी अचल हो जाते हो और परमात्मा के आनन्द रुपी प्रकाश को प्राप्त हो जाते हो फिर तुम खुद आनन्द मय हो जाते हो फिर ना आते हो ना जाते हो अपने आप में स्थित स्थिर हो जाते हो।

गुरु

प्रश्न—गुरु किसको कहते हैं ?

उत्तर—'गु' नाम है अन्धकार का और 'रु' नाम है आत्मा का जो 'गु' अन्धकार को मिटा वे, 'रु' रूपी आत्मा का प्रकाश कर दे उसी का नाम 'गुरु' है।

कर्ता

कर्ता उसी को कहते हैं जो संसार रुपी कर्म कीचड़ में फंस जाता है जैसे कि उदाहरण के लिये :—

बनता हैं कर्ता वोही कर्म कीच में फंसता जो।
कर्म कीच में फसता है वोही गरब-अग्नि में रंदता जो॥
गरब-अग्नि में रंदता है वोही जन्म-मरण में फिरता जो।
जन्म-मरण में फिरता है वोही सुख दु:ख भोगता जो॥

अगर जो इन्सान कर्ता नहीं बनता है, केवल प्रालब्द रुपी भोग में सम रहता है वह परमात्मा का आनन्द रुपी अमरत पिकर अजर अमर हो जाता।

सृष्टि की उत्पत्ती

सृष्टि की उत्पत्ति वहुत प्रकार की मानी है किसी ने अनादि पदार्थों से मानी है किसी ने ब्रह्म की इच्छा से मानी है किसी ने अपने आप से सृष्टि की उत्पत्ति मानी है, और अनेक वार सृष्टि उत्पन्न हुई है अनेक वार ही प्रलय हुई है परन्तु सूक्ष्म रिति से तो पहले ऐक ब्रह्म ज्योति स्वरुप था उसके साथ उसकी तेज शक्ति भी थी जैसे सूर्य का प्रकाश सूर्य से भिन्न नहीं से है वैसे ही इश्वर की शक्ति इश्वर से भिन्न नहीं हैं अर्थात् इश्वर के अन्तर्गत है उसी शक्ति से परमात्मा ने शुद्ध सत्तोगुण और मलीन सत्वगुण माया में व्यापक ब्रह्म के प्रतिविम्ब पड़ने से माया में क्षोभ हुआ और अहम शब्द फुरने लगा अत: ओम पुरुष अपने को ईश्वर समभने लगा उस ईश्वर में अहम शब्द के करने से

सूक्ष्म साढ़े तीन मात्रायें उत्पन्न हुई अकार, उकार, मकार और अर्द्ध बिन्दी और सूक्ष्म रुप महतत्व भी उत्पन्न हुए फिर अकार से ब्रह्मा उकार से विष्णु और मकार से शिव स्थूल रुप से उत्पन्न हुए इन सबों ने सत्तो गुण रजोगुण व तमो गुण यह सब मिलकर उपरोक्त प्रकार से संसार की उत्पत्ति की इस प्रकार शास्त्रकारों ने भी संसार की उत्पति अनेकों प्रकार से दिखाई है क्योंकि यह एक ही बार तो उत्पन्न और लय को प्राप्त नहीं हो चुकी है क्योंकि सृष्टि अनन्त है जो उत्पन्न होकर फिर लीन हो जाती है यह कारोबार सर्वदा चलता रहता है।

प्रश्न उत्तर

प्रश्न—इश्वर किसको कहते हैं।

उत्तर—शुद्ध सत्तोगुण माया में ब्रह्म का प्रतिविम्ब इन तीनों के सम्बन्ध को इश्वर कहते हैं।

प्रश्न—इश्वर के शरीर कितने हैं।

उत्तर—इश्वर के तीन शरीर है। १. विराट २. हिरणी गर्भ ३. अभ्याकृत।

प्रश्न—ईश्वर के तीनों शरीरों का अलग-अलग विवरण बतलाओं ?

उत्तर—हे भाई सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ज्यों आंख से दिखता है वह अोनमात्र स्थूल शरीर मिलकर इश्वर का विराट शरीर माना जाता है। सम्पूर्ण जो स्वप्न सृष्टि स्वप्न सृष्टि वह सर्व वृष्टि सूक्ष्म शरीर याने सबका सूक्ष्म शरीर मिल कर ईश्वर का हिरनी गर्भ शरीर माना जाता है। और जो समष्टी कारण शरीर मिल करके ईश्वर का अभ्याकृत शरीर मिल करके इश्वर का अभ्याकृत शरीर माना जाता है।

प्रश्न— ईश्वर के धर्म कितने हैं और क्या हैं।

उत्तर—हे भाई ईश्वर के धर्म आठ हैं। १. सर्वज्ञ २. सर्व शक्तिमान ३. व्यापक ४. एक पना ५. सामर्थ ६. स्वतन्त्र ७. प्रोक्ष ८. माया उपाधीवान इस प्रकार अष्ट धर्म माना है।

प्रश्न—इश्वर की अवस्था कितनी है और क्या है भिन्न-भिन्न करके कहो।

उत्तर—है भाई इश्वर की अवस्था तीन है। १. उत्पति २. स्थिति ३. प्रलय सर्व जीवों की जाग्रत अवस्था मिलकर ईश्वर की स्थिति अवस्था

मानी जाती है और सर्व जीवों की ससोपती अवस्था मिलकर इश्वर की प्रलय अवस्था मानी जाती है।

प्रश्न—इश्वर का देश कौनसा है।

उत्तर—इश्वर का देश शुद्ध सतोगुणी माया है याने सर्व देशी है।

प्रश्न—इश्वर का लक्ष स्वरुप सो क्या है ?

उत्तर—हे भाइ इश्वर का लक्ष स्वरुप निर्णय सर्व व्यापक सत चित आनन्द स्वरुप है।

प्रश्न—जीव किसको कहते हैं ?

उत्तर—अन्त.करण अथवा अविधा में चेतन का प्रतिबिम्ब और चेतन इन तीनों के सम्बन्ध को जीव कहते हैं। जीव इश्वर ब्रह्म वास्तव में अभेद है। याने एक रुप है किन्तु उपाधी भेद करके जज्ञासू जनों के समझने के लिये इनका पृथक पृथक निर्णय किया जाता है।

प्रश्न—जीव कितने हैं भिन्न भिन्न करके कहो ?

उत्तर—हे भाई वास्तव में जीव एक ही है। परन्तु उपाधी भेद है जीव तीन माना है विश्व, तेजस, प्राज्ञ सो जानिये।

प्रश्न—जीव का स्थान कौन है ?

उत्तर—विश्व जीव का नेत्र स्थान है तेजस जीव का कंठ स्थान है प्राज्ञ जीव का हृदय स्थान है।

प्रश्न—जीव के शरीर कितने हैं।

उत्तर—स्थूल, सुक्षम और कारण यह तीन हैं।

प्रश्न—स्थूल शरीर किसको कहते हैं ?

उत्तर—पचीकृत पच महा भूत और पचीस प्रकृतियों को स्थूल शरीर कहते हैं।

प्रश्न—पांच तत्व और पंचीस प्रकृतियां कौनसी है।

उत्तर—स्थूल देह के पंचीकृत, पंचीस प्रकृतियों का कोष्ट देखो।

कोष्ट का निर्णय

१. आकाश की शोक, काम, क्रोध, मोह और भय ये पांच प्रकृतियां है जिसमें से शोक शुन्य होने से आकाश का भाग है क्योंकि आकाश भी शुन्य है। आकाश में २ काम चंचल रुप होने से वायु का भाग है क्योंकि वायु का रुप भी चचल है। आकाश में ३ क्रोद तेज का भाग है क्योंकि अग्नि तेज रुप

है। आकाश में ४ मोह प्रसरण रूप होने के कारण जल का भाग है। क्योंकि जल ही पसरता है। आकाश में ५ भय जड़ रूप होने से पृथ्वी का भाग है क्योंकि पृथ्वी जड़ रूप है।

२. वायु की धावन प्रसारण वलन चलन आकुचन ये पांच प्रकृति है। जिनमें से वायु में १. धावन दौड़ने के कारण वायु का मुख्य भाग है। क्योंकि वायु भी दौड़ता है वायु में २ प्रसारण फैलने के कारण आकाश का भाग है क्योंकि आकाश भी सर्वत्र फैला हुआ है। वायु में ३ वलन इरि के कारण अग्नि का भाग है। क्योंकि अग्नि का स्वभाव भी वलना है। वायु का ४ चलन चलन के कारण जल का भाग है। क्योंकि जल भी चलता है। वायु में ५ आकुचन संकुचित होने से पृथ्वी का भाग है। क्योंकि पृथ्वी भी संकोचित रहती है।

३. अग्नि की क्षुधा तृषा क्रांती आलस्य ये पांच प्रकृति है जिनमें से अग्नि में १ क्षुधा अनादिकों भस्म करने से अग्नि का मुख्य भाग है। क्योंकि अग्नि भी सबको भस्म करती है। अग्नि में २ निन्द्रा सून्य होने से आकाश का भाग है। क्योंकि आकाश भी शुन्य है। अग्नि में ३ तृषा कंठ के शोषण करने से वायु का भाग है। क्योंकि वायु भी सोषण करता है। अग्नि में ४ क्रांती धूप के द्वारा घट जाने के कारण जल का भाग है। क्योंकि धूप से जल भी घटता है। अग्नि में ५ आलस्य जड़ होने के कारण पृथ्वी का भाग है। क्योंकि पृथ्वी भी जड़ है।

४. जल की वीर्य लार पसीना मूत्र रक्त ये पांच प्रकृतियां हैं। जिनमें से जल में १ वीर्य सफेद वर्ण वाला गर्भ के हेतु होने से जल का मुख्य भाग है क्योंकि सफेद और खेती आदिकों के उत्पत्ति का हेतु है। जल में २ लार ऊँची और नीची होने से आकाश का भाग है। क्योंकि आकाश ऊंचे और नीचे होने से जल में ३ पसीना परिश्रम से उत्पन्न होता है। और वायु भी पंखा आदि चलाने से उत्पन्न होती है। इसलिये पसीना वायु का भाग है। जल में ४ मूत्र गर्म होने से अग्नि का भाग है। क्योंकि अग्नि भी गर्म है। जल में पांच रक्त लाल रूप होने से पृथ्वी का भाग है। क्योंकि पृथ्वी लाल वर्ण वाली है।

५. पृथ्वी की हाड रोम त्वचा नाडी मांस ये प्रकृतियां हैं जिनमें से पृथ्वी में १ हाड कठिन होने से पृथ्वी का मुख्य भाग है। क्योंकि पृथ्वी भी कठिन है। पृथ्वी में २ रोम शुन्य होने से आकाश का भाग है। क्योंकि आकाश

शुन्य है। पृथ्वी में ३ त्वचा शितोशरण कठिन है और कोमल स्पर्श युक्त होने
से वायु का भाग है। क्योंकि वायु भी स्पर्श वाला है। पृथ्वी में ४ नाडी ज्व
ताप को जानने से अग्नि का भाग है। क्योंकि अग्नि भी ताप रूप है। पृथ्वी
में ५ मांस गिला होने से जल का भाग है। क्योंकि जल भी गीला है।

पंचीकृत समाप्त

प्रश्न—सूक्ष्म शरीर सो क्या है।

उत्तर—पच्चीस व सतरह तत्वों को कहते हैं।

प्रश्न—पच्चीस तत्व सो क्या है।

उत्तर— पच्चीस तत्व आगे वर्णन हैं।

सुक्षम देह का पच्चीस तत्वों का निर्णय आकाश तत्व का अन्तः
कर्ता भोगता है। जिसका देवता जीव आत्मा है। वहान वायु रूप बहा
चढ़ कर श्रोता इन्द्री द्वारा शब्द विषय का भोग भोगता है। क्योंकि श्रो
द्वारा ही अच्छे बुरे शब्द सुन कर अन्तःकरण में सुख दुःख रूप भोग हो
और मुख जिनका सेवक है वह सेवक मुख द्वारा वाणी की सेवा करता है
इसकी क्रिया है ॥ १ ॥

वायु का मन कर्ता भोगता है जिसका देवता चन्द्रमा है वह
और विकल्प से समान वायु रूप वाहन पर चढ़ कर त्वचा
द्वारा स्पर्श विषय के भोग भोगता है और हाथ उसकी सेवा करता है। व
त्वचा के रक्षक हैं। जैसे शरीर वस्त्र आदि से और गर्मी में पंखादि के
से रक्षा करता है और भी देख लेना इत्यादि क्रिया करता है। इसलिये
सेवक है। इनके द्वारा सुख और दुख भोगने वाला मन है ॥ २ ॥

अग्नि का बुद्धि कर्ता भोगता है। जिसका देवता ब्रह्मा है। वह नि
से उद्यान वायु रूप वाहन पर चढ़कर नेत्र इन्द्रिय द्वारा रूप विषय के
भोगता है। पैर उसके सेवक है। क्योंकि चलने फिरने की सेवा करता है
यही इसकी क्रिया है ॥ ३ ॥

जल तत्व का चित कर्ता भोगता है। जिसका देवता विष्णु है।
चितवन से प्राण वायु रुप वाहन पर चढ़कर जिभ्या इन्द्रिय द्वारा खट्टा
रस विषय के भोग भोगता है और लिंग इन्द्रिय जिसका सेवक है। क्य
मूत्र त्यागने से और संसार के उत्पत्ति की क्रिया करता है। और यही इ
सेवा है ॥ ४ ॥

पृथ्वी तत्व का अहंकार कर्ता भोगता है। जिसका देवता रुद्र है वह अहंभाव से अपान वायु रूप वाहन पर चढ़कर ग्रहण इन्द्रिय द्वारा गन्ध विषय के भोग भोगता है और गुदा इन्द्रिय जिसका सेवक है। मल त्यागने की क्रिया करते हैं और यही इसकी सेवा है ॥ ५ ॥

प्रश्न—कई ग्रन्थों में अन्तः करण तो एक ही दिखाया गया है। परन्तु आपने तो सुक्ष्म शरीर के पच्चीस में तत्वों पांच अन्तः करण बतलाया इसका कारण क्या है।

उत्तर—हे भाई सुन वास्तव में अन्तः करण एक ही है। किन्तु क्रिया के भिन्न-भिन्न होने से उसके पांच नाम रक्खे गये हैं। जैसे एक मनुष्य रसोई बनाने से रसोइया और खेती करने से किसान विद्या पढ़ने से विद्यार्थी नाड़ी देखने से वैद्य और योग साधने से योगी कहलाता है। वैसे ही एक ही अन्तः करण क्रिया वृत्ति के भेद से पांच प्रकार का बतलाता गया है। इस सुक्ष्म देह के पच्चीस तत्वों की भिन्न-भिन्न तिरकुटी है।

प्रश्न—पच्चीस तत्वों की भिन्न-भिन्न तिरकुटी कैसे होवे सो कृपा करके कहो।

अध्यातम अन्त करण अधिभूत स्फूर्ण और अधिदेव जीव आत्मा इन तीनों के सम्बन्ध से अन्त करण सो स्फुर्ना रूप क्रिया होती है ॥ १ ॥

अध्यातम मन अधिभूत संकल्प और विकल्प अधिदेव चन्द्रमा इन तीनों के सम्बन्ध से उपाधि रूप क्रिया होती है ॥ २ ॥

अध्यातम बुद्धि अधिभूत निस्य अधिदेव ब्रह्मा इन तीनों के सम्बन्ध से निस्य तमक रूपी क्रिया होती है ॥ ३ ॥

अध्यातम चित अभिभूत चितवन अधिदेव विष्णु इन तीनों के सम्बन्ध से चिन्तना रूप क्रिया होती है ॥ ४ ॥

अध्यातम अहंकार अधिभूत अहंता अधिदेव रुद्र इन तीनों के सम्बन्ध से अहंभाव रूपी क्रिया है ॥ ५ ॥

अध्यातम व्यान अधिभूत अंग मोडना अधिदेव तत्पुरुश इन तीनों के सम्बन्ध से शरीर के सब सन्धियों को मोडने रूपी क्रिया होती है ॥ ६ ॥

अध्यातम समान अधिभूत रस पहुंचाना अधिदेव इसान इन तीनों के सम्बन्ध से नाडियों के द्वारा अन्न के रसो को रोम रोम में पहुंचाने रूपी क्रिया होती है ॥ ७ ॥

अध्यात्म उदान अधिभूत अन्न रस बाटना अधिदेव अघोर इन तीनों के सम्बन्ध से अन्न रस के विभाग करने की तथा हिता नाडी में स्वप्न देखने की क्रिया होती है ॥ ८ ॥

अध्यात्म प्राण अधिभूत स्वास छोड़ना अधिदेव संज्योंजात इन तीनों के सम्बन्ध से (२१६००) स्वास को बाहर निकालने रूपी क्रिया होती है ॥९॥

अध्यात्म अपान अधिभूत स्वास उठाना अधिदेव वामदेव इन तीनों के सम्बन्ध से (२१६००) स्वास के अन्दर जाने रूपी क्रिया होती है ॥ १० ॥

अध्यात्म श्रोता अधिभूत शब्द अधिदेव दिगपाल इन तीनों के सम्बन्ध से सुनने रूपी क्रिया होती है ॥ ११ ॥

अध्यात्म त्वचा अधिभूत स्पर्श अधिदेव वायु इन तीनों के सम्बन्ध स्पर्श रूपी क्रिया होती है ॥ १२ ॥

अध्यात्म नेत्र अधिभूत रूप अधिदेव सूर्य इन तीनों के सम्बन्ध से देख रूपी क्रिया होती है ॥ १३ ॥

अध्यात्म जिभ्या अधिभूत रस अधिदेव वरुण इन तीनों के सम्बन्ध रस लेने रूपी क्रिया होती है ॥ १४ ॥

अध्यात्म नासिका अधिभूत गंध अधिदेव अस्नी कुमार इन तीनों सम्बन्ध से सुगन्ध लेने रूपी क्रिया होती है ॥ १५ ॥

अध्यात्म वाक अधिभूत वचन अधिदेव अग्नि इन तीनों के सम्बन्ध वोलने रूपी क्रिया होती है ॥ १६ ॥

अध्यात्म हाथ अधिभून आदान अधिदेव इन्द्र इन तीनों के सम्बन्ध लेने देने रूपी क्रिया होती है ॥ १७ ॥

अध्यात्म पैर अधिभूत गमन अधिदेव उपिन्द्र इन तीनों के सम्बन्ध आने जाने रूपी क्रिया होती है ॥ १८ ॥

अध्यात्म उपस्त अधिभूत रति भोग अधिदेव प्रजापती इन तीनों के सम्बन्ध से संसार उत्पत्ति रूपी क्रिया होती है ॥ १९ ॥

अध्यात्मक गुदा अधिभून मल त्याग अधिदेव यम इन तीनों के सम्बन्ध से टट्टी वा वायु गुराना रूपी क्रिया होती है ॥ २० ॥

अध्यात्म नाग वायु अधिभूत डकारवा हिच की लेना अधिदेव ब्रह्मा इन तीनों के सम्बन्ध से डकार वा हिच की लेना रूपी क्रिया होती है ॥ २१ ॥

अध्यात्म कुरम वायु अधिभूत पलक खोलना मीचना अधिदेव विष्णु इन तीनों के सम्वन्ध से आंख मीचना खोलना रूपी क्रिया होती है ॥ २२ ॥

अध्यात्म कर कल वायु अधिभूत छींक लेना अधिदेव महादेव इन तीनों के सम्वन्ध से छींक लेने रूपी क्रिया होती है ॥ २३ ॥

अध्यात्म देवदत्त वायु अधिभूत उवासी लेना अधिदेव शक्ति माया इन तीनों के सम्वन्ध से उवासी लेने रूपी क्रिया होता है ॥ २४ ॥

अध्यात्म धन जय वायु अधिभूत पुश्टाई करना अधिदेव निरंजन इन तीनों के सम्वन्ध से देह फुलाना वा पुष्ट करने रूपी क्रिया होती ॥ २५ ॥

पांच अन्तः करण की तिरपुटी १ पांच प्राण की तिरपुटी २ पांच उप्रग्ण को तिरपुटी ३ पांच ज्ञान इन्द्रियों की तिरपुटी ४ पांच कर्म इन्द्रियों की तिरपुटी ५ इस प्रकार समझ लेना। पच्चीस तत्वों की तिरपटी समाप्त।

प्रश्न—इन तत्वों में से कौन-कौन से तत्व किस-किस महाभूतों के किस-किस अंश में से उत्पन्न हुए हैं सो कृपा करके कहो।

उत्तर—सुनों! आकाश तत्व के सात्विक अंश से अन्त करण और श्रोत्र इन्द्रिय हुई है और आकाश के राजस अंश से व्यान वायु और वाक्+ इन्द्रिय हुई है और आकाश के तामस अंश से शब्द विशय हुआ है ॥ १ ॥

वायु तत्व के सात्विक अंश से मन इन्द्रिय और त्वचा इन्द्रिय हुई है और वायु के राजस अंश से समान वायु और पांव इन्द्रिय हुई है। और वायु के तामस अंश से स्पर्श विशय हुआ है ॥ २ ॥

अग्नि तत्व के सात्विक अंश से बुद्धि इन्द्रिय और चक्षू इन्द्रिय हुई है और अग्नि के राजस अंश से उदान वायु और हाथ इन्द्रिय हुई है और अग्नि तामस अंश से रूप विपय हुआ है ॥ ३ ॥

जल तत्व के सात्विक अंश से जिम्या इन्द्रिय हुई है और जल के राजस अंश से प्राण वायु और उपसत इन्द्रिय हुई है और जल के तामस अंश से रस विशय हुआ है ॥ ४ ॥

पृथ्वी तत्व के सात्विक अंश से अहंकार और नासिका इन्द्रिय हुई है और पृथ्वी के राजस अंश से अपान वायु और गुदा इन्द्रिय हुई है और पृथ्वी के तामस अंश से गन्ध विपय हुआ है ॥ ५ ॥

प्रश्न—आपने अन्तः करण और व ज्ञान इन्द्रियां की उत्पत्ति पांच तत्व के सात्विक अंश से वताई और भूतों के राजस अंश से प्राण और कर्म

इन्द्रियां की उत्पत्ति बताई और भूतों के तामस अंश से पांच विशय की उत्पत्ति बताई है इसका अर्थ क्या है कृपा करके कहो।

उत्तर— ज्ञान तो सतो गुण से ही होता है क्योंकि अन्तः करण मन बुद्धि आदि से सुख दुख का ज्ञान और श्रवण आदि पांच ज्ञान इन्द्रियों से शब्द स्पर्श आदि पांच विशय का ज्ञान होता है इस वास्ते इसकी उत्पत्ति सात्विक भाग से बतलाई गई है। रजोगुण क्रिया होती है उस माफिक पांच प्राण और कर्म इन्द्रियों से भी क्रिया होती है। इस वास्ते इसकी उत्पत्ति राजस अंश से बतलाई गई है और पांच विशयों में ज्ञान नहीं होने के वास्ते ये जड़ रूप है। इसकी उत्पत्ति तामस अंश से बतलाई गई है।

प्रश्न—अध्यास किस को कहते हैं।

उत्तर—भ्रान्ति ज्ञान का विशय मिथ्या वस्तु को अध्यास कहते हैं।

प्रश्न—अध्यास कितने प्रकार का है।

उत्तर—(१) ज्ञान अध्यास (२) अर्था अध्यास।

प्रश्न— ज्ञान अध्यास किस को कहते हो।

उत्तर—जैसे रज्जु में सरफ के ज्ञान से डर होता है वैसे ही अन्य आत्मा को आत्मा समझ कर अपने को जन्म मरण वाला समझ कर दुखी सुखी जान कर भयभीत होना इसको ज्ञान अध्यास कहते हैं।

प्रश्न—अर्था अध्यास किस को कहते हो।

उत्तर—आत्मा में कर्त्ता भोगता पने की भ्रांति होवे कि मैं सुखी हूं मैं दुखी हूं। ये इन्द्रियां और बुद्धी का धर्म आत्मा में समझने को अर्था अध्यास कहते हैं। अर्थ को अनर्थ समझना जैसे सीपड़ी में चाँदी का भ्रम टूट में पुरुष का भ्रम इसको द्रव्या ध्यास कहते हैं यह अर्था ध्यास के अन्तर गत है।

प्रश्न—अर्था ध्यास कितने प्रकार के होते हैं।

उत्तर—अर्था ध्यास छः प्रकार का होता है।

प्रश्न—अर्था ध्यास छः प्रकार का कौन कौन है।

उत्तर—केवल समन्धा ध्यास १ सम्वन्ध सहित सम्वन्धी का अध्यास २ धर्म ध्यास ३ धर्म सहित धर्मी का ध्यास ४ अन्योन्या ध्यास ५ अनेत्रा ध्यास ६।

प्रश्न—केवल समन्ध ध्यास किस को कहते हो।

उत्तर—अनात्मा में आत्मा के अध्यास को।

प्रश्न—सम्बन्ध सहित सम्बन्धी का अध्यास क्या है ।

उत्तर—आत्मा में अनात्मा के सम्बन्ध को कहते हैं ।

प्रश्न—धर्म अध्यास क्या है ।

उत्तर—स्थूल शरीर इन्द्रियां विकास आकार विशय आदि धर्म आत्मा का मानणे को धर्म अध्यास कहते हैं ।

प्रश्न—धर्म सहित धर्मी का अध्यास क्या है ।

उत्तर—अन्त करण का कर्त्ता भोगता पना उसका स्वरूप ये दोनों आत्मा का समझने को धर्म सहित धर्मी का अध्यास कहते हैं ।

प्रश्न—अन्योया ध्यास सो क्या है ।

उत्तर—जैसे लोहा अग्नि में अग्न रूप दिखाता है उसको न तो अग्नि कही जाती है न लोहा कहा जाता है वैसे ही आत्मा में अनात्मा कहा जाता है न अनात्मा आत्मा कहा जाता है उसको अन्योन्या ध्यास कहते हैं ।

प्रश्न—अन्यथा ध्यास किस को कहते हैं ।

उत्तर—अनात्मा में आत्मा का स्वरूप मिथ्या नहीं किन्तु सत्य है वास्तव में आत्मा में अनात्मा में अनात्मा का स्वरूप मिथ्या है अथवा दोनों में से एक में भरम होवे उसको अन्यथा ध्यास कहते हैं ।

प्रश्न—सात समुद्र और सात दीप सो क्या है ।

उत्तर—व्यवहारिक परमार्थीक समुद्र दीप का कोस्ट देखो ।

सात समुद्र और सात दीप का कोष्ठ

समुद्र सात	शरीर में सात	दीप सात	शरीर में सात
सूरा समुद्र	दसवां द्वार	जम्भू दीप	कान दीप
घृत समुद्र	श्रवण द्वार	पलक्ष दीप	नेत्र दीप
इख समुद्र	नेत्र द्वार	सलम दीप	नासिक दीप
दधि समुद्र	नासिका द्वार	कुसा दीप	मुख दीप
शहद समुद्र	मुख द्वार	कुरुच दीप	हाथ दीप
खीर समुद्र	हृदय द्वार	साख दीप	पेट दीप
खार समुद्र	अमी द्वार	पुस्कर दीप	पग दीप

प्रश्न—चौदाह लोक सो क्या है और चौदाह लोकों का राजा कौन है और शरीर में लोकों का स्थान कौन है और चौदाह रतन सो क्या है।

उत्तर—नीचे कोष्टक देखो।

लोक १४	राजा १४	शरीर में १४	रतन १४
भूर लोक	इन्द्र	नाभि	अमृत
भूवर लोक	कुबेर	उदर	विष
महर लोक	चन्द्रमा	छाती	एरावत
जन लोक	सूर्य	कन्ठ	अश्व
तप लोक	तपस्वी	नासिका	कलप वृक्ष
स्वर्ग लोक	बिष्णु	हृदय	काम धेनू
सत्य लोक	हिरिणय गर्भ	दसवां द्वार	लक्ष्मी
इतल लोक	मेहन दैत्य	मुख	रम्भा
वितल लोक	मेहन का पुत्र	कमर	मद्य
सुतल लोक	बाली दैत्य	सातल	निकेत
तलातल लोक	त्रीपुर दैत्य	पिन्डी	शंख
रसातल लोक	वैराठ दैत्य	घुटना	धनुष
महाताल लोक	नाम राजा	गिरिया	कोस्तु बमणी
पाताल लोक	शेष राजा	पगथली	धन्वन्त्री

प्रश्न—सात भूमि का सो क्या है।

उत्तर—शुभ इच्छा चारों साधानों सहित मोक्ष की इच्छा है तो का नाम शुभ इच्छा कहते हैं ॥ १ ॥

शुभ विचारना जीव ब्रह्म की एकता का विचार करना तो को शुभ विचारना कहते हैं ॥ २ ॥

तनुमानसा तन में आत्मा स्वरूप की तलाश करना है ॥ ३ ॥

सत्वापती अन्त करण की शुद्धी को कहते हैं ॥ ४ ॥

असंग शक्ति निरविकल्प समाधी को कहते हैं ॥ ५ ॥

पदार्थ भावनी सर्व पदार्थों को ब्रह्म का ही अदिस्टान समझने को कहते हैं ॥ ६ ॥

तुरिया भूमिका तुरिय पद में मन की स्थिति होना ॥ ७ ॥

ये ही सात ज्ञान की भूमिका है।

प्रश्न—सात चेतन सो क्या है।

उत्तर—ईश्वर चेतन १ जीव चेतन २ शुद्ध भोजन ३ परमात्मा चेतन प्रमाण चेतन ५ प्रमेय चेतन ६ प्रमा केतन ७।

चभूत	आकाश	वायु	तेज	जल	पृथ्वी
आकाश	शोक	प्रसारण	निद्रा	लार	रोम
वायु	काम	ध्यावना	तृणा	पसीना	त्वचा
तेज	क्रोध	वलन	क्षुधा	मुत्र	नाडी
जल	मोह	चलन	क्रान्ति	वीर्य	मांस
पृथ्वी	भय	आकूंचन	आलस्य	रक्त	हाड

नोट

सभी भक्तों से मेरा एक साधारण निवेदन है कि इस पुस्त
में जो कुछ है वह मात्र गुरुजी महाराज की प्रेरणा से हुआ है। भा
को पुस्तक का रूप देने में किसी भी व्यक्ति से आर्थिक सहायता न
ली गई है जा कि करीब ६००) रु० हुए हैं। इस पुस्तक की १
प्रति छपाई गई है और गुरु भक्तों को बांटी जावेगी।

निवेदक

श्री नोरंगलाल

बस्ती सीतारामपुरा, झोटवाड़ा रोड़
१६ कोठियों से आगे, नया खेड़ा
जयपुर (राजस्थान)
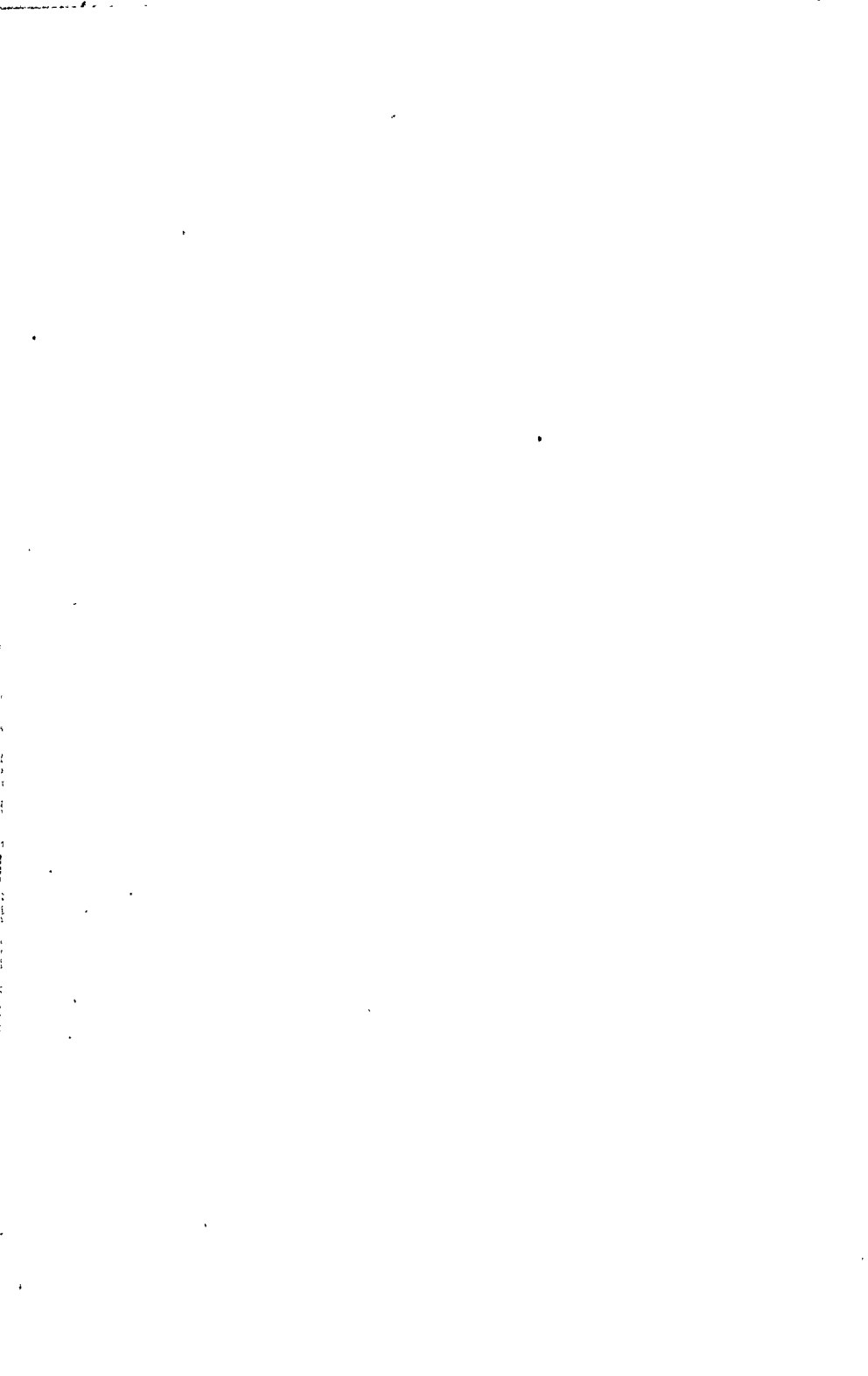
आध्यात्मिक हित बोध एवं हित शिक्षाएँ
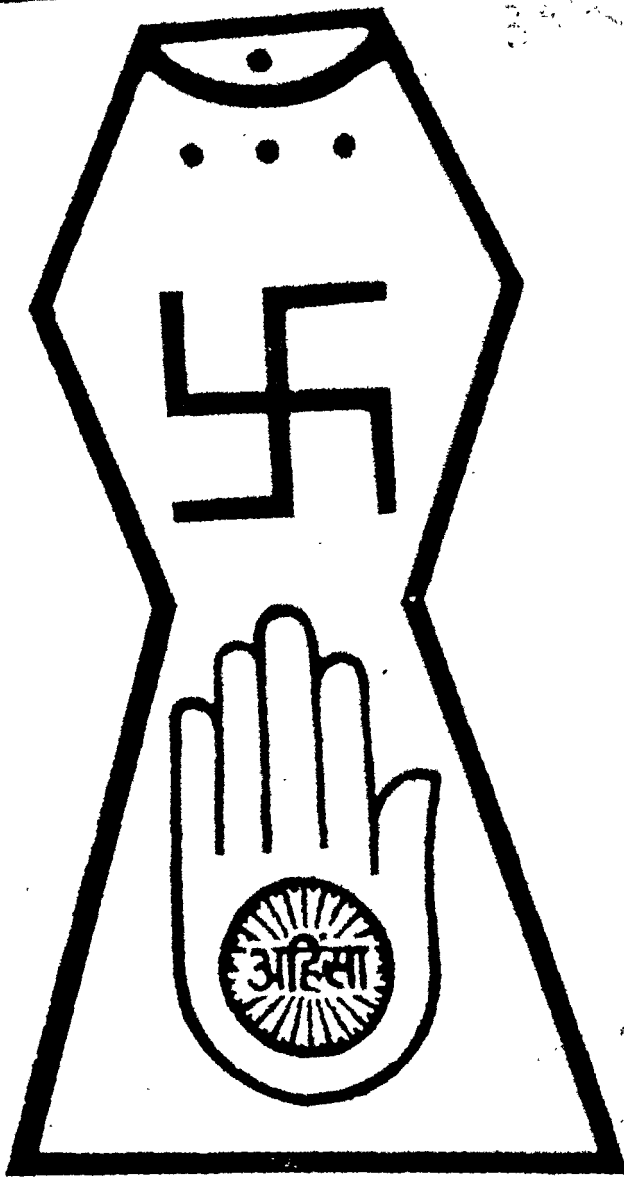
संकलन कर्त्ता-आनन्दमल चोरड़िया, अजमेर

भगवान् महावीर के प्रति हमारा कर्त्तव्य !

महाप्रभू महावीर के प्रति हम कितने कृतज्ञ हैं। संसार के दुःख दाव
नल से झुलसते हुए, अनन्त संताप से सन्तप्त, मोह-ममता के निविड़ अन्धका
में भटकते और ठोकरें खाते हुए, जन्म जरा मरण की व्याधियों से पीड़ि
एवं अपने स्वरूप से भी अनभिज्ञ जगत् के जीवों को जिन्होंने मुक्ति का मार
प्रदर्शित किया, सिद्धि का समीचीन सन्देश दिया, ज्ञान की अनिर्वचनीय ज्यो
जगाई, उनके प्रति श्रद्धा निवेदन करना हमारा सर्वोत्तम कर्त्तव्य है। भगवा
ने अहिंसा का अमृत न पिलाया होता और सत्य की सुधा धारा प्रवाहित
की होती तो इस जगत की क्या स्थिति होती ? मानव दानव बन गया होत
धरा ने रौरव का रूप धारण कर लिया होता। भगवान ने अपनी साधना
दिव्य ध्वनि के द्वारा मनुष्य की मूर्छित चेतना को संज्ञा प्रदान की, दान
वृतियों का शमन करने के लिये दैवी भावनाएँ जागृत कीं और मनुष्य में फै
हुए नाना प्रकार के भ्रम के सघन कोहरे को छिन्न-भिन्न करके विमल आलो
की प्रकाशपूर्ण किरणें विकीर्ण की।

निर्वाण का माहात्म्य

प्रश्न उठ सकता है कि संसार का अपार उपकार करने वाले भगवा
निर्वाण को 'कल्याणक' क्यों कहा गया ? निर्वाण-दिवस में आनन्द क
मनाया जाता है ? इसका उत्तर यह है कि लोकोतर-पुरुष दूसरे पामर प्राणि
जैसे नहीं होते। वे आते समय प्रेरणा लेकर आते हैं और जाते समय
प्रेरणा देकर जाते हैं। अतएव महापुरुषों का जन्म भी कल्याणकारी हो
है और निर्वाण भी।

—"जिनवाणी"

गवान महावीर का आध्यात्मिक हित बोध एवं हित शिक्षाएँ आदि का संकलन

आध्यात्मिक हित बोध एवं हित शिक्षाएँ

सप्रेम भेंट

संकलन

श्री आनन्दमल चोरड़िया
अजमेर

प्रकाशक

अमरचन्द अनिलकुमार दूधड़िया

अमर निवास, लाखन कोठड़ी,

अजमेर—३०५००१

● पुस्तक

आध्यात्मिक हित बोध एवं हित शिक्षाएँ

● द्वितीय संस्करण

माघ शुक्ला १४ वि. सं. २०३३

ता० ३ फरवरी, १९७७

एक हजार प्रतियाँ

● प्रकाशक

अमरचंद अनिल कुमार दुघड़िया

अमर निवास, लाखन कोठड़ी, अजमेर

● पुस्तक का मूल्य १-२०

● पुस्तक प्राप्ति स्थान

● श्री आनन्दमल चोरड़िया

अमर निवास, लाखन कोठड़ी, अजमेर

● श्री किस्तूरचंद मोखमसिंह

बरतनों के व्यापारी, नया बाजार, अजमेर

● श्री जैन जवाहर मित्र मंडल

महावीर बाजार ब्यावर

● श्री अ० भा० साधुमार्गी जैन संघ

समता भवन, रामपुरिया मार्ग, बीकानेर

मुद्रक:— शर्मा प्रिन्टर्स अजमेर

प्रस्तावना

भगवान महावीर की देशना (उपदेशों) को गणधरों ने अपनी स्मरण शक्ति द्वारा संग्रह कर शास्त्रों की रचना करी तत्पश्चात उन्हीं शास्त्रों के आधार पर उच्चकोटि के श्रुतधर आचार्यों, साधु साध्वियों एवं विद्वान पुरूषों द्वारा अनेक ग्रन्थ, साहित्य, लेख, जीवन-चरित्र आदि का प्रकाशन हुआ। भगवान महावीर की २५ वीं निर्वाण शताब्दि महोत्सव के उपलक्ष्य में भगवान के उपदेशों का विशेष प्रचार-प्रसार करने की दृष्टि से साहित्य, जीवन चरित्र, कविता, निबंध, लेख आदि का बुद्धि जीवियों द्वारा प्रकाशन हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती, तमिल, सिंधी आदि भाषाओं में हुआ है, यह क्रम अब भी चालू है।

निर्वाण महोत्सव के अवसर पर प्रस्तुत पुस्तक का प्रथम संस्करण "भगवान महावीर का आध्यात्मिक हित बोध एवं हित शिक्षाएँ आदि का संकलन" नाम से प्रकाशित हुई हैं, उसे विद्वान साधु साध्वियों ने मौखिक रूप से प्रशंसनीय संकलन के भाव दर्शाये। श्री अखिल भारतवर्षीय साधु मार्गीय जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड, बीकानेर ने भी इस पुस्तक को विशेष उपयोगी जानकर जैन सिद्धान्त कोविद परीक्षा के प्रथम खंड के पाठ्य क्रम में इसे निर्धारित किया है और "जिनवाणी" एवं "अमर भारती" आदि पत्रों की साहित्य समीक्षा में इस सुन्दर संकलन को साधारण ज्ञान वाला व्यक्ति भी पढ़कर अपने जीवन को सफल बना सकता है एवं इस का अधिकाधिक प्रचार-प्रसार किया जाय ऐसा सुझाव दिया गया है। समाज के साहित्य पाठकों की भी रुचि अधिक पढ़ने के लिये जागृति हुई है जिससे मांग बढ़ती गई, पुस्तकें स्टॉक में नहीं होने से पाठकों को निराश कर क्षमा मांगनी पड़ी किन्तु पुस्तक का सदुपयोग हो रहा है ऐसा समझकर द्वितीय संस्कारण "भगवान महावीर का हित बोध एवं हित शिक्षा" के नाम से प्रकाशित कर पाठकों के कर-कमलों में प्रस्तुत कर रहे हैं। द्वितीय संस्मरण में आवश्यक संशोधन परिवर्तन एवं ज्ञान वर्धक सामग्री भी विशेष बढ़ाई गई है।

संकलन की सामग्री जैनाचार्य श्री जवाहर लाल जी म० सा० एवं आचार्य श्री नानालाल जी म० सा० के प्रवचनों का साहित्य, मुनि हजारीमल जी स्मृति प्रकाशन साहित्य, जैन सिद्धान्त बोल संग्रह और जैन तत्व प्रकाश आदि साहित्य एवं विद्वान साधु साध्वियों के प्रवचन डायरियों व जिनवाणी आदि पत्रों से प्राप्त की गई है। श्री अमरचदं अनिल कुमार दूधड़िया, अजमेर ने पुस्तक को उपयोगी समझ कर उदारता से द्रव्य सहयोग प्रदान करके विशेष श्रेय प्राप्त किया है एवं श्री पद्मचन्द कोठारी से प्रकाशन कार्य में तन-मन से सुन्दर सहयोग प्राप्त हुआ है और पाठकों ने प्रथम संस्करण को लगन, रुचि एवं उत्साह पूर्वक अपनाया, और उत्साह बढ़ाया। इस प्रकार के सभी सहयोगियों का अत्यत आभारी हूँ। मैं न तो साहित्यकार हूं और न ही लेखक केवल अपनी अल्प बुद्धि से धर्म सेवा की भावना से एवं जन–जन में सुसंस्कारों की भावना जागृत हो इस दृष्टि से संकलन किया है। त्रुटियां होना स्वाभाविक है अतः पाठकों से नम्र निवेदन है कि संकलन में किसी प्रकार की त्रुटियां दृष्टि गोचर हों तो क्षमा प्रदान कर अनुगृहीत करने की कृपा करेंगे।

दीपक में तेल बत्ती आदि का साधन होते हुए भी प्रकाश करने की क्षमता नहीं है, दियासलाई का संसर्ग होते ही प्रकाश प्रज्वलित हो जाता है, ठीक इसी प्रकार आत्मा अनन्त-अक्षय ज्ञान का भंडार होते हुये भी सत ज्ञान का प्रकाश नहीं होता है, किन्तु ज्ञानी महात्माओं एवं सत्साहित्य का संसर्ग मिल जाने पर आत्म ज्ञान का प्रकाश प्रज्वलित हो जाता है। अतः द्वितीय संस्करण में वड़े-वड़े धर्म ग्रन्थों, शास्त्रों, नीति विशारदों और महात्माओं की वाणी का निचोड़ (सार) है। पाठको को इस के संसर्ग में आने से कर्त्तव्याकर्तव्य-निर्णय के समय उचित मार्ग दर्शन कर, आत्म ज्ञान का प्रकाश होकर जीवन ऊर्ध्व मुखी वनाने में सार्थक सिद्ध होगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

माघ शुक्ला १४ वि. सं २०३३
२ फरवरी, १९७७

सकंलन कर्ता
आनन्दमल चोरडिया
निवेदक

—: विनम्र निवेदन :—

संसार में मानव-जन्म के समान कोई अधिक मूल्यवान जन्म नहीं है, क्योंकि मोक्ष का अधिकारी मानव ही हो सकता है। अतः इस दुर्लभ मानव जीवन को प्राप्त करने के पश्चात प्रत्येक जिज्ञासु एवं मुमुक्षु आत्मा को अपने जीवन को सफल बनाने के लिये लौकिक और लोकोत्तर विषयों का ज्ञान प्राप्त करने की परम आवश्यकता है। इसीलिए चरम तीर्थंकर भगवान माहावीर स्वामी ने दशवैकालिक सूत्र में कहा है कि 'पढमं नाणं तओ दया' अर्थात पहले ज्ञान प्राप्त करें जिससे विवेक प्राप्त होने पर दया के व्यवहार से प्राणी मात्र को सुखी बनावें एवं अपनी आत्मा का उत्तरोत्तर विकास करें जिससे हम सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक् चारित्र की प्राप्ति कर मोक्ष के शाश्वत् सुख के अधिकारी बनें।

श्री आनन्दमलजी सा. चोरड़िया, अजमेर ने सर्व जनहितार्थ सम्यग्ज्ञान दर्शन और चारित्र रूपी रत्नत्रय को प्रदान करने वाले प्रभु महावीर स्वामी के कल्याणकारी उपदेशों का प्रस्तुत पुस्तक में सुन्दर संकलन किया है आप अनवरत रूप से श्री जैन जवाहर मित्र मंडल ब्यावर की अनुपम निःस्वार्थ सेवा करते आ रहे हैं साथ ही तभी से धर्म प्रभावना और मानव समाज की सेवा के लिये सत्साहित्य सृजन कर रहे हैं सामयिक पत्र पत्रिकाओं में भी आपके लेख प्रकाशित होते रहते हैं। आप की इस प्रकार की ज्ञान साधना के लिए हम हृदय से आभारी हैं। सुज्ञ पाठक माहानुभावों से भी विनम्र निवेदन है कि इस उपयोगी सुबोध ग्रन्थ का अध्ययन, मनन एवं अनुपालन कर अपने जीवन का सफल बनावें।

निवेदक

२८-१-७७

पं. शांति चन्द्र जैन

साहित्यरत्न, न्यायतीर्थ, जैन सिद्धान्त शास्त्री

अजमेर

विषयानुक्रमणिका

॥ श्रीवीतरागायनमः ॥

भगवान महावीर का

आध्यात्मिक हित बोध एवं हित शिक्षाएँ

मंगलाचरण

ॐ अर्हं पद आत्मा, सुख सागर भगवान ।
अध्यात्म अविकार में, वंदू विनय विधान ॥

चक्रवर्ती से इन्द्र से, अधिक सुखी अवतार ।
अध्यात्म अभ्यास में, लीन हुए नर नार ॥

षड् द्रव्यों में आत्मा, चेतन रूप अनूप ।
आत्म भावे आत्मा, परमात्मा गुण भूप ॥

और द्रव्य जड़ रूप हैं, उनके करके भेद ।
आत्म से आत्म रमे, मिटे भेद भव खेद ॥

जिन हरि पूज्येश्वर नमूं, भगवन तारण हार ।
अध्यात्म भावे लिखूं, अपने आज विचार ॥

सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक् चारित्र द्वारा आत्मा पापों से रहित होकर श्रेष्ठ गति एवं मोक्ष प्राप्त कर सकती है । अतः आत्मा के निज स्वरूप को जानना, श्रद्धा करना (मानना) और आचरण में लाना ही आध्यात्मिक चिंतन है ।

आध्यात्मिक-चिंतन

आत्मा की उन्नति ही सच्ची उन्नति है, जिसने आत्मा की उन्नति का लक्ष्य रक्खा उसने पाने योग्य सब पाया। प्रातः काल उठ कर नवकार मंत्र का ध्यान कर आत्म चिंतन करना चाहिये:—

मैं कौन हूँ? मैं शरीर धारी आत्म हूँ, मेरी आत्मा अन्नत ज्ञान का भंडार है, अनन्त सुखों से भरी और अविनाशी है।

मैं कहाँ से आया हूँ? चार गतियों में एवं चोरासी लाख योनियों में भटकता-भटकता वर्तमान मानव भव में आया हूँ।

मैं अब कहाँ जाऊँगा? अब मानव जीवन में अच्छे बुरे कर्मों के किये और उनके फलों के अनुसार नरक-गति तिर्यंच-गति मनुष्य-गति और देव-गति में जाऊंगा।

मैं अब क्या कर रहा हूँ? आत्मा के निज स्वभाव को भूल कर शरीर पोषण व इन्द्रियों के सुख के लिए दिन रात उद्यम कर रहा हूं।

मेरा कर्त्तव्य क्या है? अठारह पाप स्थानकों को छोड़ कर जिनेश्वर भगवान की आज्ञानुसार उत्तम प्रकार की धर्म क्रिया और तत्व ज्ञान का अभ्यास करना चाहिए।

सोचना है:—(१) माया में फंसा, ममता में मारा, तृष्णा में वहा और आशा में उलझा तो मेरा क्या होगा। (२) पापों की पोट बांध कर, धन के भंडार-बड़े बड़े बंगले बगीचे-कारखानों आदि से किसी भी क्षण में जुदा होने (छोड़ने) का अवसर एकदम आ जावेगा तो मैं क्या करूंगा?

चेतना (सचेतना) है—ममता में मोहित हुआ, राग में रंजित रहा, द्वेष में डूबा, क्रोध में जला, मान में घिरा, माया जाल में जकड़ा, लोभ में छट-पटा रहा हूँ-अब मुझे चेतना है और धर्म साधना करनी है।

अब चेतकर—प्रभु के परुपित त्याग तप, वैराग्य, सत्य, संयम, शांति, क्षमा, दया आदि बताये हुए मार्गों के अनुसार धर्म क्रिया करना। स्वाध्याय, सामायिक आदि का अध्ययन कर ज्ञान प्राप्त करना, हिंसा झूंठ चोरी कुशील परिग्रह के द्वारा अशुभ कर्मों के आश्रव को रोकना, क्रोध, मान, माया, लोभ इन चार कषायों की प्रवृति को घटाना और आत्मतारक, धर्मानुष्ठान उत्तम आशय के साथ स्वीकार कर अनुक्रम से उच्च दशा को पाऊंगा तो सदा शांति एवं परम कल्याण कर सकूंगा।

प्रार्थना का महत्व

१. प्रार्थना करते समय ऐसा समझना चाहिये कि मैं भगवान के सन्मुख बैठा हुआ हूं। प्रार्थना करते समय अहंकार रहित भावना से आंखों की समदृष्टि, एकाग्रचित; भक्ति में तल्लीन होकर हाव चाव से मधुर धीमे धीमे स्वर से प्रार्थना के शब्दों का भावार्थ समझते हुये प्रार्थना करना आनन्द कल्याण कारी होगी।

२. सामूहिक प्रार्थना करते समय साधु साध्वी जी के सन्मुख बैठना उनके द्वारा जो प्रार्थना करवाई जावे प्रथम उसको सुनना पश्चात धीमे धीमे मधुर भक्ति से सामूहिक रूप से बोलना जिससे शोभाजनक लाभदायक रस मिलता जायेगा।

३. जिस गुफा में सिंह गर्जन करता है—वहां मृग नहीं आते उसी प्रकार जिस हृदय में जिनेश्वर देव का नाम स्मरण चलता रहता है उस हृदय में काम क्रोध आदि प्रवेश नहीं कर पाते।

४. प्रार्थना = आध्यात्मिक व्यायाम है, जैसे शरीर व्यायाम से पुष्ट होता है वैसे ही प्रार्थना से आत्मबल और आत्म विश्वास बढ़ता है।

५. मल्ल लड़ने के बाद और योद्धा युद्ध करने के बाद संध्या के समय अपनी सुश्रूषा करने वालों को बता देता है कि आज सारे दिन में मुझे यहां-यहां

पर चोट लगी है इसी तरह प्रार्थना में भी यही ध्येय रहना चाहिये कि अपने किये पाप प्रभु के सामने प्रकट कर दूं ।

६. जैसे अमृत बिना धोखे की वस्तु है वैसे ही प्रभु प्रार्थना भी बिना धोखे की वस्तु है । विनय पूर्वक सच्ची प्रार्थना से गर्व नष्ट होता है ।

श्री पार्श्वनाथ स्तुति

तुम से लागी लगन, ले लो अपनी शरण
पारस प्यारा, मेटो मेटो जी संकट हमारा ।
निश दिन तुम को जपूं, पर से नेहा तजूं
जीवन सारा, तेरे चरणों में बीते हमारा ॥टेर॥
अश्व सेन के राज दुलारे, बामा देवी के सुत प्राण प्यारे ।
जग से मूंह को मूंड़ा, सारा नेहा तोड़ा सयंम धारा ॥ १ ॥
इन्द्र और धरणेन्द्र भी आये, देवी पदमावती मंगल गाये ।
परचा पूरो सदा, दुख नहीं आवे कदा सेवक थारा ॥२॥
जग के दुख की परवाह नहीं है, स्वर्ग सुख की चाह नहीं है ।
छूटे जन्म मरण, होवे ऐसा यतन तारन हारा ॥३॥
लाखों वार तुम्हें शीश नवाऊं, जग के नाथ तुम्हें कैसे पाऊं ।
"पकंज" व्याकुल भया, दर्शन बिन ये जिया लागे खारा ॥४॥

प्रार्थना (शरणा लेकर)

(भाव=क्रोध, मान, माया, लोभ का ममत्व त्याग)

अरिहंत प्रभु का शरणा लेकर, क्रोध भाव को दूर करें ।
क्षमा भाव से शांति धर कर, मीठा ही व्यवहार करें ॥
सिद्ध प्रभु का शरणा लेकर, मान बढ़ाई दूर करें ।
नम्र भाव से छोटा बन कर, लघुता का व्यवहार करें ॥
आचार्य देव का शरणा लेकर, झूंट कपट का त्याग करें ।
सीधा सादा रहना सीखें, सरलता का व्यवहार करें ॥

उपाध्याय का शरणा लेकर, मोटी तृष्णा दूर करें।
अति लक्ष्मी को तज कर, निज-पर का कल्याण करें।।
मुनियों के चरणों में नम कर, अपना कुछ उद्धार करें।
मूल कषायों को क्षय कर, वीतराग पद प्राप्त करें।।

मेरी भावना

(सच्चे देव का लक्षण और उनको भक्ति में लीन रहने की भावना)

जिसने राग द्वेष कामादिक जीते, सब जग जान लिया।
सब जीवों को मोक्ष मार्ग का, निस्पृह हो उपदेश दिया।।
बुद्धवीर-जिन-हरिहर ब्रह्मा, या उसको स्वाधीन कहो।
भक्ति भाव से प्रेरित हो यह, चित्त उसी में लीन रहो।।

(सच्चे साधु का लक्षण और उनका सत्संग करते रहने की भावना)

विषयों की आशा नहीं जिनके, साम्य भाव धन रखते हैं।
निज पर के हित साधन में जो निशदिन तत्पर रहते हैं।।
स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या, बिना खेद जो करते हैं।
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के दुख समूह को हरते हैं।।
रहे सदा सत्संग उन्हीं का ध्यान उन्हीं का नित्य रहे।
उन्हीं जैसी चर्या में यह, चित्त सदा अनुरक्त रहे।।

(पाँचों पाप व अन्य दुष्प्रवृत्तियों को त्याग ने की भावना)

नहीं सताऊँ किसी जीव को, झूठ कभी नहीं कहा करूँ।
परधन वनिता पर न लुभाऊं, संतोषामृत पिया करूँ।।
अहंकार का भाव न रखूं, नहीं किसी पर क्रोध करूँ।
देख दूसरों की बढ़ती को, कभी न ईर्षा भाव धरूँ।।

(परोपकार की भावना)

रहे भावना ऐसी मेरी, सरल सत्य व्यवहार करूँ।
बने जहां तक इस जीवन में औरों का उपकार करूँ।।

(समस्त जीवों से मैत्री की भावना)

मैत्री भाव जगत में मेरा, सब जीवों से नित्य रहे ।
दीन दुखी जीवों पर मेरे, उर से करुणा स्रोत वहे ।।
दुर्जन क्रूर कुमार्ग रतों पर, क्षोभ नहीं मुझ को आवे ।
साम्य भाव रक्खू मैं उन पर, ऐसी परिणति हो जावे ।।

(गुणी जनों की सेवा करने और उनके गुण ग्रहण करने की भावना)

गुणी जनों को देख हृदय में, मेरे प्रेम उमड़ आवे ।
वने जहाँ तक उनकी सेवा, करके यह मन सुख पावे ।।
होऊं नहीं कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे ।
गुण ग्रहण का भाव रहे नित, दृष्टि न दोषों पर जावे ।।

(न्याय मार्ग पर दृढ़ रहने की भावना)

कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे ।
लाखों वर्षों तक जीऊं या मृत्यु आज ही आ जावे ।।
अथवा कोई कैसा ही भय, या लालच देने आवे ।
तो भी न्याय मार्ग से मेरा कभी न पद डिगने पावे ।।

(समता भाव रखने तथा निडर व सहनशील बनने की भावना)

होकर सुख में मग्न न फूले, दुःख में कभी न घवरावे ।
पर्वत-नदी-श्मशान-भयानक अटवी से नहीं भय खावे ।।
रहे अडोल अकंप निरन्तर, यह मन दृढ़तर बन जावे ।
इष्ट वियोग—अनिष्ट योग में सहन शीलता दिखलावे ।।

(समस्त जीवों के सुखी व धर्म निष्ट होने की भावना)

सुखी रहैं सव जीव जगत के, कोई कभी न घवरावे ।
वैर-पाप अभिमान छोड़ जग, नित्य नये मंगल गावे ।।
घर घर चर्चा रहे धर्म की, दुष्कृत दुष्कर हो जावे ।
ज्ञान-चरित उन्नत कर अपना, मनुज जन्म फल सव पावे ।।

इति-भीति व्यापे नहिं जग में, वृष्टि समय पर हुवा करे ।
धर्म निष्ट होकर राजा भी, न्याय प्रजा का किया करे ।।
रोग-भरी दुर्भिक्ष न फैले, प्रजा शान्ति से जिया करे ।
परम अहिंसा-धर्म जगत में फैल सर्व हित किया करे ।।
फैले प्रेम परस्पर जग में, मोह दूर पर रहा करे ।
अप्रिय कटुक कठोर शब्द नहीं, कोई मुख से कहा करे ।।
बनकर सब "युगवीर" हृदय से देशोन्नति रत रहा करे ।
वस्तु स्वरूप विचार खुशी से, सब दुख संकट सहा करे ।।

धर्म जागरण

१. एक चित्त से सेवा भक्ति करने से नमि और विनमी इन दोनों को राज्य, विद्या एवं सद्गति मिली । इसलिए जिनराज जी की सेवा भक्ति करनी चाहिये ।

२. भक्ति पूर्वक ज्ञान ग्रहण करने से सद्गति का भाजन बनता है । जैसे चिलाति पुत्र व रोहणीय चोर सद्गति में गये ।

३. स्व तथा पर समय के जानकर केशी गुरु की वाणी सुनने से परदेशी राजा सरीखा नास्तिक देव लोक गया, यावतः सिद्ध पद प्राप्त करेगा । अतः जिन वाणी श्रवण करना चाहिये ।

४. दस बोल से दुर्लभ ऐसे मनुष्य जन्म को पाकर जो आलस्य प्रमाद से जिन धर्म नहीं करते हैं वे शशि प्रभ राजा के समान पश्चाताप करते हैं अतः धर्म जागरण में तल्लीन रहना श्रेष्ठ है ।

५. जैसे बिना मन के मिलना—बिना दांत का चबाना—बिना गुरु के पढ़ना, बिना नमक का भोजन करना एवं बिना यश का जीना निरर्थक है, उसी प्रकार बिना भाव के धर्म करना भी निरर्थक है ।

६. सत्य पूर्वक बर्ताव से अग्नि पानी के समान, गरल अमृत के समान तथा सर्प पुष्प के समान हो जाते हैं अतः सत्यता का बर्ताव करना चाहिये ।

७. पर निंदा करे नहीं, और स्व निंदा सुनकर समता भाव से सभ्यता रखे उस मनुष्य का जीवन धन्य है।

८. धर्म और शोक वढ़ाने से वढ़ते हैं और घटाने से घटते हैं अतः धर्म की ओर रुचि बढाते रहना चाहिये।

चार उत्तम भावनाएं

१. मैत्री भावना=विश्व के प्राणियों से मित्रता का एवं प्रेम का बर्ताव रख कर उनका अहित न सोचना चाहिये।

२. प्रमोद भावना=गुणीजनों को देख कर आनन्दित व प्रफुल्लित चित्त प्रसन्न होना चाहिये।

३. करूणा भावना=दीन दुःखी असहाय प्राणियों के दुःखों पर अनुकम्प दया दर्शा कर सहयोग देना चाहिये।

४. मध्यस्थ भावना=राष्ट्र, देश, समाज और परिवार के आपसी वैमन्यस्त को निष्पक्षता व निष्कपटतापूर्वक मन मुटाव को दूर करने का प्रयत करना चाहिये।

ज्ञान प्राप्ति के साधन

१. विकथाओं का त्याग=स्त्री कथा, भोजन कथा, देश कथा, राज कथ का त्याग कर आत्मा चिंतन में लीन रहना चाहिये।

२. विवेक ज्ञान=सांसारिक भोग-विषय-कषाय एवं परिग्रह से विरक्त रहक आत्म चिंतन करना चाहिये।

३. धर्म जागरण=शांत वातावरण में आत्म ज्ञान के प्रकाश के लिये स्वाध्याय, सद् साहित्य पढ़कर आत्म चिंतन करना चाहिये।

४. शुद्ध पवित्र आहार=बैयालीस दोष रहित शुद्ध आहार करना चाहिये।

कौन कैसा हो ?

१. शूरवीर=जो अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करता हो।
२. पंडित=विद्याध्ययन के साथ अपना आचरण धर्मानुकूल रखता हो।
३. वक्ता=जो कल्याणकारी भलाई की बात कहता हो।
४. दाता=जीव मात्र पर करुणा भाव से सम्मान पूर्वक गर्व रहित सहायता पहुंचाता हो।

दान शील तप और भावना का प्रभाव

१. दान के प्रभाव से=धन्नाजी ओर शालिभद्रजी अगणित ऋद्धि भोग कर देव लोक में पधारे, यावत् वे सिद्ध पद को प्राप्त करेंगे ऐसा जानकर सुपात्र को दान देना चाहिये।

१. शील के प्रभाव से=सेठ सुदर्शन की सूली सिंहासन में परिणत हो गई अतः कुशील को त्यागकर शील व्रत ग्रहण करना चाहिए।

३. तप के प्रभाव से=धन्ना अणगार, दृढ़ प्रहारी, हरि केशी मुनि और ढंढण ऋषि कर्म क्षय करके मोक्ष पधारे अतः यथाशक्ति तप करना चाहिये।

४. उत्तम भावना के प्रभाव से=राजर्षि-प्रसन्न चन्द्र और एलायची कुमार आदि ने मोक्ष प्राप्त किया अतः प्रत्येक क्षण अशुभ भावना का त्याग कर उत्तम-उत्तम विचार करना चाहिये।

उत्तम मानव के गुण

विनयवान, विवेकता, धैर्यवान्, गम्भीरता, संतोषी, नम्रता, दृढ़ता, साहसी-पुरुषार्थी, क्षमाशील, निराभिमान, निर्पेक्षता, सेवाभावी, उपकारी, कृतज्ञता, सामर्थवान, निर्भयता, विलक्षण बुद्धि, मिलन सारी, निःस्वार्थी, अतिथि-सत्कार प्रियभाषी, प्रसन्नचित्त, सुचारित्रवान, धार्मिकबोध, शुद्ध आचार-विचार, वाक सहिष्णुता, सुवेष, सुकान्ति, सुकुलीन, शीलवान, दाता, शूरवीर, कीर्तीमान,

सतावान, सत्यवान्, सलज्ज, कलावान, गुणग्राही, प्रतापी, तेजस्वी, जितेन्द्रीय, क्लेश सहन, अलोभी, अनिद्रा, अल्पभोजी, धार्मिक विचारक, सत्यभाषी, आदि से युक्त ही मनुष्य जन्म का आदर्श है।

ब्रह्मचर्य के गुण एवं साधन

ब्रह्मचर्य के प्रभाव से=दीर्घ आयुवाला, सुंदर आकारवाला, दृढ़ शरीर वाला, तेजस्वी, अतिशय, बलवान नरेन्द्रों का पूज्यनीय होता है।

ब्रह्मचर्य के साधन=शुद्ध सात्विक भोजन ।। मादक द्रव्यों का त्याग ।। नैतिक शिक्षा ।। सत्संगी ।। कामोत्जक पदार्थ एवं वेषभूषा का त्याग ।। सिनेमा अश्लील गानों चित्रों व नाच आदि का त्याग ।। स्त्रियों को न निरखना, जासूसी उपन्यास आदि न पढ़ना ।।

अनर्थ दंड का त्याग

परिभाषा=बिना प्रयोजन के किसी प्राणी को मारना, दुःख पहुँचाना, खराब करना, असावधानी रखना अनर्थ दंड है।

१=पृथ्वी काय—अपकाय–वायुकाय–तेजकाय एवं वनस्पतिकाय को खोदना-छेदना भेदना नहीं चाहिये।

२=पशु पक्षी जीव जन्तु आदि चलते हुये, बैठे हुए, फिरते हुये को मारना, पीटना, छेड़ कर कष्ट नहीं पहुंचाना चाहिये।

३=पागल दीन-दुःखी असहाय मनुष्य की हंसी-मजाक करना, छेड़ना, कष्ट पहुँचाना, जानवरों को अपने कोतुहल के कारण लड़ाना एवं किसी के आपस के झगड़ों को बढ़ाना नहीं चाहिये।

४=गृह कार्य में आलस्य, प्रमाद, असावधानी से, अविवेक से कार्य करना वस्तुओं की देखभाल न करके प्रयोग में लेना, व्यर्थ अपव्यय करना, मल मूत्र के स्थानों की सफाई न करना इत्यादि कार्यों की स्वच्छता का ध्यान रखना चाहिये।

अतः उपरोक्त बातों पर ध्यान रखकर कार्य किया जाय तो अनर्थ दण्ड से बच सकते हैं।

पूर्ण त्याग अथवा मर्यादा युक्त जीवन

मादक द्रव्य=सिगरेट-बीड़ी, तम्बाकू, भंग, गांजा, अमल, शराब, पान, चाय, काफी आदि का त्याग करना।

विषय विकार=क्रोध, मान, माया, लोभ, हिंसा, झूंठ, चोरी, कुशील (स्वस्त्री व परस्त्री) परिग्रह, पांचों इन्द्रियों का पोषण, गाली, अपशब्द का त्याग करना।

अश्लील साधन=जुआ, ताश, चोपड़, शतरंज के खेलों का, सिनेमा देखना रेडियो व ट्रांजिस्टर द्वारा अश्लील गानों का सुनना, असभ्य नाच देखना, सट्टा लगाना, भारतीय संस्कृति के विरुद्ध वेष-भूषा का आडम्बर आदि का त्याग करना।

दैनिक कार्य=रात्री-भोजन, जमीकंद, स्नान, कपड़ा धोना, साग (सब्जी) फ्रूट आदि का त्याग करना।
उपरोक्त त्याग करने की वस्तुओं का यथाशक्ति अथवा पूर्ण त्याग किया जाय तो शरीर निरोग एवं जीवन धर्म प्रवृति में रहेगा।

प्रत्याख्यान (तपश्चर्या) का महत्व

प्रत्याख्यान (तप) करने से हिंसा आदि आस्रव द्वार बंद हो जाते हैं और इच्छा का निरोध हो जायेगा एवं निरोध होने पर समस्त विषयों के प्रति वितृष्णा होकर साधक शांत चित्त रहकर विचरण करता है।

मौन साधना का महत्व

परिभाषा=मन वचन एवं काया की कुप्रवृत्तियों का विरोध करना ही मौन का वास्तविक स्वरूप है।
आत्मा का विकार, अनन्त शुद्ध स्वरूप का ध्यान, चिंतन अध्ययन से आत्मा विभाव से स्वभाव में आ जायेगी।

मौन समस्त अर्थों की सिद्धि करने वाला है कार्य की क्षमता बढ़ती है। एवं भगवान का स्मरण शांत व एकाग्र चित से किया जा सकता है।

मौन साधना किस प्रकार करनी चाहिये ?

१. मन से=अनुचित संकल्प न करना चाहिये ।

२. वचन से=चुप रहना, और सावद्य भाषा न बोलना चाहिये।

३. काया से=समस्त इन्द्रियों को वश में रखना चाहिये।

सामायिक का महत्व

१. सामायिक के नियमों का सच्चाई पूर्वक सही महत्व समझ कर उनका पूर्ण रूप से पालन करने पर राग द्वेष की निवृति, तन मन धन से अममत्व समता भाव से सिद्ध योगी, सिद्ध भक्त और तपस्वी होकर आत्मा उत्तरोत्तर निर्मल एवं पवित्र होती है ।

२. सामायिक से पुराने कर्मों की निर्जरा होगी, कुपथ गामी, कुमार्ग दूषित भावना के ब्रेक लग कर शुद्ध भावना जागृत होती है ।

३. अशुभ ध्यान, पाप मय कार्यों का परित्याग, आत्म चिंतन, स्वाध्याय आदि में शुभ समय व्यतीत होता है ।

प्रतिक्रमण का महत्व

१. प्रतिक्रमण से अहिंसा आदि व्रतों के अतिचार रुक कर निर्मल चारित्र का पालन कर निजस्वरूप प्राप्त कर सकता है ।

२. प्रतिक्रमण से ज्ञान रूपी नेत्र खुल कर अज्ञान के कारण जो कुविचार हैं उनको सुविचारों की ओर मोड़कर सही मार्ग पर लाया जा सकता है ।

३. विरुद्ध-वचन विचार एवं व्यवहार को उचितता की ओर लाने के लिये, आन्तरिक एवं बाह्य विशुद्धि के लिये, कषायों की परिधि पर परकोटे के लिये, निरकुंशता को नाथ ने के लिये, आत्मोत्कर्ष की प्रगति की प्रबलता के लिये, जीवन ग्रन्थ का संशोधन एवं शुद्धि आदि कारणों के लिये प्रतिक्रमण उत्तम साधन है ।

स्वाध्याय का महत्व

स्वाध्याय में आध्यात्मिक एवं धार्मिक ग्रन्थों के अध्ययन नियमित करने से नैतिक एवं आध्यात्मिक जीवन को प्रेरणा पाकर आचार और विचार दोनों को पुष्ट कर सकता है।

स्वाध्याय में अपनी आत्मा का अध्ययन करने से एवं आत्मा स्वरूप का अध्ययन चिंतन मनन करने पर निज स्वरूप पहिचाना जाता है।

स्वाध्याय से ज्ञान और क्रिया का समन्वित रूप, एवं जीवादि तत्वों का ज्ञान होकर शुद्ध आचारण का विकास हो सकता है।

वर्तमान में स्वाध्याय की आवश्यकता क्यों ?

वर्तमान के भौतिक युग में नवयुवक युवतियां, छात्र छात्राएं पुरुष-हिलायें, बालक वालिकायें आदि में सिनेमा देखना, रेडियो ट्रांजिस्टर आदि गानों का सुनना, एवं उपन्यास जासूसी पुस्तकों का पढ़ना आदि की प्रवृतियां शेष बढ़ती जा रही हैं अतः इन से बचने के लिये स्वाध्याय करना अति तम रहेगा जिससे स्व-पर में कल्याणकारी भावना जागृत होगी :—

. सिनेमा से हानि=भारतीय संस्कृति के विरुद्ध सिनेमा के चित्रपट पर व पोस्टरों द्वारा प्रचार में स्त्री-पुरुषों के अश्लील अर्ध नग्न चित्र व वेष-भूषा का निर्लज्ज पहनाव आचार-विचार में विशुद्धता—कामोत्जक हीन भावना, अनैतिकता (चोरी लूट-पाट, हत्यायें) की हीन शिक्षा, अमर्यादित आचरण की हीन भावना के प्रभाव से जीवन पर बुरा असर पड़ता है।

२. रेडियो-ट्रांजिस्टर व फिल्मी गानों की रिकार्ड से हानि=इन गानों में विशेषकर अश्लील कामोत्जक व अभद्र व्यवहार के गाने होते हैं। इन के सुनने से श्रवण शक्ति का वल, स्मरण शक्ति की कमजोरी, मनोवल, चरित्र बल क्षीण होता है एवं सांसारिक कार्यों में व पठन-पाठन में अरुचि पैदा होती है।

३. उपन्यास जासूसी पुस्तकों के पढ़ने से हानि=छात्रों की पढ़ाई में अरुचि हर समय वही पुस्तकें याद आवेगी, मनोभावना में कामोत्जक भावना पैदा होगी पढ़ाई में कमी व परीक्षा में अनुतीर्ण होने की सम्भावना रहेगी।

४. होटलों में जाने से हानि=वर्तमान के फैशन युग में होटलों में जलपान के साथ अण्डा आमलेट व मदिरा का प्रयोग विशेष होने लगा है और जाति व धर्म का कुछ भी ध्यान न होने से विशुद्ध विचार वालों की संगत के प्रभाव से आचार-विचार रहन-सहन खान-पान में बड़ी दुर्दशा हो जाती है। इससे चरित्र गिरेगा और ज्ञान का ह्रास होगा।

सिनेमा, फिल्मी गानों, उपन्यास एवं होटल का प्रयोग की हानियों से दूर रहने का उत्तम साधन स्वाध्याय है अतः १५-२० मिनट का समय निकाल कर स्वाध्यय करना चाहिये। स्वाध्याय में महावीर भगवान के उपदेशों का साहित्य पढ़ने से जीवन में शुद्ध-बुद्धि व ज्ञान प्राप्त होगा, ज्ञान प्राप्त होने पर शुद्ध विचार, चारित्रवान सदव्यसनी सत्संगी होकर, जनप्रिय कहलाने की योग्यता आयेगी, स्वयं व् पर का कल्याण करने में सहायक बन पायेंगे एवं सुन्दर जीवन बन सकेगा।

वाणी के आठ गुण

१ कार्य पतितं=आवश्यक कार्य पर बोलना चाहिये।
२. गर्व रहितं=स्व प्रशंसा व अभिमान रहित बोलना चाहिये।
३. अतुच्छं=ओछे शब्द, हीनता व असभ्यता से न बोलना चाहिये।
४. धर्म संयुक्त=न्याययुक्त-धर्ममय सत्य बोलना चाहिये।
५. निपुणता=मधुर व चतुराई से बोलना चाहिये।
६. स्तोकं=अपना आशय संक्षिप्त रूप में बोलना चाहिये।
७. पूर्व संकलितं=विवेकता से सोच-विचार कर बोलना चाहिये।
८. मधुरंता=विवेकपूर्ण, मधुर, मिष्ट भाषा प्रिय वचन एवं निष्कपटता से बोलना चाहिये।

आध्यात्मिक साधनों की आदर्श शिक्षाएँ

१ ज्ञानविनय, दर्शन विनय, चारित्र विनय, मन विनय, वचन विनय, लोक व्यवहार विनय वाला मानव शांत-संतोषी सुखी जन प्रिय कहलाता है। धर्म का मूल विनय ही है।

२. भाषा में—विवेकता, आदरता, नम्रता, मधुरता, सत्यता, सरलता निष्कपटता होने से मानवता झलकती है ।

३. उच्च कुलोत्पन्न एवं वैभवशाली अतिथि के सत्कार में फूलने (घमंड) की भावना और दरिद्र व हीन कुलोत्पन्न अतिथि का तिरस्कार की भावना नहीं होनी चाहिये अतः दोनों का आदर सम्मान पूर्वक व्यवहार होना चाहिये ।

४. अस्थिरता, चिंता, काम वासना, मूढता और आत्म भाव की हीनता ये पांच मन के भयंकर रोग हैं ।

५. दान से पाप का व्याज एवं पूर्ण त्यागसे पाप का मूल चुकाया जाता है ।

६. आत्म ज्ञान दृढ श्रद्धा, भूलों की आलोचना से आत्मा उज्जवल दोष रहित होकर आत्मा परमात्मा पद तक पहुंच सकती है ।

७. आत्म विश्वास, आत्म ज्ञान, आत्म संयम, आत्म निरिक्षण, आत्म निष्ठा, आत्म विकास से जीवन परम शांति सम्पन्न हो जाता है ।

८. (a) समता सिद्धान्त दर्शन, समता जीवन दर्शन, समता आत्म दर्शन, समता परमात्मा दर्शन ये चार बातें जीवन का अनुसंधान हैं, जीवन में उतरने से दुःख वैषम्य और विपदायें दूर होकर आत्मा परमात्मा तक पहुँच सकती है ।

८. (b) आत्मा के दस शत्रु-चार कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ,) पांच इन्द्रिय (स्पर्श, रसना, कान, नाक, आंख) दसवां मन । धैर्य युक्त बुद्धि से मन को धीरे-धीरे वश में करने से चार कषाय एवं पांचों इन्द्रियों पर अधिकार के पश्चात मोक्ष प्राप्त करने का साधन हो जावेगा ।

९. अहिंसा परम धर्म है । अहिंसा परम दम है । अहिंसा परम तप है । अहिंसा परम दान है । अहिंसा परम मित्र है । अहिंसा परम सुख है ।

१०. क्रोध प्रीति का नाश करता हैं । मान विनय का नाश करता है । माया मित्रता का नाश करती है । लोभ सद्गुणों का नाश करता है ।

११. जो मानव भगवान महावीर की जिनवाणी को श्रद्धा भक्ति व धैर्य पूर्वक आचरण में लाता है उसका जीवन श्रेष्ठ चारित्रवान हो जाता है ।

१२. सत्पुरुष वही है—जो शास्त्र के लिये, धन दान के लिये जीवन धर्म के लिये और शरीर परोपकार के लिये धारण करते हैं।

१३. धर्म में तत्परता, चित में गम्भीरता, दान में उत्साह, गुण ग्रहण में रसिकता, गुरुजनों में नम्रता, प्रभु भजन में तल्लीनता, आचार में पवित्रता, मित्रों में निष्कपटता—ये सत्पुरुषों के गुण हैं।

१४. मुनि वन्दन करने से ऊँच कुल, आहार पानी, वस्त्र ठहरने का स्थान देने से इस भव में यश कीर्ति तथा भविष्य के भव में वैभव धन धान्य आदि रिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

१५. सात प्रकार के भय=(१) मनुष्य से मनुष्य का भय (२) देव तिर्यंच से भय, (३) धन से उत्पन्न होने वाला भय (४) छाया देखकर भय (५) कमाने का भय (६) मृत्यु भय (७) अपयश अपकीर्ति का भय।

१६. जितनी सादगी होगी उतना ही पाप कम होगा। सादगी में शील का वास है। विलासित बढ़ाने वाली सामग्री महा पापकारी है।

१७. मनुष्य समता से श्रमण, ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण, ज्ञान से मुनि और तप से तपस्वी होता है।

१८. अन्याय अत्याचार और चोरी करके हाथों हथकड़ी पहनने वाला अपने कुल को कलंकित करता है मगर अत्याचार अनाचार को दूर करने के लिए हथकड़ी पहनना पडे तो समझना चाहिए हमें सेवा के आभूषण पहनने को मिले हैं सच्चे सेवकों को यह आभूषण शोभा देता है।

१९. जीवन में उतरा हुआ धर्म सदा सब स्थानों (घर-दुकान-ऑफिस आदि) में एक रूप रहता है। सच्चा धार्मिक व्यक्ति घन्टा भर की सामायिक या पूजा नहीं करता किन्तु उसका सम्पूर्ण जीवन ही सामायिक और पूजा में भक्ति में ओत-प्रोत रहता है वही सच्चा धार्मिक जीवन है।

२०. स्वाध्याय की तरणी (नाव) पर बैठकर उन मंगलमयी तरल तरंगों को देखने को हृदय में उमंग चाव की आवश्यकता है।

२१. सुनने वाले करोड़ों हैं, सुनाने वाले लाखों हैं समझने वाले हजारों हैं। किन्तु समझ मुताबिक आचरण करने वाले विरले ही हैं।

२२. अहं वादी सोचता है—जगत मेरा सेवक है ।
विनम्र सोचता है—मैं जगत का सेवक हूं ।

२३. जो व्यक्ति अपने अच्छे कार्यों के बदले में धन्यवाद वावाही या किसी फल की चाह करता है वह बहुत ही अभागा है, क्योंकि वह बहुमूल्य सत्कार्यों को थोड़ी सी कीमत पर बेच डालता है ।

२४. जिसके द्वारा दान दिया जाता है वही दान के फल का अधिकारी होता है । देय वस्तु जिसकी होती है उसे धर्म की दलाली का फल मिलता है ।

२५. परमात्मा का मौखिक नाम स्मरण करने से सच्चा शरण नहीं मिलता । परमात्मा द्वारा निर्दिष्ट धर्म मार्ग पर चलने से सच्चा शरण मिलता है ।

. पुस्तकों में रही हुई विद्या, और दूसरों के हाथ चढ़ा हुआ धन ये दोनों समय पड़ने पर काम आने वाले नहीं हैं ।

. मनुष्य को प्रति दिन अपना आचरण देखना चाहिये और सोचना चाहिये कि मेरा आचरण पशुओं के समान कितना है और सत्पुरुषों के समान कितना है ।

. भटकती हुई इन्द्रियों के पीछे दौड़ने वाला मन बुद्धि को अपने साथ उसी तरह खींचता है जैसे तूफान समुद्र में जहाज को खींच ले जाता है ।

. अभिमानी को, क्रोधी को, रोगी को, आलसी को, प्रमादी को इन पांच व्यक्तियों को ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता ।

. असत्य भाषण के मुख्य कारण—१ क्रोध २ अभिमान ३ कपट ४ लोभ ५ राग द्वेष ६ हंसी मजाक ७ भय ८ लज्जा ९ क्रीड़ा १० हर्ष ११ शोक १२ चतुरता बताने में, १३ बहुभाषण ।

१. तीन बातों से शान्ति मिलती है—१ बाल्यकाल में विनय से २ जवानी में विवेक से, ३ बुढ़ापे में शांति धैर्य से ।

२. तीन बातों से दिमाग उच्च बनता है—१ घर में प्रेम रहने से २ गुणी जनों का सम्मान करने से ३ धर्म व दान में लग्न रखने से ।

३३. तीन बातों से प्रेम बढ़ता है—१ खाने में-खिलाने में २ देने दिलाने में ३ सुनने से सुनाने से ।

३४. सुख कहां मिलता है—१ मां-बाप की सेवा से २ गुरुजनों के दर्शनों से ३ दीन दुखियों को सुख देने से ४ नौकरों से प्रेम करने से ।

३५. मूर्ख पांच—१ चलता फिरता खावे २ बात चीत करता जाय व हंसता जाय ३ बीती बातों पर चिंता करे ४ अपनी बढ़ाई होशियारी स्वयं बतावे ५ दो मनुष्य की बातों में बाधा डाले ।

३६. दो बातों से प्रतिष्ठा बढती है—हाथ की सच्चाई से और बात व सच्चाई से । सादा जीवन हो—एवं उच्च विचार हो ।

३७. अधिक जीना या जल्दी मरना किसी की इच्छा के अधीन नहीं है । इच्छा करने से आयु कम ज्यादा नहीं हो सकती सिर्फ कर्म बन्धन होता है ।

३८. मानव अन्धा सात प्रकार से होता है—१ क्रोध के आवेश में २ मा अभिमान में फूल कर ३ माया छल कपट द्वारा अन्य व्यक्ति को फंसाने रचे पचे रहने में ४ लोभ तृष्णा में डूबे रहने में ५ पांचो इन्द्रियों विषय विकारों के सेवन में ६ मोह में यानि कुटुम्ब परिवार धन साम आदि के ममत्व में ७ स्वयं आंखों से दिखाई न देने पर अन्धा ।

३९. जैसे जैसे लोभ कम होता जाता है और ज्यों ज्यों आरम्भ परिग्रह घ होता जाता है त्यों त्यों सुख की वृद्धि होती जाती है और धर्म की सि होती जाती है ।

४०. मोतियों की अथवा फूलों की माला पहिन कर लोग फूले नहीं समा परन्तु उससे जीवन का वास्तविक कल्याण नहीं हो सकता । वीर वाण रूपी अनमोल मोतीयों की माला अपने गले (हृदय) में धारण करने वा ही अपने जीवन को कल्याण मय बना सकते हैं ।

४१. छिपाने की चेष्टा से पाप घटता नहीं, वरन बढता जाता है । पाप के लिए प्रकट रूप से प्रायश्चित करने वाला परमात्मा के सन्निकट पहुँचता है ।

४२. दान देकर ढिंढोरा पीटना उचित नहीं है। जो लोग अपने दान का ढिंढोरा पीटते हैं वे दान के असली फल से वंचित रह जाते हैं अतएव न तो दान की प्रसिद्धि चाहो और न दान देकर अभिमान करो।

४३. गुरु तो गुरु हैं ही, मगर संकट भी गुरु है, संकट से उपयोगी शिक्षाएँ मिलती है।

४४. अपने सद्विचार को आचरण में लाना ही कल्याण मार्ग पर प्रयाण करना है।

४५. मनुष्य में जितनी ज्यादा विनय शीलता होगी, उसकी पुण्याई उतनी ही ज्यादा बढ़ेगी।

४६. जो मनुष्य अपना दोष स्वीकार कर लेता है, उसकी आत्मा बहुत ऊंची चढ़ जाती है।

४७. बुढापे में चमड़ी में सिकुड़ पड़ गई, मस्तक के बाल सफेद हो गये और अंगोपांग ढीले पड़ गये केवल एक मात्र तृष्णा हरी भरी है अर्थात तृष्णा नहीं मरी।

४८. काम भोग की अभिलाषा रखने वाला, काम भोग का सेवन किये बिना ही मरकर नरक गति-दुर्गति में जाता है।

४९. अनिति से कमाया हुआ धन अधिक से अधिक दस वर्ष तक ठहर सकता है। ग्यारहवां वर्ष लगने पर मूल पूंजी नष्ट हो जाती है।

५०. क्रोध के समान विष नहीं। क्षमा के समान अमृत नहीं। लोभ के समान दुःख नहीं। संतोष के समान सुख नहीं। पाप के समान वैरी नहीं। धर्म के समान मित्र नहीं। कुशील के समान भय नहीं। शील के समान शरण भूत नहीं।

५१. १ दीजे दान २ लीजे यश ३ कीजे परोपकार ४ खाई जे गम ५ पीजे प्रेमरस ६ पाल जे शील ७ टाल जे कुसंगत ८ छोड़ जे पाप ९ आदर

जे धर्म १० ध्याई जे अरिहंत देव ११ सेवजे निर्ग्रन्थ गुरु १२ रमजे स्वाध्याय में ।

५२. अज्ञान पूर्वक-हठ, जीवन के लिये अहित कर होता है। ज्ञान पूर्वक दृढ़ संकल्प लेकर चलने वाले व्यक्ति का जीवन सफलता के समीप अवश्य पहुंच जाता है।

५३. जीवन का विकास सद्भावना से होता है, भावना व्यापक एवं विराट होनी चाहिये उसमें भी विवेक की अत्याधिक आवश्यकता है विवेक शून्य भावना में व्यक्ति स्वयं को महान और अन्य को निकृष्ट समझता है।

५४. निष्कपटता तथा सरलता पूर्वक शंका समाधान से ज्ञान की प्राप्ति होगी और आलोचना से पाप क्षय होकर आत्मा पवित्र होगी ।

५५. सच्ची क्षमा याचना का परस्पर आदान प्रदान करने से चित्त पर प्रसन्नता होगी मित्रता प्रेम बढेगा एवं आत्मा निर्मल-पवित्र होगी ।

५६. ईर्षालू, द्वेषनी, आलसी, मूर्ख, असहनशील और चरित्र हीन नारी गृह को कलह से नरक के समान कर देती है।

५७. त्यागमयी. सेवा परायण, परिश्रम शील. बुद्धि मति और सुशीला नारी गृह को स्वर्ग के समान बना देती है।

५८. प्रातः एवं सायं काल में फिलमी गानों के अतिरिक्त प्रभु भक्ति-गुण गान करने से स्व व पर में कल्याण कारी भावना जागृत होगी।

५९. ग्रहण करने योग्य— / त्याग करने योग्य—

ग्रहण करने योग्य—	त्याग करने योग्य—
अनुशासन में रहना उचित है	उदडंक होना अनुचित है
स्वतंत्र होना अच्छा है	स्वछन्द होना बुरा है
समज्ञ श्रद्धा रखना अच्छा है	नास्तिकता रखना बुरा है
समता अमृत के समान	विषमता विष के समान है
पुरुपार्थ जीवन का मित्र है	आलस्य जीवन का शत्रु है
स्वावलम्बी सदा सुखी होता है	परावलम्बी सदा दुखी होता है

पापी से घृणा नहीं करनी चाहिये   पाप से घृणा करनी चाहिये
धर्मात्मा का जागना अच्छा है   पापात्मा का सोना अच्छा है
अपने साथ कठोर रहना चाहिये   दूसरों के साथ नम्र रहना चाहिये
विनय वान लोक प्रिय होता है   अवनीत अनादर के योग्य होता है
सदाचारी सत्संगी होता है   दुराचारी कुसंगी होता है
स्व आत्म निन्दक होना चाहिये   पर आत्म निदंक नहीं होना चाहिये

६०. अहिंसापरमोधर्मः ॥ यतो धर्मः ततोजयः ॥ ऐक बनो नेक बनो ॥ क्षमा वीरस्य भूषणं ॥ सेवा परम धर्म है ॥ ब्रह्मचर्य श्रेष्ठ तप है ॥

६१. गया हुआ धन, खोया हुआ स्वास्थ्य, भूली हुई विद्या, छीना हुआ राज्य एवं मनुष्य जन्म सुकृतों से ही वापस मिल सकता है किन्तु गया हुआ समय वापस मिलना असम्भव है । अतः मानव को अपना समय सदाचार सदुपयोग में सम्मान पूर्वक व्यतीत करना, यही घड़ी की आदर्श शिक्षा है ।

कम पढ़ना अधिक सोचना, कम बोलता ही बुद्धिमानी के लक्षण है ।

आत्म विश्वास, आत्म ज्ञान, आत्म सयंम से जीवन शक्ति सम्पन्न हो जाती है ।

भोजन, वस्त्र, औषधि, ज्ञान और अभयदान यथा शक्ति करते रहना चाहिये ।

जीवन बड़ा असंस्कृत है, टूटने के बाद पुनः संध नहीं सकता है अतः समय मात्र का प्रमाद न करना एवं धार्मिक क्रिया उत्तम उत्तम भावना रखनी चाहिये ।

६. महावीर का संदेश-जीवो और जीने दो । आदेश मत दो, उपदेश दो ।

७. उपासना से आत्म शुद्धि होती है । निदंनीय भावना रोकना ही संयम है ।

८. जाति, लाभ, कुल, ऐश्वर्य, बल, रूप, तप और ज्ञान का मद (अभिमान) करता हुआ जीव भवान्तर में हीन जाति आदि को प्राप्त करता है ।

सदा अष्टमी चतुर्दशी को ?

जैन दर्शन में त्याग की विशेष प्रधानता प्रदर्शित कर महत्व पूर्ण दिग्दर्शन किया है, एवं मानव जीवन, उत्तम कुल, उत्तम जाति, उत्तम क्षेत्र, शरीर निरोग, बल, तीव्र बुद्धि और सभी उत्तम साधनों की प्राप्ति मिल जाय तो यथाशक्ति रुचि पूर्वक सदा अष्टमी चतुर्दशी को नवकारसी, एकपहरसी, दोपहरसी, एकासन, एकल ठाणा, सवंर-दया, आयंविल, उपवास, निविगई, रात्रि चौविहार आदि के प्रत्याख्यान करना एवं सामायिक स्वाध्याय, ज्ञान चर्चा, प्रतिक्रमण, पौषध, मौन साधना, दान, शील, तप, उत्तम भावना, यतना पूर्वक आदि धार्मिक क्रिया करना और रात्रि भोजन, हिंसा असत्य, चोरी, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, रागद्वेष, कलह, सात कुव्यसन, मादक द्रव्य, जमीकंद, फल सब्जी, अजंन-मजंन, नहाना धोना, गंध पुष्प एवं अनर्थदण्ड आदि का त्याग किया जाये तो मानव जीवन मिलने की सार्थकता एवं सुसंस्कार सुगति शिव सुख प्राप्त हो सकता है ।

६९. क्रोध से तपस्या नष्ट होती है। बिछोह (विरह) से स्नेह नष्ट होता है ।। विश्वासघात करने से व्यवहार नष्ट हो जाता है ।। घमंड करने से गुणी व्यक्ति का गुण नष्ट हो जाता है ।। चरित्र हीन स्त्री से कुल की शोभा नष्ट हो जाती है ।। दुर्भाग्य से शरीर का रूप नष्ट हो जाता है ।। भोजन के पश्चात् स्नान करने से पाचन शक्ति नष्ट हो जाती है ।। बिना परिश्रम के धन नष्ट हो जाता है ।। धर्म क्रिया प्रमाद से नष्ट हो जाती है ।।

७०. दुर्वचन से झगड़ा बढ़ता है ।। नीच व्यक्ति की संगत से दुराचरण बढ़ता है ।। विरोध से शत्रुता बढ़ती है ।। परिवार के झगड़ों से दुःख बढ़ता है ।। बुरी भावना से दुर्गति मिलती है ।। विना परहेज के बिमारी बढती है ।। खुजाने से खुजली बढती है ।। असंतोष से तृष्णा बढती है ।। व्यसन में विषय भोग में लालसा बढती है ।। निंदा करने से पाप बढता है ।। शोक से दुःख बढता है ।

१. मधुर वचन से मित्रता वढती है ।। विनय से गुण वढता है ।। दान से यश बढता है ।। अच्छे आचरण से विश्वास वढता है ।। अभ्यास से विद्या वढती है ।। न्याय से राज्य वढता है ।। उचित बात से महत्व वढता है ।। उदारता से प्रभुत्व वढता है ।। क्षमा से तप वढता है ।। लाभ से लोभ वढता है ।।

२. अकाल में दान दाता की परीक्षा होती ।। चतुर व्यक्ति की वाणी की परीक्षा सभा में होती है ।। पुरुष की एवं मित्र की परीक्षा कष्ट में होती है ।। शिष्य की परीक्षा विनय आचरण में होती है ।। बन्धुओं की परीक्षा दुर्भाग्य में होती है ।। ज्ञानवान मानव की परीक्षा गर्व पर होती है ।। तपस्वी की परीक्षा क्रोध पर होती है ।

३. मोह निद्रा से जगाने के लिए, विवेक को वढाने के लिए, तत्व के उपदेश के लिए, लोगों के हित के लिए और विकारों की शांति के लिए ही संतों की सूक्ति रूपशिक्षा का प्रवर्तन होता है ।

४. दान करने से मनुष्य की शोभा होती है, कंकण पहिनने से नहीं ।। स्नान से शरीर की शुद्धि होती है, चन्दन के लेप से नहीं ।। तृप्ति सम्मान से होती है, भोजन से नहीं ।। मुक्ति ज्ञान से प्राप्त होती है वेष धारण से नहीं ।

५. मानव के सोलह सुख—(१) निरोगी काया (२) घर में माया (३) पुत्र आज्ञाकारी (४) मृदुभाषिनि नारी (५) घर का मकान (६) कर्ज दार न हो (७) व्यापार अच्छा चले (८) सब का प्यारा (९) मन में निराकुलता (१०) स्वजन में वैर विरोध नहीं (११) मन धर्म में लागे (१२) कुकर्म में न फंसे (१३) साधु समागम (१४) शास्त्रों का ज्ञाता (१५) नेम शील व्रत धारी (१६) भगवान का पुजारी (ध्यान) ।

६. निरोग रहना सब से बड़ा लाभ है, सन्तोष सब से बड़ा सुख है । विश्वास सब से बड़ा सम्बन्धी है, और मोक्ष सबसे बड़ा सुख है ।

७७. विनय ही जिन शासन का मूल है और विनय ही मुक्ति पथ में सहायक है। जो विनय रहित है उसमें न संयम रहता है न तप रहता है। विनय से ज्ञान की प्राप्ति होती है, ज्ञान से सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। सम्यक्त्व से चरित्र प्राप्त होता है और चरित्र से मोक्ष प्राप्त होता है।

७८. १ शरीर का शृंगार शील, २ शील का शृंगार तप ३ तप का शृंगार क्षमा ४ क्षमा का शृंगार ज्ञान ५ ज्ञान का शृंगार मौन ६ मौन का शृंगार शुभ ध्यान ७ शुभ ध्यान का शृंगार संवर ८ संवर का शृंगार निर्जरा ९ निर्जरा का शृंगार केवल ज्ञान १० केवल ज्ञान का शृंगार अक्रिया ११ अक्रिया का शृंगार मोक्ष १२ मोक्ष का शृंगार अव्याबाध सुख।

७९. "भगवान की स्तुति एकाग्रध्यान एवं मन की चचंलता दूर करने पर आत्मज्ञान का प्रकाश हो जाता है।

८०. शास्त्र वाचन एवं श्रवण से कर्मों को निर्जरा होती है।

८१. माता-पिता, गुरु और स्वधर्मी की सेवा सुश्रूषा करने वाला विनयवान होकर मुक्ति प्राप्त कर सकता है।

८२. पापों का प्रायश्चित करने से भावना में विशुद्धता आयेगी पापों से घृणा होगी और आत्मा पवित्र व निर्मल होगी।

८३. परउपकारी के उपकारों का आभार मानना और स्व उपकार को नहीं दर्शाना चाहिये। अनुशासन ही धर्म की सीढी है।

८४. जैसी दृष्टि होगी—वैसी सृष्टि होगी। गुरु आज्ञा ही धर्म है।

८५. धर्म का भूषण वैराग्य है। नारी का भूषण लज्जा है।

८६. भाग्य शाली वही होता है जो अभागों से प्रेम करता है।

८७. दु:खों से बचने के लिये परमात्मा का स्मरण करना एक प्रकार की

कायरता है परमात्मा का स्मरण दुःख सहन करने की क्षमता प्राप्त करने के लिये उचित है।

८. ज्ञानी के सत्संग से ज्ञान एवं मोक्ष प्राप्ति होती है।

९. अपने से द्वेष रखने वाले के मन को भगवान की विश्वास पूर्वक प्रार्थना से, शुद्ध सेवा से, प्रेम से, तपस्या से अपनी ओर बदलाया जा सकता है।

०. राग द्वेष उत्पन्न करने वाले पदार्थों के प्रति समता, उपेक्षा भाव रखते हुए आत्मा को प्रफुल्लित रखना चाहिये।

१. सच्चा सेवक वही है—जो राष्ट्र, देश, समाज और परिवार को सुन्दर ढंग से रखे तथा उन्नत दिशा की ओर ले जावे।

२. ज्ञान मनुष्य का तीसरा नेत्र है। इच्छा ही व्याकुलता की जननी है। लक्ष्मी उद्योगी पुरुष की दासी है। शान्ति त्याग में है, तृष्णा में नहीं। भगवान का सम्बन्ध ही सच्चा सम्बन्ध है। न्याय युक्त भावना होनी चाहिये।

३. शांति वहीं रहती है जहां विवेक से काम लिया जाता है। समस्त दुखों की जड़ है "तृष्णा"। आदमी को महान बनाने वाला गुण है "सेवा"।

४. स्वयं त्यागी व निर्दोष होगा तो वह अन्य को त्यागी निर्दोष बना सकता है।

५. शिक्षा ऐसी होनी चाहिये—जिससे गरीबों का हित हो, शिक्षा का फल यह नहीं है कि शिक्षा पाया हुआ व्यक्ति निर्बलों, अशिक्षितों को भार रूप मालुम होता हो।

६. अहिंसा संयम और तप रूप धर्म सदा मंगलमय कल्याणकारी है। जो लोग जीवन में धर्म की आवश्यकता महसूस नहीं करते हैं—उन्होंने या तो धर्म का स्वरूप नहीं समझा या धर्म भ्रम को ही धर्म समझ लिया है।

७. त्रुटि तो प्रत्येक व्यक्ति कर सकता है, किन्तु उसपर दृढ़ मूर्ख ही होते हैं।

८. जो रागद्वेष रहित, सात्विक भाव में, क्रिया में त्याग प्रेम पूर्ण सदभाव

से भरा हो वही सच्चा धनी है एवं धन-वैभव, मान, पद अधिकार और ख्याति आदि भोगों की दृष्टि से सर्वथा दरिद्र है।

९९. भूल करना तो पाप है ही, पर उसे छिपाना उससे भी बड़ा पाप है।

१००. सतशास्त्र की मर्यादा सहित पढ़ने का नाम स्वाध्याय है।

१०१. अज्ञान सबसे बड़ा दुःख है, और ज्ञान सबसे बड़ा सुख है।

१०२. सदाचरण परम धर्म, परमतप, और परम ज्ञान है।

१०३. पीठ पीछे जो किसी की निंदा नहीं करता, जो सामने विरोधी वचन नहीं कहता, जो निश्चयकारी और अप्रिय भाषा नहीं बोलता, वह पूज्य है।

१०४. संसार में स्नेह ही दुःख का मूल है, उत्तम मिष्ठान-भोजन ही व्याधि के मूल हैं और लोभ पापों का मूल है।

१०५. बुद्धिमान कौन—दुःख सुख में शान्ति रखे, बड़ों की बात याद रखे छोटों पर दया व प्यार रखे।

१०६. हमने भोग नहीं भोगे किन्तु भोगों ने ही हमें भोग लिया। हमने तप तो नहीं तपा फिर भी दुःख रूपी ताप से मन संतप्त हो गया, शरीर दुर्बल हो गया, लोग कहते हैं समय बीत गया पर समय नहीं बीता हम स्वयं बीत गये। हम जीर्ण हो गये पर तृष्णा जीर्ण नहीं हुई।

१०७. पहले ज्ञान होना चाहिये फिर उसके अनुसार दया अर्थात् आचरण जहाँ ज्ञान नहीं वहाँ चरित्र भी नहीं रहता।

१०८. पुरुषार्थी, प्राक्रमी एवं साहसी मानव की शुद्ध क्रिया से उसको भगवान निकट में ही मिल सकते हैं।

१०९. संयम में तप, में तप में ज्ञान, ज्ञान से मोक्ष प्राप्त हो जाता है।

११०. त्याग करने की अपेक्षा ग्रहण न करना ही श्रेष्ठ है।

अवकाश के दिनों का सदुपयोग

सर्व व्यापारियों, वेतनदारों एवं विद्यार्थियों को प्रायः रविवार, मंगलवार बुद्धवार आदि दिनों में अवकाश का समय मिलता है। अतः यदि इन दिनों में यथाशक्ति रुचि पूर्वक व्याख्यान श्रवण, सामायिक स्वाध्याय, ज्ञान चर्चा, प्रतिक्रमण, उपवास, दया, आयंबिल, एकासन, पौषध आदि धार्मिक क्रियाओं के द्वारा अवकाश के समय का सदुपयोग किया जाय एवं ताश चौपड़ खेलने में, सिनेमा देखने में, व्यर्थ की बातों में समय का दुर्पयोग न किया जाय तो जीवन का सुसंस्कार, सुविकास, आत्म कल्याण, आत्मोद्धार किया जा सकता है।

भेद डालना महा पाप है

राष्ट्रदेश, समाज, संघ में भेद डालना महापाप है। भगवान ने राष्ट्र-देश समाज संघ में स्वार्थवश अनेकता उत्पन्न करना सब से बड़ा पाप बताया है और अन्य सभी पाप इस पाप से छोटे हैं। शांति और एकता भंग करके अशांति अनेकयता फैलाने वाला, छिन्नभिन्न करने वाला महा पापी है। जो लोग अपना वड़प्पन कायम करने के लिये दुराग्रह करके संघ आदि में विग्रह उत्पन्न करते हैं वे घोर पाप करते हैं।

लौकिक एवं लौकोतर कल्याणकारी दोहे

-: प्रार्थना :-

हे प्रभो ! आनन्द दाता, ज्ञान हम को दीजिये।
शीघ्र सारे दुर्गुणों को, दूर हम से कीजिये॥
लीजिये हम को शरण में, हम सदाचारी बने।
ब्रह्मचारी, धर्म रक्षक, वीर व्रत धारी बने॥

-: दोहा :-

१. इर्या-भाषा ऐषणा, ओलख जो आचार।
गुण वन्त साधु ने देखता, वन्द जो बारम्बार॥

२. आत्म छै ते नित्य छै, छै कर्ता निज कर्म।
छै भोगता वली मोक्ष छै, मोक्ष उपाय सु धर्म ।।
३. कषायनी उपशांतना, मात्र मोक्ष अभिलाष।
भवे खेद प्राणी दया, त्यां आत्मार्थं निवास ।।
४. ऐक शब्द सद गुरु तणो, धारे हृदय मझार।
ते-सपात्र शनैः शनैः, पायें भव जल पार ।।
५. हाड़ बड़ा हरि भजन कर, द्रव्य बड़ा कुछ देय !
अकल बड़ी उपकार से, जीवन का फल येह ।।
६. शील कहें मम राखत जे, तिन की रक्षा देव करेंगे।
जे मम त्याग कुबुद्धि करे, तिन देव कूपे सुख हरेंगे ।।
७. है दुःख ही मित्र, सब कुछ दुःख ही सिखलाय।
बल बुद्धि देता, दुःख पण्डित धीर वीर बनाय ।।
८. कर सोचे सो क्रूर है, सोच करे सो सूर।
कर सोचे मुख धूर है, सोच किये मुख नूर ।।
९. सुख में आन बहुत मिल बैठत, रहत चहुं दिस घेरे।
विपद पड़े सब ही छोड़त, कोउ न आवत नेरे ।।
१०. दीधी शिक्षा पण लागी नहीं, रीते चूल्हे फूंक।
गुरु विचारा क्या करे, चेला मांही चूक ।।
११. समझा समझा एक है, अन समझा सब एक।
समझा सोई जानिये, जाके हृदय विवेक ।।
१२. वाद विवाद विष घना, बोले बहुच उपाध।
मौन गहे सब की सहै, सुमिरै नाम अगाध ।।
१३. छुरि का, तीर का, तलवार का घाव भरेगा।
लगा जो घाव शब्द का, वह हमेशा हरा रहेगा ।।
१४. दीधा गाली ऐक है, पलटा होय अनेक।
पल्टा न होय तो, रहे एक की ऐक ।।

१५. तन-पवित्र सेवा किये, धन पवित्र किये दान ।
मन पवित्र हरि ध्यान धर, होवे त्रिविधि कल्याण ।।
१६. जो बन आवे नित करो, चित से पर उपकार ।
नित पर हित करते रहो, यही धर्म का सार ।।
१७. पाप किया जु ं नरक है, धर्म किया जु ं सग्ग ।
दौनों मार्ग बताविया, आछो ह्वै सो लग्ग ।।
१८. हानि लाभ, जय विजय, ज्ञान दान सम्मान ।
खान पान सुचि रुचि, पावे तुलसी विदित विधान ।।
१९. आंख कान मुख नासिका, सब के ऐक ही ठौर ।
देखना सुनना सूंघना, समझना चतुरन के और ।।
२०. जुवा खेलन मांस मद्य, वेश्या बिसन शिकार ।
चोरी पर रमनी रमन, ये सात पाप निवार ।।
२१. ग्रन्थ पन्थ सब जगत के बात बतावत तीन ।
राम हृदय, मन में दया, तन सेवा में लीन ।।
२२. जहाँ नहिं पहुंचे रवि, वहाँ पहुंचे कवि ।
जहाँ नहिं पहुंचे कवि, वहाँ पहुंचे अनुभवि ।।
२३. दया करे, धर्म मनराखै, घर में रहे उदासी ।
अपना सा दुख सब का जाने, ताहे मिले अविनाशी ।।
२४. माला फेरत युग गया, गया न मन का फेर ।
करका मन का छोड़ कर, मन का मणका फेर ।।
२५. वचनामृत जिन राज के, परम शान्ति मूल ।
औषधि है भव रोग की, कायर के प्रतिकूल ।।
२६. जेती लहर समुद्र की, तेती मन की दौड़ ।
सहज ही पाईये हीरा, जब आवे प्रभू ठौड़ ।।
२७. गुरु सिर पर खड़े, काहे कमी तोहे पास ।
रिद्ध सिद्ध सेवा करे, मुक्ति छोड़े न पास ।।

२८. गुरु आज्ञा माने नहीं, गुरु ही लगावे दोष।
गुरु निंदक जग में दुखी, मुऐ न पावे पोष॥
२९. ज्ञानी अज्ञानी जन, सुख दुःख रहित न कोय।
ज्ञानी वेदे धैर्य थी, अज्ञानी वेदे रोय॥
३०. सब कुछ गुरु के पास है, पाइये अपने भाग।
सारी इच्छा छोड़ के, रहे चरण में लाग॥
३१. सुख दिया सुख होत है, दुख दिया दुख होय।
आप हणे नहीं अवर को, तो आप को हणे न कोय॥
३२. मंत्र तंत्र औषधि नहीं, जेथी पाप पलाय।
वीत रागवाणी बिना, अवर न कोई उपाय॥
३३. पोथियां सारी बांच के, बात निकाली दोय।
सुख दिये सुख होत है, दुःख दिया दुःख होय॥
३४. कामी, क्रोधी, लालची, इन से भक्ति न होय।
भक्ति करे कोई सूरमा, जात चरण कुल खोय॥
३५. पोथी पढ़ पढ़ जग मुवा, पण्डित भयो न कोय।
ढ़ाई अक्षर प्रेम का, पढ़े सो पण्डित होय॥
३६. करुणा, बच्छलता, सुजनता, आत्मनिन्दा पाठ।
समता, भक्ति, विरागता, धर्म राग गुण आठ॥
३७. सरस्वती के भण्डार की, बड़ी अपूर्व बात।
ज्यों बांटे ज्यों बढ़े, बिन बांटे घटि जात॥
३८. कबीरा तहां न जाईये, जहां कपट का हेत।
जानो कली अनार की, तन राता मन श्वेत॥
३९. मधुर वचन है औषधि, कटुक वचन है तीर।
श्रवण द्वारा संचरे साले सकल शरीर॥
४०. साधू ऐसा चाहिए, जैसा सूप सुभाय।
सार सार को गहि रहे, थोथा देइ उड़ाय॥

४१ तन थिर, मन थिर, सूरत निरत थिर होय।
दादू ऐसे पलक को, कल्प न पहुँचे कोय॥
४२. प्रेम भाव ऐक चाहिये, भेष अनेक, बनाय।
चाहे घर में वास करे, जाहे वन में जाय॥
४३. वह आंख-आंख नहीं वह दिल-दिल नहीं।
जिसे किसी की मुसीबत, नजर आती नहीं॥
४४. आचारी सब जग मिला, मिला न उच्च विचारी कोय।
कोटि आचारी वारिये, एक उच्च विचारी जो होय॥

४५. उपकार करो तन से मन से, धन से जग के दुख हरो।
अविचार अनिति तजो सब ही मत, वैभव का कुछ गर्व करो॥

अपने पर खूब सचेत रहो, फिर तो जग में अणु भी न डरो।
नर जन्म अमोल कुछ तो, परलोक हितार्थ निकाल धरो॥

४६. जन्म से कोई नीच नहीं, जन्म से कोई महान नहीं।
कर्म (क्रिया) से बढ़ कर, मनुष्य की कोई पहिचान नहीं॥
४७. आपा जहाँ है आपदा, चिन्ता है जहाँ क्षोभ।
ज्ञान बिना यह नहिं मिटे, जालिम मोटा रोग॥
४८. बद की सोबत में मत बैठो, बद का अंजाम बुरा।
बद न बनो पर बद कहलाओ, बद अच्छा बदनाम बुरा॥
४९. ऊंडो सोवे ऊनो खावे, पाव कोस मैदान जावे।
चोखो सोचे ठंडो नहावे, तिण घर वैद्य कबहू न आवे॥
(सारांश) शुद्ध भोजन, शुद्ध हवा, शुद्ध जल, शुद्ध विचार वाला मानव निरोग रहता है।
५०. ज्ञानी-ध्यानी संयमी, दाता सूर अनेक।
जपिया तपिया बहुत है, शील वंत कोई एक॥
५१. कम खाना-गम खावणा, बड़ा कठिन दो जोग।
कम खायां तन रोग कटै, गम खायां वैर कटै॥

५२. मुनि व्रत धार अनन्त वार, ग्रीवक उप जायो।
पै निज आत्म ज्ञान विना, सुख लेश न पायो॥
५३. अहो जीव परम पद चाहे, तो धीरज गुण धार।
शत्रु मित्र, अरु तृण मणि, एक ही दृष्टि निहार॥
५४. जिह्वा में अमृत बसे. विष भी निज के पास।
एक बोले तो लाख ले, एक लाख विनास॥
५५. कागा किस का धन हरे, कोयल किस को देय।
अमृत वाणी बोल के, जुग अपना कर लेय॥
५६ धर्म किया संकट टले, धर्म किया यश होय।
धर्म किया अफल फले, धर्म करो सब कोय॥
५७. जिसने किया लोभ से सट्टा, कंधे बचा न एक डुपट्टा।
कई लोग चले ऐसी चाल, धन खो खोकर हुये कंगाल॥
५८. दीवालो काढे तीन जणाँ, हुंडी चिट्ठी विणज घणा।
तूं क्यों रोवे चोथा जणाँ, म्हारे आमद-खर्च घणा॥
५९. भक्ति दान मोहि दीजिये, गुरु देवन के देव।
और कछू नहिं चाहिये, निशि दिन तेरी सेव॥
६०. किस विधि रीझत हो प्रभु, कहा कहि देरू नाथ।
लहर महर जब ही करो, तब ही होऊँ स नाथ॥
६१. जो बात कहो साफ हो, सुथरी हो भली हो।
कड़वी न हो खट्टी न हो, मिसरी की डली हो॥
६२. धन जीवन का ध्येय नहीं, केवल है जीने का साधन।
नीति निपुणता, शुभ चिंता से ही, अर्जित धन
जग में सच्चा धन॥
६३. किसी का उपकार करके भूल जाओ, किसी से
उपकार कराके मत भूलो।
किसीको देकर भूल जाओ, किसी से लेकर मत भूलो॥
६४. बहु भक्षी-क्रोधी कुटिल, दे धीरज को त्याग।
आलस्य, प्रेम मलीनता, ये मूर्ख राग॥

६५. करना कुछ नहीं जानता, मानव पर उपकार।
आलस्य करे, प्रकटे अधिक, वह मूर्ख बदकार ।।

६६. रोगी हो औषध तजे, करे पथ नहीं सेव।
बिन जाने साथी करे, यह मूर्ख टेव ।।

६७. विद्या धन सब धनन से, सन्त कहत सरदार।
बड़े भाग से मिलत है, जानत सकल संसार ।।

६८. अंधकार है वहां, जहां आदित्य नहीं है।
मुर्दा है वह देश, जहाँ सत साहित्य नहीं है ।।

६९. बन जाओ सब देवियां, कर दो सरस सुधार।
बहनो तज दो रूढ़ियां, शुद्ध रीति लो धार ।।

७०. अनेकान्त की दृष्टि जहां है, और न है पक्ष पात का जाल।
मैत्री-करुणा सब जीवों पर, जैन धर्म है वह सुविशाल ।।

७१. मानव तुम मानव वनो, सेठ बनो दिल दार।
विश्व प्रेम की भावना, लेवो दिल में धार ।।

७२. परनारी के राचने, सीधा नर के जाय।
तिनको यम छोड़े नहीं, कोटिन करे उपाय ।।

७३. कंचन तजना सहज है, सहज त्रिया का नेह।
मान वढाई ईरषा, दुर्लभ तजनी देह ।।

७४. लेने को हरिनाम है, देने को अन्नदान।
तरने को आधीनता, डूबन को अभिमान ।।

७५. जो गृह करै तो धर्म कर, नहीं तो ले वैराग।
बैरागी बन्धन करै, ताको बड़ौ अभाग ।।

१. जैनधर्म के मूल सिद्धान्तों का संक्षिप्त परिचय

१. धर्म—जो दुर्गति में गिरते हुये प्राणी को बचावे और सद्गति में पहुंचावे उसको धर्म कहते हैं।

२. उत्तम धर्म—क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य, यह दस प्रकार का उत्तम धर्म है।

३. पंच महाव्रत—(१) अहिंसा व्रत, (२) सत्यव्रत, (३) अचौर्यव्रत (४) ब्रह्मचर्य, (५) अपरिग्रह प्रमाण व्रत।

४. श्रावक के बारह व्रत (अणुव्रत) (१) प्राणातिपात विरमण (२) स्थूल मृषावाद विरमण (३) स्थूल अदत्तादान (४) स्वदारा संतोष (५) परिग्र परिमाण (६) दिशा परिमाण (७) उपभोग परिभोग परिमाण (८ अनर्थ दण्ड विरमण (९) सामायिक (१०) देशाव काशिक (११) पौष (१२) अतिथि सं-विभाग।

५. चार कषाय—क्रोध, मान, माया, लोभ।

६. अठारह पाप—(१) प्राणातिपात, (२) मृषावाद, (३) अदत्ता दा (४) मैथुन, (५) परिग्रह, (६) क्रोध, (७) मान, (८) माया, (९) लो (१०) राग, (११) द्वेष, (१२) कलह, (१३) अभ्या ख्यान, (१ पेशुन्य, (१५) पर परिवाद, (१६) रति अरति (१७) माया मृषावा (१८) मिथ्यादर्शन।

७. नवतत्त्व—(१) जीव तत्त्व, (२) अजीव तत्त्व, (३) पुन्य तत्त्व, (४) पाप तत्त्व, (५) आश्रव तत्त्व, (६) ससंर तत्त्व, (७) निर्जरा तत्त्व, (८) बन्ध तत्त्व, (९) मोक्ष तत्त्व।

८. बारह भावना—(१) अनित्य, (२) अशरण, (३) संसार, (४) एकत्व, (५) अन्यत्त्व, (६) अशुचि, (७) आश्रव, (८) संवर (९) निर्जरा, (१०) लोक स्वरूप, (११) वोधि दुर्लभ (१२) धर्म भावना।

९. मोक्ष मार्ग का साधन—(१) सम्यग्दर्शन (२) सम्यग्ज्ञान (३) सम्यक् चरित्र ।

०. पांच ज्ञान—(१) मतिज्ञान, (२) श्रुतज्ञान, (३) अवधिज्ञान, (४) मनः प्रर्याय ज्ञान, (५) केवल ज्ञान ।

१. पांच प्रकार के जीव—(१) पृथ्वीकाय (२) जलकाय (३) वनस्पति काय (४) अग्निकाय, (५) वायुकाय ।

२. गति चार—(१) देव गति, (२) मनुष्य गति, (३) तिर्यंच गति (४) नरक गति ।

३. पांच इन्द्रिय—(१) स्पर्शन (२) रसना, (३) घ्राण, (४) चक्षु, (५) श्रोत्र ।

४. आठ कर्म—(१) ज्ञानावर्णीय, (२) दर्शनावरणीय, (३) मोहनीय, (४) अन्तराय, (५) नाम, (६) गोत्र, (७) वेदनीय (८) आयुष्कर्म ।

५. पाप कर्म—हिंसा, झूँठ, चोरी, मैथुन, परिग्रह ।

६. पुन्य कर्म—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह ।

७. लोक तीन—(१) ऊर्ध्व लोक, (२) अधोलोक, (३) तिर्यकलोक ।

८. जन्म तीन प्रकार से—(१) सम्मूर्छिम, (२) गर्भ, (३) उपपात ।

९. वैराग्य की परिभाषा—पांच इन्द्रियों के विषय भोगों में उदासीन—विरक्त होना, मन को वश में करना ।

०. बाईस अभ्यक्ष्य—(१) ओला, (२) घोर बड़ा, (३) निशिभोजन (४) बहु बीजा, (५) बेंगन, (६) संधान, (७) बड़, (८) पीपल, (९) ऊबंर, (१०) कठूंबर, (११) पाकर, (१२) अंनजान फल, (१३) कन्दमूल, (१४) मारी, (१५) विष, (१६) आभिष, (१७) मधु, (१८) मक्खन, (१९) मदिरापान, (२०) अति तुच्छ फल, (२१) तुषार, (२२) चलित रस ।

२१. चार गति में भटकने के कारण—

(१) नरक गति के कारण—(१) छः काया के जीवों के वध की भावना और कार्य करना, (२) महा परिग्रह अर्थात् महाइच्छा या तीव्र लोभ करना, (३) मदिरा मांस का सेवन करना, (४) पंचेन्द्रिय जीवों की घात करना ।

(२) तिर्वंच गति के कारण—(१) दगाबाजी, (२) विश्वासघात, (३) झूंठ बोलना, (४) नाप तौल खोटे रखना ।

(३) मनुष्य गति के कारण—(१) विनयवान होना, (२) भद्र परिणा होना, (३) दयालुता, (४) गुणानुराग ।

(४) देवगति के कारण—सराग संयम (संयम का पालन तो कर किन्तु शरीर या शिष्य आदि पर राग करना) संयमा संय अकाम निर्जरा, पराधीनता से प्राप्त हुये दुःखों को समभाव सहन करना (बाल तप अर्थात् अज्ञानपूर्वक पंचाग्नि आदि त करना)

२२. मिलना कठिन है— १) मनुष्य भव, (२) आर्यक्षेत्र, (३) उत्त कुल, (४) दीर्घ आयु, (५) अविकल इन्द्रियां, (६) नीरोग शरीर ।

२३. प्रमाण चार—(१) प्रयत्क्ष, (२) अनुमान, (३) आगम (४) उप प्रमाण ।

२४. स्याद्वाद—स्याद्वाद का सिद्धान्त जैन दर्शन की सब से बड़ी विशेष है इसी को अनेकान्त वाद भी कहा जाता है । स्याद्वाद जैन दर्श की आत्मा है इसी से सभी झगडे निपट सकते हैं ।

२५. नय की परिभाषा—प्रमाण से जानी हुई अनन्त धर्मात्मक वस्तु एक धर्म को मुख्य रूप से जानने वाले ज्ञान को नय कहते हैं । न सात हैं —(१) नैगम नय, (२) संग्रह नय, (३) व्यवहार न

(४) ऋजु सूत्र नय, (५) पर्यायवाचक नय, (६) समाभिरूढ नय (७) एवं भूत नय ।

२६. प्रत्याख्यान—(१) नवकारसी, (२) पोरसी, (३) दो पोरसी (४) एकासन, (५) एकल ठाणा, (६) निव्वि गइयं (७) आयंबिल, (८) उपवास, (९) दिवस चरम, (१०) सवंर-दया ।

२७. योगांग आठ—(१) यम, (२) नियम, (३) आसन, (४) प्राणायाम (५) प्रत्याहार, (६) धारणा, (७) ध्यान (८) समाधि ।

२८. चित के आठ दोष—आठ दोष ध्यान में विघ्न करते हैं तथा कार्य सिद्धि के प्रतिबन्धक हैं इसलिये उन्नतिशील व्यक्ति को इनसे दूर रहना चाहिये—(१) ग्लानि, (२) उद्वेग (३) भ्रान्ति, (४) उत्थान (५) क्षेप (६) आसंग, (७) अन्य मुद्र (८) रुक ।

९. पुण्य नौ प्रकार बांधा जाता है—(१) अन्न पुण्य, (२) पान पुण्य, (३) लयन पुण्य, (४) शयन पुण्य, (५) वस्त्र पुण्य, (६) मन पुण्य, (७) वचन पुण्य, (८) काय पुण्य, (९) नमस्कार पुण्य ।

०. स्वाध्याय के पांच भेद—(१) वाचना, (२) पृच्छना, (३) परिवर्तना, (४) अनुप्रेक्षा, (५) धर्मकथा ।

१. बल दस—(१) स्पर्शनेन्द्रिय बल (२) रसनेन्द्रिय बल (३) घ्राणेन्द्रिय बल, (४) चक्षुरिन्द्रिय बल, (५) श्रोतेन्द्रिय बल, (६) ज्ञान बल, (७) दर्शन बल, (८) चरित्र बल, (९) तप बल (१०) वीर्यबल ।

३२. अवस्था दस—(१) बाल अवस्था' (२) क्रीड़ा, (३) मन्द, (४) बला अवस्था (५) प्रज्ञा अवस्था (६) हांपनी (७) प्रपंचा, (८) प्राग भारा, (९) मुंमुही, (१०) रचापनी ।

३३. मृषावाद दस—(१) क्रोधनिः सृत (२) माननिः सृत (३) माया निःसृत, (४) लोभा निःसृत, (५) प्रेमनिःसृत, (६) द्वेषनिःसृत (७) हासनिःसृत, (८) भयनिःसृत, (९) आख्यायि कानिःसृतः (१०) उपघात निःसृत ।

३४. दान दस—(१) अनुकम्पा दान (२) संग्रहदान (३) भयदान (४) कारुण्यदान (५) लज्जादान (६) गौरवदान (७) अधर्मदान (८) धर्मदान (९) करिष्यतिदान (१०) कृतदान।

३५. सुख दस—(१) आरोग्य (२) दीर्घ आयु (३) आढचत्व (धन) (४) काम (५) भोग (६) सन्तोष (७) अस्ति सुखः (८) शुभ योग (९) निषक्रमण (१०) अनाबाध सुख।

३६. संयम आठ—(१) प्रक्ष्य संयम (२) उपेक्ष्य संयम (३) अपहृत्य संयम (४) प्रमृज्य संयम (५) काय संयम (६) वाद संयम (७) मन संयम (८) उपकरण संयम।

३७. शिक्षाशील के आठ गुण—(१) शांति (२) इन्द्रिय दमन (३) स्वदोष दृष्टि (४) सदाचार (५) ब्रह्मचर्य (६) अनासक्ति (७) सत्याग्र (८) सहिष्णुता।

३८. उपदेश आठ—(१) शांति (२) विरति (३) उपशम (४) निर्वृति (५) शौच (६) आर्जव (७) मार्दव (८) लाघव।

३९. आयुर्वेद आठ—(१) कुमार भृत्य (२) काय चिकित्सा (३) शालाक (४) शल्य हत्वा (५) जंकोली (६) भूत विद्या (७) क्षार तंत्र (८) रसायन शास्त्र।

४०. पानी छानने का कपड़ा वीस अगुंल चौड़ा और तीस अगुंल लम्बा होवे और उसको दोहरा कर के पानी छान कर पीना चाहिये। मछली मारने वाले धीवर को एक वर्ष में जितना पाप लगता है, उतना पाप एक दिन बिना छना पानी काम में लाने या पीने से होता है।

४१. पुण्यवान को दस वोल प्राप्त होते हैं। (१) क्षेत्र (ग्राम घर) (२) वहु मित्र (३) सगे सम्वन्धी वहुत (४) ऊंच गोत्र (५) कान्ति (६) शरीर नीरोग (७) तीव्र वुद्धि (८) उदार स्वभाव (९) यशस्वी (१०) वलवान।

२. जो श्रावक इन चौदह नियमों का प्रतिदिन विवेकपूर्वक चिन्तन करता है तथा मर्यादा का पालन करता है, वह सहज ही महा लाभ प्राप्त कर लेता है—

१. सचित—नमक, पानी, वनस्पति, फल फूल धान्य बीज आदि की गिनती तथा वजन की मर्यादा अपनी इच्छानुसार करके बाकी का त्याग करे।

२. द्रव्य—खान पान सम्बन्धी द्रव्यों की गिनती करके उपरान्त त्याग करे।

३. विगय—घी, तेल, दूध, दही, गुड़ (मीठा) और पकवान की गिनती तथा वजन की मर्यादा करके बाकी का त्याग करे। मधु और मक्खन का त्याग करे।

४. पण्णी—जूते, मौजे, खड़ाऊ, बूंट, चप्पल आदि की मर्यादा करें, बाकी का त्याग करें।

५. ताम्बूल—पान, सुपारी, इलायची, चूर्ण, खटाई, पापड़ आदि की वजन की मर्यादा कर बाकी का त्याग करे।

६. वस्त्र—सब जाति के वस्त्रों की गिनती की मर्यादा करे, बाकी का त्याग करे।

७. कुसुम—फूल, इत्र आदि सुगन्धित पदार्थो की मर्यादा करके शेष का त्याग करे।

८. वाहण—गाड़ी, मोटर, तांगा, हवाई जहाज, नाव आदि सवारी की मर्यादा करके, बाकी का त्याग करे।

९. शयन—शय्या, पाट, पाटला, पलंग, मकान आदि के विषय में मर्यादा करे।

१०. विलेपन—लेप और मालिश किये जाने जाने वाले द्रव्य जैसे केसर, चन्दन, तेल आदि की मर्यादा करे।

११. अबंभ—(अब्रह्मचर्या)—स्वदारा संतोष व्रत में जो मर्यादा की है उसमें संकोच करें।

१२. दिशि—दिशा परिमाण व्रत में जीवन भर के लिये जितना क्षे रखा है उस क्षेत्र का संकोच करें।

१३. स्नान—स्नान की गिनती तथा स्नान के लिये जल के वजन व मर्यादा करें।

१४. भत्तो—अशनादि चार आहार का परिमाण करके बाकी क त्याग करे।

४३. अनर्थ दंड त्याग व्रत—विना प्रयोजन पापारम्भ करना अनर्थ दं है, अनर्थ दंड के चार भेद हैं—

१. अपध्यानाचरित—आर्त ध्यान और रौद्रध्यान के वश होकर इ संयोग, अनिष्ट वियोग की चिन्ता करना तथा किसी प्राणी कं हानि पहुँचाना आदि पाप कर्म का विचार करना।

२. प्रमादा चरित—विकथा करना, एवं असावधानी से काम करन तथा घी, तेल आदि के बर्तनों को उघाड़े रखना।

३. हिंस्त्र प्रदान—तलवार, बन्दूक, पिस्तौल, तमंचा आदि हिंसाकारं शस्त्र दूसरों को देना।

४. पाप कर्मोपदेश—पाप कर्म का उपदेश देना एवं पाप कर्म कं प्रेरणा करना।

४४. पन्द्रह कर्मादान का त्याग—(१) इंगाल कम्मे (२) वण कम्मे (३) साड़ी कम्मे (४) भाड़ी कम्मे (५) फोड़ी कम्मे (६) दंत वाणिज्जे (७) लक्खवाणिज्जे (८) रसवाणिज्जे (९) विसस वाणिज्जे (१०) केस वाणिज्जे (११) जंत पीलणया कम्मे (१२) निल्ल छण कम्मे (१३) दवग्गि दावणया (११) सरदहतलाय सोसणया (१५) असईजण पोसणया।

१. भगवान महावीर के ग्यारह नाम—(१) वर्धमान (२) श्रमण (३) महावीर (४) विदेह (५) ज्ञात अथवा ज्ञात पुत्र (६) वैशालिक (७) मुणि (८) सन्मति (९) महति वीर (१०) अन्त्य काश्यप (११) देवार्य। (जैन सिद्धान्त बोल संग्रह चौथा भाग बोल ११ से)

२. विनीत के पन्द्रह लक्षण—गुरु आदि बड़े पुरुषों की सेवा शुश्रूषा करने वाला विनीत कहलाता है।

१. विनीत—नम कर रहता है, नीचे आसन पर बैठता है, हाथ जोड़ता है, चरणों में धोक देता है।
२. आरम्भ किये हुये काम को नहीं छोड़ता, चंचलता नहीं करता, जल्दी-जल्दी नहीं चलता किन्तु विनयपूर्वक धीरे-धीरे चलता है। असत्य कठोर और अविचारित वचन नहीं बोलता है।
३. सरल होता है, छल कपट नहीं करता है।
४. क्रीड़ा से सदा दूर रहता है, खेल तमाशे आदि देखने की लालसा नहीं करता है।
५. अपनी छोटी सी भूल को भी दूर करने की कोशिश करता है किसी का अपमान नहीं करता है।
६. विनीत क्रोध नहीं करता तथा क्रोधोत्पत्ति के कारणों से भी दूर रहता है।
७ मित्र का प्रत्युपकार करता है। कभी कृतघ्न नहीं बनता है।
८. विद्या पढ़ कर अभिमान नहीं करता है।
९. किसी समय बड़ों के द्वारा किसी प्रकार की गल्ती हो जाने पर उनका तिरस्कार नहीं करता है।
१०. बड़े से बड़ा अपराध होने पर भी कृतज्ञता के कारण मित्रों पर क्रोध नहीं करता है।

११. अप्रिय मित्र का भी पीठ पीछे दोष प्रकट नहीं करता।

१२. कलह और लड़ाई से सदा दूर रहता है।

१३. कुलीनपने को नहीं छोड़ता, सौंपे हुये काम को नहीं छोड़ता है।

१४. विनती ज्ञानवान होता है किसी सभय बुरे विचारों के आने पर भी कु-कार्य में प्रवृति नहीं करता है।

१५. बिना कारण बड़ों के निकट या दूसरी जगह इधर-उधर नहीं घूमता है।

४७. साधु के अठारह कल्प—छः व्रत, छः काया के आरम्भ का त्याग अकल्पनीय वस्तु, गृहस्थ के पात्र, पर्यंक निष्द्या, स्नान और शरीर सुश्रूषा इनका त्याग करना ये अठारह स्थान हैं।

४८. दीक्षा के अयोग्य अठारह पुरुष—१ बाल, २ वृद्ध, ३ नपुंसक, ४ क्लं ५ जड़ (भाषा जड़, शरीर जड़, और करण जड़) ६ व्याधित ७ स ८ राजापकारी, ९ उन्मत, १० अदर्शन, ११ दास, १२ दुष्ट, १३ १४ ऋणार्त, १५ जुंगित, १६ अवबद्ध, १७ भृतक, १८ शैक्ष-निस्फेटि

४९. धोवन (पानी) इक्कीस प्रकार का—१ उस्सेइम, २ संसेइम चाउलोदक, ४ तिलोदक, ५ तुसोदक, ६ जवोदक, ७ आयाम सौवीर, ९ शुद्ध विपड, १० अम्ब पाणग, ११ अंबाडग पाणग, कविट्ठ पाणग, १३ माउलिंग पाणग, १४ मुद्दिया पाणग, दालिम पाणग, १६ खजूर पाणग, १७ नालियर पाणग, करीर पाणग' १९ कोल पाणग, २० अमल पाणग, २१ चिंचा पाणग

५०. बाईस परिषह—१ क्षुधा, २ पिपासा, ३ शीत ४ उष्ण, ५ मशक, ६ अचेल परिषह. ७ अरति, ८ स्त्री, ९ चर्या, १० नैषेधिक ११ शय्या, १२ आक्रोश, १३ वध परिषह, १४ याचना, १५ अला १६ रोग, १७ तृण स्पर्श, १८ जल्ल, १९ सत्कार पुरस्कार २० प्रज्ञ परिषह २१ अज्ञान और २२ दर्शन परिषह ।

बत्तीस सूत्र के नाम—

१ आचारंग सूत्र, २ सूत्र कृतांग, ३ स्थानांग, ४ समवायांग, ५ भगवती, ६ ज्ञाता धर्म कथा, ७ उपासक दशा, ८ अन्त कृद्दशा, ९ अनुत्तरोप पातिका, १० प्रश्न व्याकरण, ११ विपाक, १२ औप पातिका, १३ राज प्रश्निय, १४ जीवा भिगम, १५ प्रज्ञापना, १६ जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति, १७ सूर्य प्रज्ञप्ति, १८ चन्द्र प्रज्ञप्ति, १९ निरया विलिका, २० कल्पावतंसिका, २१ पुष्पिका, २२ पुष्पचूलिका, २३ वह्नि दशा, २४ उतराध्ययन, २५ दशवैकालिका, २६ नन्दी सूत्र, २७ अनुयोग द्वार, २८ दशा श्रुत स्कन्ध दशा, २९ वृहत्कल्प, ३० निशीथ सूत्र, ३१ व्यवहार, ३२ आवश्यक।

प्रवचन संग्रह तैयालीस वोल इस प्रकार हैं:—

१. धर्म—धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल हैं।

२. नमस्कार माहात्म्य—अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु पांचों पद मुमुक्षुओं के मोक्ष के हेतु हैं।

३. निर्ग्रन्थ प्रवचन महिमा—राग द्वेष को जीतने वाले पूर्वज्ञानी तीर्थंकर देव ने जो कहा है वही सत्य है।

४. आत्मा—आत्मा ही नरक की वैतरणी नदी तथा कूट-शाल्मली वृक्ष है और यही स्वर्ग की कामदुधा धेनु और नन्दन वन है।

५. सम्यग्दर्शन—चरित्र भ्रष्ट, आत्मा भ्रष्ट नहीं है किन्तु दर्शन भ्रष्ट (श्रद्धा से गिरा हुआ) आत्मा ही वास्तव में भ्रष्ट है। सम्यग्दर्शन वाला जीव संसार में परिभ्रमण नहीं करता।

६. सम्यग्ज्ञान—जितने भी अज्ञानी पुरुष हैं वे सभी दुःख भोगी हैं, भले बुरे के विवेक से शून्य वे अज्ञानी पुरुष इस अनन्त संसार में अनेक बार दरिद्रतादि से पीड़ित होते हैं।

७. क्रिया रहित ज्ञान—चरित्र रहित पुरुष को बहुत से शास्त्रों का अध्ययन भी क्या लाभ दे सकता है। क्रिया शून्य ज्ञान निष्फल है।

८. व्यवहार निश्चय—व्यवहार के बिना तीर्थ एवं आचार का उच्छेद हो जाता है और निश्चय बिना तत्व ही का नाश हो जाता है।

९. मोक्ष मार्ग—सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक् चरित्र और तप ये चारों मोक्ष मार्ग के उपाय हैं।

१०. अहिंसा दया—सभी जीव जीना चाहते हैं, मरना कोई भी नहीं चाहता है। जीव की हिंसा करना, आत्मा की हिंसा करना है और जीवों पर दया करना, आत्मा पर दया करना है। अतः हिंसा का त्याग करना और दया करनी चाहिये।

११. सत्य—सत्य यश का मूल कारण है, सत्य ही विश्वास प्राप्ति का मुख्य साधन है। सत्य स्वर्ग का द्वार है।

१२. अदत्ता दान (चोरी) विरति—स्वामी से बिना दी हुई वस्तु ग्रहण करना अदत्ता दान है। प्राणधारी आत्मा का प्राण हरण भी उसकी आज्ञा न होने से अदत्ता दान है।

१३. ब्रह्मचर्य-शील—ब्रह्मचर्य सभी तपों में प्रधान है। ब्रह्मचर्य के शुद्ध आचरण से उत्तम ब्राह्मण, उत्तम श्रमण, उत्तम साधु होता है।

१४. परिग्रह का त्याग—मायादि शल्य, दण्ड, गारव और कषाय संज्ञा शब्दादि गुण, रूप, आश्रव, असंवृत, इन्द्रियां और प्रशस्त लेशाएँ—ये सभी परिग्रह होने पर अवश्य होते हैं। अतः ममत्व न होना चाहिये।

१५. रात्री भोजन—संसार में बहुत से त्रस स्थावर प्राणी इतने सूक्ष्म होते हैं कि वे दिखाई नहीं देते, अतः रात्री में दिखाई न देने के कारण रात्री में भोजन नहीं करना चाहिये।

१६. भ्रमर वृति—भ्रमर वृक्ष के पुष्पों से इस प्रकार रस पान करता है, कि फूलों को जरा भी पीड़ा नहीं होती और तृप्त हो जाता है।

१७. मृग चर्या—साधु मृग जैसी चर्या वाला होता है उसे गोचरी में यदि अमनोज्ञ आहार भी मिले तो उसकी अवहेलना एवं दाता की निन्दा न करनी चाहिये।

१८. सच्चा त्यागी—जो पुरुष मनोज्ञ एवं प्रिय भोगों को ठुकरा देता है, स्वाधीन भोग सामग्री का त्याग करता है, वही त्यागी कहा जाता है।

१९. वमन किये हुये को ग्रहण करना—धन और स्त्री का त्याग कर दीक्षित होकर और जो इनको पुनः पान करना और प्रमाद करना यह वमन किये हुये माने जाते हैं।

२०. पूजा प्रशंसा का त्याग—अर्चा, पूजा, वन्दना, नमस्कार, ऋद्धि, सत्कार और सम्मान इनकी मन में इच्छा न करनी चाहिये।

२१. रति अरति—जो पुरुष स्वाध्याय, संयम, तप, वैयावृत्य तथा धर्म ध्यान में रत रहता है और संयम में विरत रहता है वह मोक्ष प्राप्त करता है।

२२. यतना—यतना धर्म की जननी है और यतना ही धर्म का रक्षण करने वाली है। यतना से तप की वृद्धि होती है और वह सुख देने वाली है।

२३. विनय—अविनीत को विपत्ती प्राप्त होती है और विनीत को सम्पत्ति प्राप्त होती है।

२४. विजय—पांच इन्द्रियाँ, क्रोध, मान, माया, लोभ तथा इनसे अधिक दुर्जय मन को जीतना ही आत्मा की विजय है।

२५. दान—निःस्वार्थ बुद्धि से दान देने वाले और निःस्पृह भाव से दान लेने वाले दोनों ही सुगति में जाते हैं। सभी दानों में अभयदान श्रेष्ट है।

२६. तप—जो अनशन, ऊनोदरी, भिक्षाचर्या, रस परित्याग, काया-क्लेश और प्रति संलीनता, रूप वाह्य, तप एवं प्रायश्चित, विनय, वैयावृत,

स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग रूप आभ्यन्तर तप का सम्यक आचरण करता है वही मुक्त हो सकता है।

२७. अनासक्ति—जो आत्मा, रूप में तीव्र गृद्धि-आसक्ति रखता है वह असमय में ही विनाश प्राप्त करता है।

२८. आत्म दमन—आत्मा को वश में करने से इहलोक और परलोक दोनों जगह सुख प्राप्त होता है।

२९. रसना (जीभ का सयंम)—पौष्टिक रसीला भोजन विषय वासना को शीघ्र ही उत्तेजित करता है। अतः इसका त्याग करना चाहिये।

३०. कठोर वचन—जिस भाषा को सुनकर दूसरों को अप्रीति उत्पन्न हो ऐसी भाषा नहीं बोलनी चाहिये।

३१ कर्मों की सफलता—यह आत्मा अपने कर्मों के अनुसार कभी देव-लोक में, कभी नरक में कभी असुरों में उत्पन्न होती है।

३२. काम भोगों की असारता—काम भोग क्षण मात्र सुख देने वाले नहीं हैं और चिरकाल तक दुःख देने वाले हैं। काम भोग मोक्ष सुख के परम शत्रु हैं एवं अनर्थों की खान है।

३३. अशरण—स्त्री, पुत्र, मित्र और बंधुजन ये सभी जीते जी के ही साथी हैं मरने पर कोई साथ नहीं चलता।

३४. जीवन की अस्थिरता—मनुष्य जीवन और रूप सौन्दर्य जिनमें आसक्त होकर परलोक की उपेक्षा कर रहे हो, बिजली की चमक के समान चंचल हो।

३५. बैराग्य—यह मानव शरीर असार है व्याधि और रोगों का तथा जरा और मरण से पीड़ित है। इसमें क्षण भर भी आनन्द नहीं पाता।

३६. प्रमाद—मद्य, विषय, कषाय, निन्द्रा और विकथा ये पांच प्रकार के प्रमाद हैं।

३७. राग द्वेष—ये दोनों पाप, पाप कषायों में प्रवृति कराने वाले हैं। इनका निरोध करना चाहिये।

३८. कषाय—जो मनुष्य आत्मा का हित चाहता है उसको क्रोध, मान, माया और लोभ इन चार कषायों को सदा के लिये छोड़ दें।

३९. तृष्णा—धन, धान्य, सोना, चांदी आदि समस्त पदार्थों से परिपूर्ण एवं समग्र विश्व भी यदि एक मनुष्य को दे दिया जावे, तब भी वह सन्तुष्ट नहीं होगा।

४०. शल्य—राग द्वेष से अभिभूत जो मूढ़ प्राणी शल्य सहित मरते हैं वे विविध दुःख रूप शल्यों से पीड़ित होकर संसार रूप अटवी में परिभ्रमण करते हैं

४१. आलोचना—पापी मनुष्य अपने दुष्कृत्यों की आलोचना, निंदा कर पाप से हल्का हो जाता है।

४२. आत्म चिंतन—जो आत्मा पवित्र भावनाओं से शुद्ध है वह सभी दुःखों से छूट जाता है।

४३. क्षमापना—मैं नतमस्तक हो हाथ जोड़कर सब प्राणियों से अपराधों की क्षमा चाहता हुं और उनके अपराधों की मैं क्षमा करता हूं॥

१. सम्मूर्छिम जीवों की उत्पति के चौदह स्थान—

(१) विष्ठा (२) मूत्र (३) कफ (४) सेडा (५) वमन (६) पित्त (७) रस्सी-पयू पीव (८) शोणित (९) शुक्र (१०) सूखे हुये वीर्य आदि के फिर गीले हुये पुद्गल (११) मृतक का कलेवर मुर्दा शरीर (१२) स्त्री पुरुष का संयोग (१३) नगर की मोरियां नालियां (१४) अन्य सब अशुचि के स्थान।

ऊपरोक्त चौदह वस्तुएं जब मनुष्य के शरीर से अलग होने पर अन्तर्मुहूर्त जितने समय में असरंव्यात सम्मूर्छिम जीव उत्पन्न हो जाते हैं और मर

जाते हैं उनका स्पर्श करने से भी असरंव्यात सम्मूर्छिम जीवों की घात होती है। अतः अशुचि स्थानों की यतना की जाय तो द्रव्य और भाव से बहुत लाभ हो सकता है।

१४. जेन धर्म के मूल सिद्धान्तों में से विशेष महत्व पूर्ण :—

१. अहिंसा=सर्व प्राणी, सर्व भूतों, सर्व जीवों, सर्व सत्त्वों को नहीं मारना, न पीड़ित करना, न मारने की वृद्धि से स्पर्श करना, प्राणी मात्र के प्रति संयम, भाव रखना अहिंसा है, अतः प्राणी मात्र पर अनुकम्पा दया रखना।

२. अनेकान्त वाद=अपने ज्ञान द्वारा प्रत्येक पदार्थ के अनेक अर्थ, भाव, सामान्य, विशेष पर्याप्त रुप से प्रति पालन करना ही अनेकान्तवाद सिद्धान्त है।

३. स्यादवाद=स्यादवाद समन्वय करने वाला और शांति का सर्जक है एक वास्तविक अकाढ्य सिद्धान्त हैं, सत्य ज्ञान की कुंजी है, बुद्धि की विषमता को हटा कर समता की ओर ले जाती है। जीवन की जटिल समस्याओं का सही समाधान करने की क्षमता है, सत्य को समझने की सही दृष्टि है। अनेकान्तवाद एवं स्यादवाद को समन्वय से सही दृष्टि से समझने के लिये जैसे वही पुरुष पुत्र के लिये पिताभी है, पत्नि के लिये पति भी है, बहिन के लिये भाई भी है, मालिक के लिये नौकर भी है, भानजे के लिये मामा भी है आदि।

१५. साधुयों को चौदह प्रकार की वस्तुएँ दी जाती है—

(१) अशन-अर्थात् चौवीस प्रकार के धान्य में से जो धान्य उस समय पकाया हो, तला हो, भूंजा हो और जो उस समय उपस्थित हो (२) पान-धोवन पानी, उष्ण पानी, तक्र आछ, शर्बत ईख का रस आदि मोजूद हो (३) खाद्य=पकवान अचित मेवा मिठाई आदि (४) स्वाद्य=

सुपारी, लोंग, चूर्ण आदि (५) वस्त्र=स्वेतवर्ण वाले सन या सूत के (६) प्रतिग्रह=लकड़ी तूंबे या मिट्टी के पात्र (७) कम्बल=ऊन के वस्त्र कंबल बनात आदि (८) पाद प्रोञ्छन=रजोहरण (ओघा) पूंजनी तथा बिछाने के लिए मोटा वस्त्र। यह आठ वस्तुऐं दे दी जाने के बाद फिर वापस नहीं ली जाती हैं अतः उन्हें अपडिहारी कहते हैं। (९) पीठ, आहर पानी रखने के लिए या बैठने के लिए छोटा पाट या चौकी (१०) फलक=शयन करने के लिये बड़ा पाट और पीठ की तरफ लगाने का पाटिया (११) शय्या=रहने के लिए मकान (१२) संस्तारक=वृद्ध तपस्वी या रोगी साधु को बिछाने के लिए गेहूं का, शालीका को द्रव आदि का घास (१३) औषध=सोंठ, हरड़, कालीमिर्च, अचित नमक आदि औषध की वस्तु (१४) वेषज=शत पाक आदि तेल चूर्ण गोली आदि बनी हुई दवा।

. समाधिमरण-संलेखणामरण

जीवन की अन्तिम मरणावस्था के समय अपने परिवार जन से मित्र आदि स्नेह बैर सम्बन्ध परिग्रह (मकान धनादि) से ममत्व हटाकर शुद्ध भावना ा:शल्य होकर अपने अपराधों की क्षमा मांगे और उनके द्वारा अपराध अपने ऊपर हुये हों तो क्षमा करें एवं अपने जीवन के किसी क्षण में अपराध कु-कर्म ादि दुष्प्रवृतियों को याद कर उनकी आलोचना निंदना कर निःशल्य होकर ठारह पाप, चारों आहारों का त्याग कर सब इन्द्रियों के विषयानुमिखता से न को हटाकर अन्तर मुखी होकर परमात्मा के स्मरण का लक्ष्य व ध्यान खना चाहिये, इस साधन से शिव-सुगति प्राप्त हो सकती है।

२ जैन धर्म में नीति दर्शन

१. **उत्तम मंगल**—मंगल चार हैं–अरिहन्त, सिद्ध, साधु और केवल प्ररूपित धर्म। धर्म है—अहिंसा, संयम और तप। पाप कर्म न करना ही वस्तुतः परम मंगल है।

२. **देव-गुरु**—महाव्रत धारी, धैर्यवान, शुद्ध भिक्षा से जीने वाले, संयम मे स्थिर रहने वाले एवं धर्म का उपदेश देने वाले महात्मा गुरु माने गये हैं। जन्म मरण, रागद्वेष नष्ट हो गये—वह देव हैं।

३. **गुरु आज्ञा**—आज्ञा में तप है, आज्ञा में संयम है और आज्ञा में ही दान है। गुरु आज्ञा का पालन करना सब गुणों से बढ़कर है।

४. **पूजा-भक्ति**—वचन और शरीर का संकोच करना द्रव्य पूजा एवं मन का संकोच करना भाव पूजा है। भक्ति कल्याण करने वाली है।

५. **विनय-अनुशासन**—व्रत-विद्या एवं उम्र में बड़ों के साथ (सामने) नम्र आचरण करना विनय है। गुरुजनों की अवहेलना करने वाला कर्म बन्धन-मुक्त नहीं हो सकता है अतः गुरु के अनुशासन में रहना श्रेय कार है।

६. **विद्यार्जन का मार्ग**—अहंकार, क्रोध, प्रमाद, (विषया-सक्ति) रोग और आलस्य इन पांच कारणों से व्यक्ति शिक्षा (ज्ञान) प्राप्त नहीं कर सकता है। विद्या ग्रहण करने वाला व्यक्ति सर्वप्रथम १. सुनने की इच्छा करता हो २. पूछता हो ३. उत्तर को सुनता है ४. ग्रहण करता है ५. तर्क-वितर्क से ग्रहण किये हुये अर्थ को तौलता है ६. तोलकर निश्चय करता है ७. निश्चित अर्थ को धारण करता है ८. फिर उसके अनुसार आचरण करता है।

७. **मानव-जीवन**—संसार में चार बातें प्राणी को बड़ी दुर्लभ है—मनुष्य जीवन, धर्म का श्रवण, दृढ़ श्रद्धा और संयम में प्रवृत्ति अर्थात् धर्म का

आचरण अतः यह चार बाते मानव जीवन में ही प्राप्त होती हैं मनुष्य जीवन मूलघन है।

८. धर्म—जिससे आत्मा की शुद्धि हो, उसे धर्म कहते हैं। जीव दया, सत्य वचन, परधन का त्याग, शील ब्रह्मचर्य, क्षमा पांच इन्द्रियों का निग्रह—ये धर्म के मूल हैं। क्षमा, संतोष, सरलता, और नम्रता ये चार धर्म के द्वार है।

. अहिंसा—ज्ञानी होने का सार यही है कि किसी भी प्राणी की हिंसा न करे। अहिंसा मूलक समता ही धर्म का सार है बस इतनी बात सदैव ध्यान रखनी चाहिए कि किसी के प्रति निर्दयता का भाव रखना वस्तुतः दुःखदायी है।

. सत्य—सत्य समस्त भाव-विषयों का प्रकाश करने वाला है। सत्य ही भगवान है। सत्य यश का मूल कारण है। सत्य ही विश्वास प्राप्ति का मुख्य साधक है।

. अचौर्य—चोरी करना सबसे निकृष्ट कुलक्षण है किसी का धन हरण करने पर उसे तथा उसके पुत्र-पौत्रों को जीवन भर के लिए दुःख होता है। चोरी करने से मानव दुर्भाग्य और दरिद्रता को प्राप्त होता है।

. ब्रह्मचर्य—मैथुन से कँपी-कँपी, स्वेद पसीना, श्रम थकावट, मूर्छामोह, भूमि चक्कर आना, ग्लानी-अंगों का टूटना, शक्ति का विनाश, राज्य क्षमा क्षय रोग तथा अन्य खांसी श्वास आदि रोगों की उत्पत्ति होती है ब्रह्मचर्य श्रेष्ट तप है।

३. अपरिग्रह—अधिक मिलने पर भी संग्रह न करना। आवश्यकता से अधिक एवं अनुपयोगी उपकरण सामग्री रखना क्लेशप्रद एवं दोष रूप हो जाते हैं।

४. अभयव्रत—अभयदान ही सर्वश्रेष्ट दान है। भयभीत व्यक्ति तप और

संयम की साधना छोड़ बैठता है। भयभीत किसी भी गुरुतर दायित्व को नहीं निभा सकता है।

१५. **कषाय**—कषाय (क्रोध-मान-माया और लोभ) को अग्नि कहा है। उस को बुझाने के लिए ज्ञान, शील, सदाचार और तप जल के समान है।

१६. **क्रोध**—क्रोध में अन्धा व्यक्ति पास में खड़ी मां बहन और बच्चे को भी मारने लगता है, एवं सत्य शील और विनय का नाश कर डालता है। क्रोध को जीत लेने से क्षमा भाव जागृत होता है।

१७. **अभिमान**—जाति, लाभ, कुल, ऐश्वर्य, बल, रूप, तप और ज्ञान का मद करता हुआ जीव भवान्तर में हीन जाति आदि को प्राप्त करता है। अभिमान को जीत लेने से नम्रता जागृत होती है।

१८. **माया**—भले ही नग्न रहे, मास-मास का अनशन करे और शरीर को कृश एवं क्षीण कर डाले किन्तु जो अन्दर में दम्भ रखता है वह जन्म-मरण के अनन्त चक्र में भटकता ही रहता है।

१९. **लोभ**—इच्छाएँ आकाश के समान अनन्त है, असीम है। मनुष्य लोभाग्रस्त होकर झूठ बोलता है। लोभ पापों का मूल है, रसासक्ति रोगों का मूल है और स्नेह शोकों का मूल है। इन तीनों को त्याग कर सुखी बनना चाहिए।

२०. **संतोष**—संतोषी साधक कभी कोई पाप नहीं करता जो संतोष के पथ में रमता है वही पूज्य है।

२१. **स्वाध्याय**—सत् शास्त्र को मर्यादा पूर्वक पढ़ना स्वाध्याय है। स्वाध्याय करते रहने से समस्त दुःखों से मुक्ति मिल जाती है।

२२. **सद्गुण अपनाओ**—सज्जन सदा गुणों को ही ग्रहण करते हैं। क्रोध ईर्ष्या-डाह, अकृतज्ञता और मिथ्या-आग्रह इन चारों दुर्गुणों को त्याग देना चाहिये।

. तितिक्षा—मिलने पर गर्व न करे ! न मिलने पर शोक न करे, यही तितिक्षा धर्म है । जो लाभ न होने पर खिन्न नहीं होता है और लाभ होने पर अपनी बड़ाई न करे ।

. मनोबल—संकट में मन को ऊँचा-नीचा अर्थात् डाँवा-डोल नहीं होने देना चाहिये । संसार में अदीन भाव से दीनता रहित होकर रहना चाहिये । शक्ति-शाली जीतता है ।

. सेवा-धर्म—अनाश्रित एवं असहाय जनों को सहयोग एवं आश्रय देने के लिए तत्पर रहना चाहिये । रोगी की सेवा करने के लिये सदा अग्लान भाव से तैयार रहना चाहिये । जो सेवा करता है वह प्रशंसा पाता है लोक उसे पूजते हैं ।

. सत्संग—एकाकी रहने वाल के मन में प्रतिक्षण नाना प्रकार के विकल्प उत्पन्न एवं विलीन होते रहते है अतः सज्जनों की संगति में रहना ही श्रेष्ट है । साधु-पुरुषों का समागम मन से संताप को दूर करता है। आनन्द की वृद्धि करता है और चित्त वृति को संतोष देता है ।

. सदाचार—सब जगह् प्रिय वचन बोलना, दुर्वचन बोलने पर भी उसे क्षमा करना, और सब के गुण ग्रहण करते रहना यह शान्त स्वभावी आत्मा के लक्षण है श्रेष्ठ पुरुष अपने गुणों को सच्चरित्र से प्रकट करते हैं ।

. सद् व्यवहार—जहां भी कहीं क्लेश की सम्भावना हो उस स्थान से दूर रहना चाहिये । मार्ग में जल्दी-जल्दी ताबड़-तोबड़ नहीं चलना चाहिये । मर्यादा से अधिक नहीं हंसना चाहिए । दूसरों का तिरस्कार न करना और अपनी बड़ाई न करना । क्षुद्र लोगों के साथ सम्पर्क, हंसी मजाक, क्रीड़ा नहीं करनी चाहिये ।

१. आहार-विवेक—जो काल, क्षेत्र, मात्रा, आत्मा का हित, द्रव्य की गुरुता-लघुता एवं अपने बल का विचार कर भोजन करता है उसे दवा की जरूरत नहीं रहती ।

३०. **श्रमण धर्म**—जो ज्ञान पूर्वक संयम की साधना में रत है वही सच्चा श्रमण है। समस्त प्राणियों पर समभाव रखना।

३१. **श्रावक धर्म**—पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षा व्रत यों बारह प्रकार का श्रावक धर्म हैं, श्रावक के २१ गुण, गृहस्थ धर्म के ३५ गुण का पालन करता हो।

३२. **वाणी-विवेक**—जो विचार पूर्वक, सुन्दर और परिमित शब्द बोलता है वह सज्जनों में प्रशंसा पाता है। हित-मित, मृदु और विचार पूर्वक बोलना वाणी का विनय है।

३३. **सरलता**—दम्भ रहित, अविसवादी आत्मा ही धर्म का सच्चा आराधक है। करण सत्य-व्यवहार में स्पष्ट तथा सच्चा रहने वाला आत्म आदर्श प्राप्त करता है।

३४. **उद्बोधन**—आयु और योवन प्रतिक्षण बीता जा रहा है। सद्बोध प्राप करने का अवसर बार-बार मिलना सुलभ नहीं है। आलस्य के सा सुख का, निन्द्रा के साथ विद्या का, ममत्व के साथ वैराग्य का औ आरम्भ-हिंसा के साथ दयालुता का मेल नहीं है जो क्षण वर्तमान उपस्थित है वही महत्वपूर्ण है अतः उसे सफल बनाना चाहिये।

३५. **विविध-शिक्षाएँ**—जब तक बुढ़ापा आता नहीं, जब तक व्याधियों क जोर बढ़ता नहीं, जब तक इन्द्रियां क्षीण नहीं होती है, तभी त बुद्धिमान को जो भी धर्माचरण करना हो, कर लेना चाहिये। आपत्ति काल में जैसे अपनी रक्षा की जाती है उसी प्रकार दूसरों की भी रक्ष करनी चाहिये। अर्थयुक्त—सारभूत बातें ही ग्रहण कीजिये, निरर्थव बातें छोड़ दीजिये। मन से कभी भी बुरा नहीं सोचना चाहिये। वचन से कभी भी बुरा नहीं बोलना चाहिये।

३ जैन धर्म में अध्यात्म-दर्शन

१. **आत्म-दर्शन**—बाह्य साधनों में भगवान के सच्चे स्वरूप को नहीं पा सकते है। उनका सच्चा स्वरूप तो आत्मा को पहिचानने में ही है। यही आत्म दर्शन है।

२. **आत्म-स्वरूप**—आत्मा की चेतना शक्ति त्रिकालज्ञ है। समस्त भावों को जानने की क्षमता आत्मा में है। आत्मा नित्य है अविनाशी है एवं शाश्वत है।

३. **मोक्ष मार्ग**—वस्तु स्वरूप को पदार्थ से जानने वाले जिन भगवान ने ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप को मोक्ष मार्ग बतलाया है। मोक्ष में आत्मा अनन्त सुखमय रहता है। उस सुख की कोई उपमा नहीं है और न कोई गणना है।

४. **सम्यग्दर्शन**—स्वयं या उपदेश से जीव-अजीव आदि सद्भावों में, सत-तत्वों में, आन्तरिक-हार्दिक श्रद्धा सम्यक्त्व-सम्यग्दर्शन है। धर्म में स्थिरता, धर्म की प्रभावना, व्याख्यानादि द्वारा, जिन शासन की भक्ति, कुशलता—अज्ञानियों को धर्म समझाने में निपुणता, चार तीर्थ की सेवा—ये पांच मम्यक्त्व के भूषण हैं।

५. **श्रद्धा**—शंका शील व्यक्ति को कभी समाधि नहीं मिलती जिसका आचरण हो सके, उसका आचरण करना चाहिये एवं जिसका आचरण न हो सके, उस पर श्रद्धा रखनी चाहिये। धर्म पर श्रद्धा रखता हुवा जीव भी जरा एवं मरण रहित मुक्ति का अधिकारी होता है।

६. **ज्ञान और ज्ञानी**—ज्ञान मानव-जीवन का सार है। जो स्वयं ज्ञानी है, उसे उपदेश की कोई आवश्यकता नहीं रहती। पहले ज्ञान होना चाहिये, फिर उसके अनुसार दया अर्थात् आचरण।

तपो मार्ग—तपस्या से आत्मा पवित्र होती है । अपना बल, दृढ़ता, श्रद्धा, आरोग्य तथा क्षेत्र काल को देख कर आत्मा को तपश्चर्या में लगाना चाहिये ।

ध्यान साधना—किसी एक विषय पर चित को एकाग्र-स्थिर करना ध्यान है। निर्मल चित्त वाला साधक संसार में पुनः जन्म नहीं लेता है। वीतराग का ध्यान करता हुआ योगी स्वयं वीतराग होकर कर्मों से या वासनाओं से मुक्त हो जाता है ।

कर्म अकर्म—जैसा किया हुआ कर्म, वैसा ही उसका भोग। आत्मा अपने स्वयं के कर्मों से ही बन्धन में पड़ता है। कृत—कर्मो के भोगे बिना मुक्ति नहीं है ।

राग द्वेष—माया और लोभ से राग होता है, क्रोध और मान से द्वेष होता है। जरा-सी खटाई जिस प्रकार दूध को नष्ट कर देती है, उसी प्रकार राग द्वेष का संकल्प संयम को नष्ट कर देता है ।

पुण्य पाप—आत्मा का शुभ परिणाम (भाव) पुण्य है और अशुभ परिणाम पाप है। अच्छे कर्म का फल अच्छा और बुरे कर्म का बुरा होता है ।

मोह—मोह से जीव बार-बार जन्म-मरण को प्राप्त होता है। जो मोह को क्षय करता है वह अन्य अनेक कर्म विकल्पों को क्षय करता है ।

वैराग्य-सम्बोधन—जीवन पानी के बुलबुले के समान और कुशा की नोंक पर स्थिति जल बिन्दू के समान चंचल है। जन्म के साथ मरण, यौवन के साथ बुढ़ापा, लक्ष्मी के साथ विनाश निरन्तर लगा हुआ है। इस प्रकार प्रत्येक वस्तु को नश्वर समझना चाहिये। सन्मार्ग का तिरस्कार करके अल्पवैषयिक सुखों के लिए अनन्त मोक्ष सुख का विनाश मत करो ।

२२. **वीतरागता**—वीतराग भाव की साधना से स्नेह (राग) के बन्धन औ तृष्णा के बन्धन कट जाते हैं। जो विषय–भोगों से निरपेक्ष रहते हैं संसार-वन को पार कर जाते हैं।

२३. **तत्त्व दर्शन**—जैन दर्शन में न एकान्त भेदवाद मान्य है और न एका अभेदवाद (अत: जैन दर्शन भेदा-भेद वादी है) विश्व का प्रत्येक पदा प्रतिक्षण उत्पन्न भी होता है, नष्ट भी होता है, साथ ही नित्य रहता है।

२४. **सार्थक परिभाषाएँ**—समता से श्रमण, ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण, ज्ञान से मु और तपस्या से तापस कहलाता है। कर्म से ही ब्राह्मण होता है, कर्म ही वैश्य होता है और कर्म से ही शूद्र होता है।

२५. **गुच्छक**—१—कुछ व्यक्ति सेवा आदि महत्वपूर्ण कार्य करते हैं किन्तु उस अभिमान नहीं करते। कुछ अभिमान करते हैं किन्तु कार्य नहीं करते कुछ कार्य भी करते हैं, अभिमान भी करते हैं। कुछ न कार्य करते न अभिमान ही करते हैं।

२—रोग होने के नौ कारण हैं—(१) अति भोजन (२) अहित भोज (३) अति निन्द्रा (४) अति जागरण (५) मल के वेग को रोकना (मूत्र के वेग को रोकना (७) अधिक भ्रमण करना (८) प्रकृति के वि भोजन करना (९) अति विषय सेवन करना।

३—जिसका हृदय भी कलुषित है और वाणी में भी सदा कटु बोलता वह पुरुष विष के घड़े पर विष के ढक्कन के समान है।

सम्यक्त्व पराक्रम का संक्षिप्त परिचय

परिभाषा=साधु जीवन एवं श्रावक जीवन में सच्चे देव गुरु-धर्म एवं तत्व स्वरूप पर सम्यग्ज्ञान (जानना) सम्यग्दर्शन (मानना) सम्यक्चारित्र (आचरण) के द्वारा श्रद्धा रखना सम्यक्त्व है और इनको श्रद्धा रखकर अन्तःकरण में गहराई से उतारने के लिए परिश्रमशील रहना पराक्रम है इन दोनों शब्दों के समन्वय से सम्यक्तत्व-पराक्रम माना गया है, यह इतना महत्वपूर्ण है कि इस (निम्न व्याख्यो)[1] पर सम्यक् करके, प्रतीति करके, रुचि करके, स्पर्श करके, पार करके, कीर्ति करके, संशुद्धि करके, आराधन करके और आज्ञापूर्वक अनुपालन करके अनेक जीव सिद्ध, बुद्ध और मुक्त होकर निर्वाण प्राप्त किया है, होते हैं और भविष्य में होंगे और सब दुःखों का अन्त किया है, करते हैं और भविष्य में करेंगे।

१. संवेग—जो वेग आत्मा को कल्याण के मार्ग पर ले जाता है वही मार्ग संवेग है। सभी जीव सुख के अभिलाषी हैं अतः अपनी बुद्धि, मन तथा इन्द्रियों के वेग को दुष्ट प्रवृत्तियों की ओर जाने को रोक कर शुभ प्रवृत्तियों की ओर खेंचकर सुवेग की ओर बढ़ाना ही संवेग है।

२. निर्वेद—जब जीव संवेग की ओर बढ़ता जायेगा और संसार के विषय वासना (भोग) का त्याग की अभिलाषा करेगा तो निर्वेद हो जायेगा शनैः शनैः निर्वेद से देव, मनुष्य और तिर्यंच सम्बन्धी काम भोगों में शीघ्र ही उदासीनता आती जायेगी और विषयों में विरक्ति आयेगी आरम्भ का त्याग करके संसार के मार्ग को रोक देता है और मोक्ष मार्ग की ओर आरूढ़ हो जायेगा।

---

१ सम्यक्त्व—पराक्रम की विशेष व्याख्या आचार्य श्री जवाहर लालजी म० सा० के प्रवचनों में करी जिसका विवरण जवाहर किरणावली भाग ८ से १२ तक में मिलेगा यह संकलन उसी के आधार पर किया है।

३. धर्म श्रद्धा—संवेग से निर्वेद उत्पन्न होता है और निर्वेद से धर्म श्रद्धा उत्पन्न होती है, सांसारिक सुखों के पीछे दुःख ही दुःख है यह प्रतीत होने पर धर्म पर श्रद्धा उत्पन्न होगी। अहिंसा, संयम और तप रूप धर्म सदा मंगलमय है कल्याणकारी है। सम्यग्ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक्चारित्र रूप धर्म सब जीवों के कल्याण के लिये ही है। अतः धर्म का फल विषय सुखों के प्रति अरुचि होना है जब विषय सुखों के प्रति अरुचि उत्पन्न हो, समझना चाहिये कि हमारे अन्तःकरण में धर्म के प्रति सच्ची श्रद्धा उत्पन्न हो गई।

४. गुरु-सधार्मिक-शुश्रूषा—जिसमें धर्म के प्रति सच्ची श्रद्धा होगी वही गुरु और सधर्मी की सेवा कर सकता है। जिसमें ज्ञान और क्रिया दोनों ही है वही गुरु है और गुरु महाव्रतों का पालन करते हैं और श्रावक अणुव्रतों का पालन करते हैं इस प्रकार दोनों को लोकोत्तर धर्म में आपस में सहयोग रहने कारण सहधर्मी श्रावक माने गये। अतः गुरु और सहधर्मी की सेवा शुश्रूषा विनीतता उत्पन्न होती है। विनय युक्त जीव अनासातनाशील होता अनासातनाशील जीव नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव की दुर्गति से बच जा है और जगत में यशकीर्ति पाता हुआ अनेक गुण प्राप्त करता है तथा मनु देवगति पाता है।

५. आलोचना—निष्कपटता पूर्वक अपने (स्वयं) से किसी प्रका अनुचित कार्य, त्रुटियां अपराध हो गये हों उनको अपने गुरु माता-पित धर्माचार्य के सन्मुख प्रकट कर निशल्य होकर आलोचना (ऐसी त्रुटियां व क्षमा याचना) करनी चाहिये जिससे हृदय में शुद्ध भावना जागृत होक भविष्य में ऐसा करने का साहस न होगा।

६. आत्म निंदा—आत्म दोषों की निंदा करने से पश्चाताप की भावन जागृत होकर दोष नष्ट होंगे और वैराग्य की भावना का उदय होक सम्यग्ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूप सच्चे सुख की प्राप्ति होगी।

७. गर्हा (ग्रहणा)–आत्म निंदा स्वयं मन में करता है और अपने अवगुणों को दुसरों के समक्ष प्रकट करने का नाम गर्हा है ऐसा करने से निर्भयता पूर्वक अपने दोषों का त्याग कर अभिमान पर विजय प्राप्त कर सकता है और अपनी आत्मा का कल्याण करने में समर्थ होगा।

८. **सामायिक**—आत्म कल्याण सामायिक द्वारा समभाव उत्पन्न होने से होगा। समभाव आने पर तप नियम संयम आदि सफल होंगे, क्रोध, मान, माया, लोभ से निवृत होकर भगवान की स्तुति करने पर ध्यान जावेगा।

६ **चर्तुविशतिस्तत्र**—चौवीस तोर्थंकरों की स्तुति से दर्शन विशुद्धि होगी, सम्यक्त्व निर्मल होगा, मोह मिथ्यात्व का विनाश होगा, श्रद्धा बढ़ेगी।

१०. **वंदना**—स्तुति (प्रार्थना) के समय वंदना नमस्कार भी करनी चाहिये जिससे नीच गौत्र का क्षय होगा, उच्च गौत्र का बंध होगा, सौभाग्य की प्राप्ती होगी। वन्दन करने वाला पराजित नही होगा। आज्ञानुसार आज्ञा को लोप नहीं सकता। होशियारी एवं जनप्रिय होगा। पूर्ण शान्ति प्राप्त होगी और आत्म कल्याण होगा।

११. **प्रतिक्रमण**—अशुद्ध भावों को प्रतिक्रमण द्वारा शुद्ध भावों में प्रणित कर सकते है और व्रतों के अतिचार (दोष) से मुक्त हो सकते हैं चरित्र भी निर्मल होगा। आत्मा पापों से बचने में सावधानी बढ़ेगी।

१२. **कायोत्सर्ग**—प्रतिक्रमण करते समय आत्मा को व्रतों में अतिचार (दोप) लगे का ज्ञान होता है, तो उन दोषों का ज्ञान होता है तो उन दोषों को निवारण करने के लिये कायोत्सर्ग करने से भूतकाल और वर्तमान काल के अतिचारों का प्रायश्चित द्वारा विशुद्ध हो सकता है। काय के प्रति ममता भाव का त्याग करता है वही कायोत्सर्ग है और इससे दुःख नही रह पाता।

१३. **प्रत्याख्यान**—कायोत्सर्ग करने पर अतीतकाल के पापों की शुद्धि होती है और प्रत्याख्यान से भविष्य के पाप रुकते हैं अहिंसा, सत्य, अचौर्यसत्य, ब्रह्मचर्य और परिग्रह की मर्यादा करना। नवकारसी, चौदह नियम आदि का

प्रत्याख्यान करने से आत्मा तृष्णा आदि के संताप से बच जायेगा और सुख शांति का लाभ करेगा।

१४. स्तव स्तुति मंगल—परमात्मा की प्रार्थना हृदय का अज्ञान मिटाने के लिये ही करी जाती है, ज्ञान दर्शन चारित्र रूपी बोध होगा तथा आराधना से मोक्ष प्राप्त होगा। प्रार्थना निष्कपट भाव से करनी चाहिये।

१५. काल प्रति लेखन—जिस काल में जो कार्य करने योग्य है वह उसी समय करना चाहिये, कालानुसार प्रतिक्रमण स्वाध्याय आदि करने से ज्ञानावर्णीय कर्म का क्षय होगा।

१६. प्रायश्चित— पापों का प्रायश्चित करने से हृदय में विशुद्धी होगी, कल्याण मार्ग की ओर बढ़कर चारित्र शुद्धि होगी। मोक्ष का आराधन कर सकता।

१७. क्षमापण—प्रायश्चित करते समय अपने द्वारा किसी प्राणी क हृदय दुःखाया हो, उसका ज्ञान हो जाता है उससे क्षमा मांगकर अपनी भावना विशुद्ध कर लेने पर चित्त पर प्रसन्नता, मित्रता का भाव उत्पन्न होगा और अन्त में निर्भय बन जाता है। सच्ची क्षमापणा से परमात्मा के सच्चे आराधक होंगे।

१८. स्वाध्याय—स्वाध्याय से ज्ञानावर्णीय आदि कर्मों का क्षय होता है।

१९. वाचना—शास्त्र वाचन से कर्म की निर्जरा होगी, शास्त्र वाचनकार तथा श्रवणकार दोनों को ज्ञान प्राप्त होगा। ज्ञान से पापों की निर्जरा होगी।

२०. प्रति पृच्छना—शास्त्र वाचना में कई प्रकार की शकाएँ होना स्वाभाविक है, अतः शास्त्रचर्चा करके पूछताछ करनी चाहिये, सूत्र अर्थ सूत्रार्थ का विशोधन होगा और मोहनी कर्म का क्षय कर निशंक बन जाने पर आत्म कल्याण कर सकता है।

सम्यक्त्व पराक्रम—संसार में प्राणियों को चार वस्तुएँ मिलना दुर्लभ है—(१) मनुष्यत्व (२) धर्मश्रवण (३) धर्म श्रद्धा (४) संयम में पराक्रम। सर्व प्रथम वीतराग देव निर्ग्रंथ गुरु और केवलि प्ररूपित धर्म पर श्रद्धा करना यही कल्याण का मार्ग है।

२१. **परिवर्तना**—वार-वार सूत्र की आवृति (याद) करने से विस्मृत अक्षर याद हो जाते है और इससे जीव को अक्षर लब्धि (ज्ञान) और पदानुसार ज्ञान प्राप्त हो जाता है जैसे हथियार घिसते रहने से तीखा रहता है उसी प्रकार सूत्र विद्या की आवृति करते रहने से विद्या भी तीक्ष्ण रहेगी।

२२. **अनुप्रेक्षा**—सूत्रार्थ के चिन्तन करने से बुद्धि और विवेक में जागृति आती है। चिन्तन मनन करने से जीवात्मा अनादि, अनन्त दीर्घ मार्ग वाले अपार चतुर्गति रूप संसार-अरण्य को शीघ्र ही पार कर सकता है अतः मन को बुराई की ओर न जाने देना और मन को अनुप्रेक्षा (चिन्तन) करने में लगाने से आत्मा कल्याण साधना के मार्ग में अग्रसर होता जायेगा।

२३. **धर्म कथा**—धर्म कथा से निर्जरा होगी और शुभ कर्म बन्ध जाता है। जो भगवान के सिद्धान्तों का प्रवचन की प्रभावना करता है वही धर्म कथा है।

२४. **श्रुत की आराधना**—वाचना पृच्छना परावर्तना अनुप्रेक्षा और धर्म कथा इस प्रकार पांच तरह का स्वाध्याय करने से सूत्र की आराधना होती है और श्रुत आराधना से अज्ञान दूर होगा और संक्लेश नहीं होगा। ज्यों-ज्यों आराधना करेंगे त्यों-त्यों भावों की उत्पति होगी, आनन्द आयेगा वैराग्य की भावना जागृत होगी।

२५. **मानसिक एकाग्रता**—सूत्र की आराधना के लिये मन की एकाग्रता होना आवश्यक है। परमात्मा का भजन करने पर मन की चंचलता दूर होगी। अच्छे बुरे काम मन संकल्प-विकल्प से होते है अतः मन स्थिर रखना चाहिये।

२६, **संयम**—जिसका मन एकाग्र होगा, उसी को संयम शोभायमान होगा। पांच आश्रवों को रोकना, पांच इन्द्रियों को जीतना, चार कषयों क्षय करना और मन वचन तथा काय के योग का विरोध करने पर संयम होता है। संयम इस लोक में तथा परलोक में भी आनन्ददायक है।

२७. **तप**—तप करने से पूर्व कर्मो का क्षय होता है तप मानसिक, वाचिक और कायिक तीन प्रकार से होता है तप आत्मा को सब पापों से अलग करता है, ब्रह्मचर्य श्रेष्ट तप है, अनशन तप भी उत्तम है।

२८. **व्यवदान**—(कर्मक्षय) तपश्चर्या करने से पूर्व संचित कर्मो का क्षय होता है। व्यवदान जीवात्मा सब प्रकार की क्रिया से रहित होता है और फिर सिद्ध बुद्ध मुक्त होता है, परिनिर्वाण को प्राप्त होकर सब दुःखों का अन्त करता है। व्यवदान करने से जीव अक्रिया अवस्था प्राप्त करता है।

२९. **सुखसाता**—पूर्व संचित कर्मों का नाश करने से सुखसाता उत्पन्न होती है और संयम में शांति आती है। सुखसाता अथवा सुख शय्या से जीव को मन में अनुत्सुकता उत्पन्न होती है, अनुत्सुकता से जीव को अनुकम्पा होती है, अनुकम्पा से निराभिमानता होती है। निराभिमानता से जीव शोकरहित होता है।

३०. **अप्रतिबद्धता**—अप्रतिवद्धता का अर्थ है किसी भी पदार्थ के प्रति आसक्ति न रखना। अनासक्ति से जीव निःसंग अर्थात रागद्वेष ममत्व से रहित होता है और निःसग होने से उसका चित्त दिन-रात धर्म ध्यान में एकाग्र रहता है और एकाग्र होने से वह अनासक्त होकर अप्रतिवद्ध विचरता है। आत्मा को अप्रतिबद्ध बनाने के लिये एकाग्रतापूर्वक परमात्मा का ध्यान करना चाहिये।

३१. **विवित्त शयनासन**—स्त्री आदि के संसर्ग रहित शयन और आसन का सेवन करने से चरित्र की रक्षा होगी, चरित्रशील बनने से जीव आहार सम्बन्धी आसक्ति त्याग कर चरित्र में दृढ़ होता है।

३२. विनिवर्तना=विविक्त शयन और आसन का सेवन करने वाले व्यक्ति को सर्व प्रथम विषय वासना से विमुख होना चाहिये । विनिवर्तन अर्थात विषय संबंधी विरक्ति से नवीन पाप कर्म नहीं होते पहले के बंधे हुये दब जाते हैं, हिंसा असत्य चोरी आदि पाप कर्म नहीं होंगे ।

३३. संभोग प्रत्याख्यान—संभोग का प्रत्याख्यान करने से जीव परावलम्बन का क्षय करता है। जो आनन्द स्वतंत्रता में है, वह परतंत्रता में नहीं । वतंत्रता की भावना से दूसरों पर अनुकम्पा आयेगी और स्व-पर का कल्याण ो सकेगा ।

३४. उपाधि प्रत्याख्यान—उपाधि का त्याग करने से जीव उपकरण रने उठाने की चिंता से मुक्त हो जाता है और स्वाध्याय ध्यान चिन्तन में शिचत रहने वाला होकर उपाधि के अभाव में शारीरिक या मानसिक क्लेश नुभव नहीं करता ।

३५. आहार प्रत्याख्यान—आहार का त्याग करने से आत्म जीवन की लसा नष्ट हो जाने के कारण आहार के अभाव में खेद नहीं पाता ।

३६. कषाय प्रत्याख्यान—आत्मा के सामर्थ्य को विकसित करने के ये त्याग करने की आवश्यकता रहती है। कषाय के त्याग करने से वीतराग त्पन्न होता है और वीतराग भाव को प्राप्त जीव के लिये दुःख और सुख मान बन जाते हैं ।

३७. योग प्रत्याख्यान—मन वचन और काय के व्यापार का त्याग करने जीव नवीन कर्मों का बंध नहीं करता और बंधे हुये कर्मों को दूर कर ता है ।

३८. शरीर प्रत्याख्यान—शरीर के प्रत्याख्यान (त्याग) से जीव सिद्ध के अतिशय (उच्च) गुण भाव को प्राप्त करता है और सिद्ध हो जाता है। शरीर रूपी वस्त्र त्याग करते समय बदलते समय अन्य वस्तुओं के समान

छोड़कर जाना पड़ता है उसी प्रकार शरीर छोड़ता हूं, आत्मा अजर अमर है यह ज्ञान हो जाय तो कल्याण अवश्य होगा।

३९. **सहाय प्रत्याख्यान**—शरीर का त्याग करने के लिये आत्मा को परावलम्बन का त्याग करके स्वावलम्बी बनाना चाहिये, सहायता के त्याग करने पर एकत्व भाव होकर अल्प कषायी, अल्प कलेशी, तथा अल्पभाषी होकर संयम संवर तथा समाधि में अधिक दृढ़ होगा।

४०. **भक्त प्रत्याख्यान**—भक्त का सीधा अर्थ भोजन है, भोजन का प्रत्याख्यान करने से जीव सैकडों भवों को काटकर अल्प संसारी बनता है।

४१. **सद्भाव प्रत्याख्यान**—सदभाव प्रत्याख्यान से समस्त योगों को रोककर क्रिया का त्यागी बनकर अनिवृति भाव प्राप्त करता है अर्थात शुक्ल ध्यान पाकर वेदनी, आयु, नाम तथा गौत्र कर्म क्षय करके सिद्ध बुद्ध मुक्त हो तथा परिनिर्वाण को प्राप्तकर समस्त दुःखों का अन्त करता है।

४२. **प्रतिरूपता**—जीव प्रतिरूपता (लघुता) निशिवनंतता-पाता है। प्रशस्त तथा प्राकृतिक लिंग धारण करता है तथा निर्मल सम्यक्त्वी और समिति सहित बनता है और सब जीवों का विश्वास पात्र जितेन्द्रीय तथा विपुल तपश्चर्या से युक्त भी बनता है, स्थविर कल्पी का आदर्श वेष धारण करने से जीव में हल्कापन-लघुता आ जाती है।

४३. **सेवा वैया वृत्य**—वैयावृत्य से तीर्थंकर नाम गोत्र का कर्म का वंध होता है। सेवा दस प्रकार की है। (१) आचार्य की सेवा (२) उपाध्याय की सेवा (३) स्थविर की सेवा (४) तपस्वी की सेवा (५) शिष्य की सेवा (६) ग्लान-रोगी की सेवा (७) गण की सेवा (८) कुल की सेवा (९) संघ की सेवा (१०) सहधर्मी की सेवा।

४४. **सर्वगुण सम्पन्नता**—ज्ञान आदि सर्व गुणों की प्राप्ति होने से संसार में फिर नहीं आना पड़ता और फिर नहीं आने से जीव शारीरिक और मान-

सिक दुःखों से मुक्त हो जाता है।

४५. वीतरागता—वीतरागता से स्नेह तथा तृष्णा के बन्धन छेद डालता है, तथा मनोज्ञ और अमनोज्ञ, शब्द रूप गंध रस स्पर्शः आदि विषयों में वैराग्य आता है। राद्वेष के त्यागी को वीतराग कहते हैं। सम भाव रखने से कल्याण होगा।

४६. क्षमा—जीवन में जब वीतराग भाव प्रकट होता है तब क्षमा गुण प्रकट होता है। क्षमा द्वारा जीव परीषहों पर विजय प्राप्त करता है।

४७. अलोभ वृति—जहां निर्लोभता है, वहाँ निर्भयता है। जीवन में निर्लोभ वृति आ जायगी तो धन आदि के लिये अर्थ लोलुप लोगों से प्रार्थना भी नहीं करनी पड़ेगी।

४८. ऋजुता—ऋजुता जीव आत्मा काय की सरलता भाव की सरलता, भाषा की सरलता तथा तीनों योगों की सरलता प्राप्त करता है। आत्मा जब मन वचन काय से सरल बनता है तब धर्म का आराधक बनता है।

४९. मृदुता—(निराभिमानता नम्रता) जिसमें नम्रता होती है वही विनयशील व्यक्ति होगा और सद्‌गुण प्राप्त कर सकता है। नम्रता है वही परमात्मा को सुहाता है, सरल और नम्र होने पर स्व-पर का कल्याण होता है।

५०. भाव सत्य (शुद्ध अन्तःकरण) आत्मा ही धर्म का आराधन कर सकता है।

५१. करण सत्य (सत्य प्रति करने) से सत्य की शक्ति उत्पन्न होती है। सत्यता आने पर कार्य भी बराबर सिद्ध होगा।

५२. योग सत्य—काया की सरलता, भाषा की सरलता और मन वचन काय के योगों में सरलता का नाम सत्य है।

५३. **मनोगुप्ति**—(मन के संयम) से जीवात्मा में एकाग्रता उत्पन्न होकर संयम आराधक बन सकता है, तत्पश्चात दुःख भी सुख में परिणत हो सकता है।

५४. **वचनगुप्ति**—वचन पर अकुंश रखने से बहुत सा कलह शांत हो सकता है। वचन बाण तलवार से भी विशेष हानिप्रद होता है।

५५. **कायगुप्ति**—कायागुप्ति से जीव को संवर प्राप्त होकर पाप कर्मों का विरोध करने में समर्थ हो जाता है।

५६, ५७, ५८. **मन वचन काया समाधि**—मन की समाधि से एकाग्रता, एकाग्रता से ज्ञान की प्राप्ति, ज्ञान से सम्यक्त्व की विशुद्धि होकर आत्मा कल्याणकारी बन जायेगा। वचन की समाधि में निर्मलता आयेगी। निर्मलता से कामया को समाधि में सुचारित्रता आकर जीवात्मा सिद्ध बुद्ध मुक्त तथा शांत होकर सब दुःखों का अन्त कर सकता है।

५९, ६०, ६१. **ज्ञान दर्शन चारित्र सम्पन्नता**—सुचारित्र से ज्ञान प्राप्त होगा, ज्ञान सम्पन्नता होकर दर्शन से पाप-पुण्य की परिभाषा समझकर स्व-पर का कल्याण कर सकता है। चरित्र सम्पन्नता से चरित्र बल बढ़ेगा, निश्चय भाव प्राप्त कर सकता है।

६२, ६३, ६४, ६५, ६६. **इन्द्रिय निग्रह**—ज्ञान दर्शन चरित्र से श्रोतेन्द्रिय, चक्षुइन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, स्पर्शन इन्द्रिय, रसना इन्द्रिय को अपने काबू में करना। स्वयं इन्द्रियों के वश में न होना इन्द्रिय निग्रह है। निग्रह से स्वर्ग मिलता है, निग्रह न करने से नरक मिलता है, आत्म विजय का अमोघ साधन है।

६७, ६८, ६९, ७०. **क्रोध, मान, माया, लोभ पर विजय**—क्रोध के विजय से क्षमा, मान के विजय से नम्रता, माया के विजय से सरलता, लोभ के विजय करने से संतोष, इन सब पर विजय करने से मनुष्य जन्म की सार्थकता और सरलता है।

७१. **रागद्वेष मिथ्या दर्शन**—इन पर विजय से ज्ञान दर्शन चारित्र की आराधना से उद्यमी होकर आठों कर्मों का क्रमवार क्षय कर सकता है और वीतराग बन सकता है।

७२, ७३. निष्कर्मता—पुरुषार्थ के बिना कार्य की सिद्धि नहीं होती। उत्थान, बल, वीर्य, पुरुषाकार, तथा पराक्रम करने से सिद्धगति प्राप्त हो सकती है।

गृहस्थ जीवन का धर्म, आचार-विचार एवं व्यवहारिक कार्य का संक्षपे परिचय

१- गृहस्थ धर्म के ३५ नियम

१. न्याय-नीति से धन उपार्जन करने वाला होना चाहिये।

२. शिष्ट पुरुषों के आचार की प्रशंसा करने वाला होना चाहिये।

३. अपने कुल और शील में समान, भिन्न गौत्र वाला के साथ विवाह सम्बन्ध करने वाला होना चाहिये।

४. पापों (अन्याय) से डरने वाला होना चाहिये।

५. प्रसिद्ध देशाचार (देश भक्त व प्रेमी) का पालन करना चाहिये।

६. किसी की और विशेष रूप से राजा आदि की निन्दा नहीं करनी चाहिए (इससे वैर बढ़ता है)।

७. ऐसे स्थान पर घर बनाना जो न एक दम खुला हो और न एकदम गुप्त हो, अच्छे पड़ौसी होने चाहिये।

८. सुरक्षा का ध्यान रख कर, घर के द्वार अनेक नहीं होने चाहिये।

९. सदाचारी पुरुषों की संगति करने वाला होना चाहिये।

१०. माता-पिता की सेवा-भक्ति करने वाला होना चाहिये।

११. रगड़-झगड़ और बखेड़ पैदा करने वाली जगह से दूर रहें अर्थात चित्त में क्षोभ उत्पन्न करने वाले स्थान से दूर रहना चाहिये।

१२. किसी भी निन्दनीय काम में प्रवृति न रखनी चाहिये।

१३. आय के अनुसार खर्च करना चाहिये।

१४. अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार वस्त्र पहनना चाहिये।

१५. बुद्धि के आठ गुणों से युक्त होकर प्रतिदिन धर्म श्रवण करना चाहिये।

१६. अजीर्ण होने पर भोजन न करना चाहिये।

१७. नियत समय पर संतोष के साथ भोजन करना चाहिये।

१८. धर्म के साथ अर्थ-पुरुषार्थ, काम—पुरुषार्थ, और मोक्ष-पुरुषार्थ का इस प्रकार सेवन करें कि कोई किसी का बाधक न हो।

१९. अतिथि, साधु और दीन असहाय जनों का यथायोग्य सत्कार करना चाहिये

२०. कभी दुराग्रह के वशीभूत नहीं होना चाहिये।

२१. गुणों का पक्ष-पाती हो—जहां कहीं गुण दिखाई दे उन्हें ग्रहण करे औ उनकी प्रशंसा करे।

२२. देश और काल के प्रतिकूल आचरण नहीं करना चाहिये।

२३. अपनी शक्ति और अशक्ति को समझे। अपने सामर्थ्य का विचार करके किसी काम में हाथ डाले, सामर्थ्य न होने पर हाथ न डालना चाहिये।

२४. सदाचारी पुरुषों का तथा अपने से अधिक ज्ञानवान् पुरुषों की विन भक्ति करनी चाहिये।

२५. जिनके पालन–पोषण करने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर हो उनका पाल पोषण करना चाहिये।

२६. दीर्घदर्शी हो अर्थात् आगे पीछे विचार करके कार्य करना चाहिये।

२७. अपने हित-अहित को समझे, भलाई बुराई को समझना चाहिये।

८. लोकप्रिय हो अर्थात् अपने सदाचार एवं सेवा-कार्य के द्वारा जनता से प्रेम सम्पादित करना चाहिये ।
९. कृतज्ञ हो अर्थात् अपने प्रति किये हुए उपकार को नम्रतापूर्वक स्वीकार करना चाहिये ।
१०. लज्जा शील हो-अर्थात् अनुचित कार्य करने में लज्जा का अनुभव करना चाहिये ।
११. दयालु होना चाहिये ।
१२. सौम्य हो, चहरे पर शान्ति और प्रसन्नता झलकनी चाहिये ।
१३. परोपकार करने में उद्यत रहना एवं । दूसरों की सेवा करने का अवसर आने पर पीछे नहीं हटना चाहिये ।
१४. काम क्रोधादि आन्तरिक ६ शत्रुओं को त्यागने में उद्यत रहना चाहिये ।
१५. इन्द्रियों को वश में रखना । मन और इन्द्रियों पर संयम करने का अभ्यास करना और इन पर विजय प्राप्त का प्रयत्नशील रहना चाहिये ।

२—श्रावक के २१ गुण

१. उदार हृदयी वाला होना चाहिये
२. यशवन्त होना चाहिये
३. सौम्य प्रकृति वाला होना चाहिये
४. लोकप्रिय कारी होना चाहिये
५. अक्रूर प्रकृति वाला होना चाहिये
६. पाप भीरू होना चाहिये
७. धर्म श्रद्धावान होना चाहिये
८. चतुराई युक्त होना चाहिये
९. लज्जावान होना चाहिये
१०. कृतज्ञ होना चाहिये
११. दयावन्त होना चाहिये
१२. समदृष्टि होना चाहिये
१३. गम्भीर-विवेकी सहिष्णु होना चाहिये
१४. गुणरागी होना चाहिये
१५. धर्मोपदेशक होना चाहिये
१६. न्याय पक्षी होना चाहिये
१७. शुद्ध विचार होना चाहिये
१८. मर्यादा युक्त होना चाहिये
१९. विनयशील होना चाहिये
२०. परोपकारी होना चाहिये
२१. सत्कार्य में सदा सावधान हो ना चाहिये

३ पति द्वारा पत्नी का सम्मान कैसा हो ?

१. पत्नी को सम्मान देना चाहिये ।

२. घर में पत्नी का अपमान नहीं होना चाहिए ।

३. एक पत्नीव्रत का पालन करना चाहिये ।

४. गृह की व्यवस्था पत्नी को सौंप देनी चाहिये ।

५. पत्नी के लिये वस्त्र आभूषण की यथाशक्ति कमी नहीं होनी चाहिये ।

६. पत्नी कदाचित असन्तुष्ट होकर अप्रसन्न रहे तो प्रेम से समझाना चाहिये—किन्तु क्रोधित होकर अपशब्द कहना, गालियां देना, मारपीट आदि नहीं करना चाहिए ।

७. पत्नी के संग सदा सत्य का व्यवहार करना तथा झूंठ विश्वास घात, कपट आदि नहीं करना चाहिये ।

८. पत्नी में किसी प्रकार के अवगुण हों तो शांतिपूर्वक विवेकता से समझा कर अवगुण दूर करने चाहिये एवं पत्नी की निंदा किसी भी दिशा में नहीं करनी चाहिये ।

९. पत्नी के दुःख को अपना दुःख समझकर दूर करना चाहिये किन्तु लापरवाही रखकर मुख नहीं मोड़ना चाहिये ।

१०. पत्नी को अपनी अर्द्धांग्नि समझना चाहिये किन्तु दासी समझकर अनादर नहीं करना चाहिये ।

११. पत्नी के माता-पिता भाई आदि परिवारजनों से सन्मान सत्कार प्रेम का व्यवहार रखना चाहिए निंदा अनादर नहीं करना चाहिये ।

१२. पत्नी को व्यापार सम्बन्धी भेट नहीं देना चाहिए क्योंकि नारियों के मन संकीर्णता के कारण चर्चा करने का भय रहता है ।

१३. पत्नी द्वारा घर का भोजन सम्बन्धी सामग्री यथा-समय मंगाने पर यथा-शक्ति समय पर शीघ्र भेज देनी चाहिये क्योंकि कभी भी कमी के कारण प्रतिष्ठा जाने का अन्देशा हो जाता है ।

४ पत्नी के द्वारा पति का सम्मान कैसा हो ?

१. पति को प्रतिदिन सुख पहुँचाना अप्रसन्न नहीं होने देना चाहिये ।

२. पति को क्लेश, दुःख, अशान्ति नहीं होने देनी चाहिये, यदि हो जाय तो उसका उपाय कर दूर करने का यत्न करना चाहिये ।

३. पति कदाचित् क्रोध करे तो नम्र-मधुर वचन एवं विनयपूर्वक उत्तर देकर समझाना किन्तु स्वयं क्रोधित नहीं होना चाहिये ।

४. यदि किसी कारण पति तुम्हारा अनादर करे, तो निरादर का कारण मालुम कर यथायोग्य आदरपूर्वक समझे और समझाना चाहिये ।

५. तुम्हारे प्रति पति द्वारा अनादर होती हो तो भी अपने द्वारा प्रीत नहीं घटानी, असन्तुष्ट होकर सेवा से मुख नहीं मोड़ना चाहिये ।

६. हर कार्य अपने पति की आज्ञा प्राप्त कर ही करना चाहिए, इच्छा के प्रतिकूल हो तो भी विवेक से काम लेना एवं हटाग्रह नहीं करनी चाहिए ।

७. पति से प्रतिदिन सत्य कपट रहित विश्वासपूर्वक व्यवहार करना, झूंठ धोका देकर काम न करना चाहिये ।

८. पति से चोरी-छल छिद्र-अन्याय का व्यवहार कदापि नहीं करना चाहिये ।

९ पति के अवगुणों को प्रेम वात्सल्य भाव से दूर करने का प्रयत्न करना किन्तु उन अवगुणों की निंदा किसी के समक्ष नहीं करनी चाहिये ।

१०. पति यदि पर स्त्रीगामी हो तो प्रेम विवेक भाव से शांतिपूर्वक समझाये, और हदि सौत हो और उससे विशेष प्रेम रखता हो तो सौत से ईर्षा या द्रोह न करना, प्रेम से रह कर पति की सेवा करते रहना चाहिए ।

११. पति के मित्रों को मित्र एवं शत्रु को शत्रु समझना किन्तु विपरीत होकर पति के भेद को कभी किसी से नहीं कहना चाहिये ।

१२. पति को उनकी इच्छा के विपरीत उत्तर देकर अवहेलना न करना और यदि उत्तर देना हो तो नम्रता-कोमलता-शीतलता से अधीनता होकर निवेदन करना चाहिये ।

१३. पति की निजी वस्तुओं में से कोई भी वस्तु को चुराना, छिपाना विगाड़ना नहीं चाहिये । किन्तु उनको सुरक्षित रखने का ध्यान रखना चाहिये ।

१४. पति के सन्मुख मैली-कुचेली या नाराजगी क्रोधित होकर नहीं जाना स्वच्छ वस्त्र यथा समय आभूषण शृंगार व प्रसन्नचित से जाना चाहिये ।

१५. किसी भी हीन दशा, दुःख, दारिद्र के समय में पति की सेवा से मुख नहीं मोड़ना और दासी की तरह सेवा में लीन रहना चाहिये ।

१६. यदि आप रूपवती हों और पति कुरूप हो तो अपने रूप का गर्व नहीं करना और पति के कुरूप की निंदा नहीं करनी चाहिये ।

१७. पति के सन्मुख अपने गुणों का अभिमान नहीं करना और सेवा में रहना चाहिये ।

१८. पति की सेवा-भक्ति को अधिक महत्व देने से तप तपस्या कर जीवन सुधार सकते हैं पति सेवा परमात्मा की सेवा से अधिक महत्वकारी है ।

१९. पति के साथ एक प्राण-दो देह रखकर रहना, निष्कपट, निर्लोभी अविचल प्रेम रखना, पर पुरुष की इच्छा न रखना, पति के हित का ध्यान रखना, पति की आज्ञा में रहकर स्वयं सेवा सुश्रूषा करना चाहिये ।

५ प्रति-प्रफुल्लित कैसे हो ?

१. हमेशा मुख पर प्रसन्नता झलकती रहनी चाहिये ।

२. वातचीत करते समय मुसकराहट मधुर स्वर से वोलना चाहिये ।

३. घर पर आने पर आदर सत्कार से सन्मुख जाना चाहिये ।

पति के वास्ते स्वयं भोजन बनावे एवं स्वयं ही परोसकर थाली ले जावे और प्रसन्न मुद्रा से बैठ कर जिमाना चाहिये।

जीमने के बाद मुख वास पान सुपारी स्वयं को देना चाहिये।

यथा समय बड़े उमंगहाव-भाव से शृंगार से रह कर चित्त प्रसन्न करना चाहिये।

पति के रति विलास में संतोषपूर्वक रहना चाहिये।

पति के रुचि के अनुसार खेल सीखना और पति के साथ खेलना चाहिये।

पति के अनुसार रुचिपूर्वक मनोहर गीत, कविता आदि का गान करना चाहिये।

पति के साथ मधुरवाणी बोलना, कटुवचन न बोलना व कठोर वचन नहीं कहना चाहिये।

पति के दोषों की निंदा नहीं करनी चाहिये।

पति को प्रत्येक कार्य में उचित सलाह देना चाहिये।

पर पुरुष के संग कभी हँसी-मजाक से बात न करनी चाहिये।

पति द्वारा लगाये दूषणों पर क्रोध न करना और विनयपूर्वक समझावे एवं स्वयं समझे।

पति को धार्मिक साहित्य पढ़कर सुनाना चाहिये।

६ बुद्धि-मती नारियों के कर्त्तव्य !

1. माता पृथ्वी के समान-पालती है और पिता आकाश के समान रक्षा करता है अतः दोनों का आभार मानना एवं आदर, सत्कार, सम्मान करना श्रेष्ठ है।

२. स्वयं से बड़ों का तथा छोटों का यथायोग्य मान सम्मान प्रेमभा दर्शाना उचित है।

३. पिता हो या भाई या अन्य किसी भी पुरुष के साथ एकान्त में बैठक बात-चीत नहीं करनी चाहिये।

४. नारियों को स्वयं ही भोजन का प्रवध अपना आवश्यक धर्म समझ अपने हाथों में रखना यदि घर में रसोईया हो तो भी अपनी देखभा रखना उत्तम होगा।

५. व्यवहारिक शिक्षा—धार्मिक शिक्षा आदि शिक्षाएँ बड़ों से लेनी अं स्वयं से छोटों को शिक्षा देनी चाहिये।

६. घर में किसी कारण अनबन से क्रोधित होकर जोर से चिल्लाकर शब्द बोले जो घर के बाहर के लोग सुनकर हँसी करे। घर के द्वार पलक-पलक में जाकर भी न देखना चाहिये।

७. पति द्वारा या अन्य परिवारजनों ने अनजान नारी, पुरुष या किसी भी घर में आने की मनाई कर दी हो तो उसको नहीं आने देना चाहिये

८. निरर्थक किसी के घर न जाना और इधर-उधर घूमना भी नहीं चाहिये ऐसा होने पर अनादर होता है।

९. अधिक प्रेम-मेल मिलाप वालों के घर पर जाना हो तो जाने के पू घर की सुरक्षा का प्रवंध कर जाना चाहिये। बिना बुलाये बार-बा नहीं जाना चाहिये।

१०. घर पर आये हुये अतिथि (मेहमान) का आदर सत्कार यथायोग्य यथा समयानुसार कर देना चाहिये।

११. वस्त्र ऐसे पहिनने चाहिये जिससे शरीर का अंग न दिखाई देवे, शरीर की रक्षा-लाज सादगी बनी रहे इसके विपरीत चमक-दमक आदि के होने से शील की रक्षा न हो और व्यय भी बिगड़ने का डर रहता है।

युवा अवस्था में सोते समय अंगोपांग खुला रहना स्वाभाविक है अतः जहाँ पुरुष का आवागमन हो या दृष्टि पड़ती हो ऐसे स्थान पर नहीं सोना चाहिये ।

यदि संयोग वश पति या घर के सदस्य कोई भी वस्तु मंगावे तो वह वस्तु घर में न हो तो विवेक से टाल का उत्तर देवे जिससे घर की लाज न जाने पावे ।

घर में रोगियों की सेवा सुश्रूषा तन-मन से करनी चाहिये इससे रोगी का चित्त प्रसन्न रहे ।

कुटुम्ब के माता-पिता सास-सुसर बड़े बूढ़ों से कला सीखना जो संकट के समय अपना पेट पालन करने में सुभीता रहे ।

नारी को कौमारावस्था में पिता के अधीन, यौवन में पति के आधीन और वृद्धावस्था में पुत्र के आधीन रहना श्रेष्ट होता है । किसी भी अवस्था में स्वच्छन्द नहीं रहना चाहिये ।

७. प्रतिदिन प्रातःकाल में माता-पिता, भाई-बहिन सास-सुसर जेठ-जेठानी आदि बड़ों को प्रणाम करना आदर प्रेम भाव दर्शाना और उनका आज्ञानुसार कार्य करना चाहिये ।

१८. प्रतिदिन नीति के ग्रन्थ-पुस्तकें आदि पढ़ने से विशेष अनुभव होगा, दुर्गुण मिटेंगे और कुशलता प्राप्त होगी ।

१९. घर की स्वच्छता—नालियों को मलमूत्र के स्थानों की सफाई का प्रतिदिन पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिये ।

२०. युवक एवं युवति का सम्बन्ध करते समय सात बातों का लक्ष्य रखना चाहिये—(१) कुल (२) शील (३) सनाथता (४) विद्या (५) धन-सम्पति (६) शरीर संगठन और (७) आयु का अनुकूल । इनके विपरीत दुर्भाग्यवश संयोग मिल जावे तो विवेक व सहन-शीलता से काम लेना चाहिये ।

२१. विवाह के पश्चात् अपनी सुसराल में सास-सुसर, देवर-देवरानी, जेठ-जेठानी, ननद-भोजाई आदि से यथायोग्य शिष्ट वर्ताव प्रेम आदर सत्कार से रहने से सब प्रसन्न रहेंगे और उनको निन्दा करने का अवसर न मिलेगा।

२२. मातृ जीवन में गर्भावस्था में गर्भ का पालन पोषण भली भांति करना, उच्च विचार रखना, स्वच्छ भोजन करना, ब्रह्मचर्य पालना। चिन्ता, शोक, भय, हास्य आदि का त्याग कर देना एवं चित प्रफुल्लित रखना। नैतिक शिक्षा की पुस्तकें पढ़ना आदि से सन्तान पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा।

२३. सन्तानोत्पति के पश्चात् सन्तान (शिशु) की रक्षा, पालन पोषण, समय-समय पर दूध वगैरहा की पेशाब टट्टी आदि की सम्हाल रखते रहना और अच्छी-अच्छी शिक्षा देते रहना चाहिये।

२४. सास जीवन अपनी पुत्र वधू से अनादर एवं घृणा नहीं करना, उसको समानाधिकारी मान कर सम्मान रखना, प्रेम का व्यवहार करना, हकूमत नहीं करना, अपनी सहायिका समझना और अपनी उत्तराधिकारणी समझना चाहिये।

उत्तम नारियों के गुण

कुलीना, शीलवती, विवेकनी, दानशीलता, कीर्तिमति सोत्साह, क्लेशसहा, सुरूपा, सुपात्र, रुचि, जितेन्द्रीय, सन्तुष्ट, अल्पाहार, अल्प निद्रा, मित भाषी, उचितज्ञा, जितरोषा, अलोभा, विनयवती सौभाग्यवती, शुशिवेषा, सुखाश्रय, प्रसन्नमुखी, सुप्रभाव शरीरा, स्नेहवती व सुलक्षणवती

७ वैधव्य (विधवा) जीवन कैसा हो ?

संसार में स्त्री पुरुष की जोड़ी के सुख में संयोग-वियोग का चक्र चलता रहता है, दुर्भाग्य से पति के वियोग वैधव्य जीवन बिताना पड़े तो वह जीवन विरक्त दशा का सूचक है अतः उस जीवन को कैसे बिताना है। उसके सूक्ष्म नियम इस प्रकार—

१. वस्त्रा-भूषण साज-शृंगार आदि त्याग कर सादगीपूर्ण जीवन बिताना चाहिये। ऐसा नहीं करने पर निन्दा होगी।

२. सुसराल या पीयर जहां कहीं भी सुख कर हो वहां पर उनकी संरक्षता में रहना और उनकी देखभाल करती हुई सेवा-सुश्रूषा करती रहना चाहिये और उनकी अनुगामी बन कर रहना श्रेष्ट सुख कर होगा।

३. निज स्वार्थ त्याग कर, चित पर चंचलता न आने देना, शांत स्थिर चित से रहना, हटाग्रही न होना, निरर्थक बहस में न पड़ना चाहिये।

४. संरक्षता की आज्ञा प्राप्त कर कार्य को दीन होकर संतोषपूर्वक अक्रोधित भाव से करना जिससे संरक्षता का चित प्रसन्न रहे वेकार कभी नहीं वैठना चाहिए। कार्य में रत रहने से अपना मन इधर उधर न भटकेगा शांतचित रहेगा।

५. अपना जीवन समझदार बड़ी बूढ़ी नारियों के संग में रह कर व्यतीत करना चाहिये। योवन—नारियों व कुचालनी नारियों के साथ वात चीत न करना और साथ में भी नहीं वैठना चाहिये।

६. प्रति दिन सामायिक प्रतिक्रमण करना, उपदेश साहित्य की पुस्तकें स्वयं पढ़े और यथा योग अर्थ समझे और अन्य को भी सुनाते रहना चाहिए जिससे ज्ञान की प्राप्ति होकर जीवन में उतरेगा।

८ आपस में किस प्रकार से बोलना ?

१. सभ्यता से, प्रेम से, विनय से, सूक्ष्म आशय से बोलना, विशेष निरर्थक बात नहीं करनी चाहिये ।

२. यथा समय प्रश्न का उत्तर सही रूप से देना उत्तर देने में संकोच व चुप भी नहीं रहना चाहिये ।

३. यथा समय नहीं बोलना, समय के बाद बोलना व्यर्थ समझा जाता है और उसका पश्चाताप करना मूर्खता है ।

४. दो मनुष्य आपस में बातचीत करते हो तो बिना आज्ञा के न बोलना, मूर्खता से बीच में भी नहीं बोलना चाहिये ।

५. बिना विचारे, बिना सोचे समझे बोलने में शीघ्रता नहीं करनी, उट पटांग की बात नहीं करनी चाहिये नहीं तो अपनी मूर्खता की हंसी होगी ।

६. किसी की त्रुटियों का उल्हाना प्रथम अन्य किसी के समक्ष अथवा सभा में नहीं देना एवं शांत चित में एकान्त में बैठकर समझाने पर उसको बुरा मालूम न होगा और आशा है वह शीघ्र समझ जावेगा ।

७. मनुष्य का सच्चा आभूषण मधुर वचन हैं, कटुक वचन पिशाचना है, मधुरवाणी से लक्ष्मी प्राप्त होती है बन्धु बांधव बन जाते हैं अतः सदा प्रिय धर्म अर्थ व्यवहार युक्त भाषा बोलना ।

८. मिथ्या बात, अविश्वासी बात, एवं अन्य को बुरी लगे ऐसी भी बात नहीं बोलना चाहिये ।

९. किसी की निंदा नहीं करनी और अपनी प्रशंसा अपने मुख से नहीं करनी, हटाग्रही से बात नहीं करनी चाहिये ।

१०. वाद-विवाद से आपस में कलह पैदा हो जाती है, कटुता बढ़ती है, अनेक परेशानियां हो जाती हैं और दुश्मन बढ़ जाते हैं अतः अपनी कोमल जिह्वा से कोमल प्रियकारी बात बोलना।

११. मधुर वाणी से बिगड़े हुये कार्य भी सुधर जाते हैं घोर कलह भी शांत हो जाता है—क्रोध भी शांत हो जाता है। मृदुवाणी सौन्दर्य रूपी सच्चा आभूषण है।

९ गृहस्थ जीवन के व्यवहारिक कार्यों के नियम

१. पंचायती रसोई में जीमने को प्रथम जाना, पीछे से नहीं जाना, एवं व्यक्तिगत के यहां पीछे जाना चाहिये।

२. पंच पंचायती के समय के प्रारम्भ में नहीं जाना और आखिर में भी नहीं जाना, मध्य में जाना और मध्य में बैठना।

३. व्यापार प्रारम्भ करना हो तो पहले व्यापार का ज्ञान एवं साधन जुटाना चाहिये।

४. अपनी आय के अनुसार खर्च करना, धनवानों का खर्च में अनुकरण नहीं करना एवं साधारण गृहस्थी का अनुकरण करना चाहिये।

५. धनवानों के साथ सोने से चोर डाकू के द्वारा मौत का भय रहता है एवं गरीबों के साथ सोने से निर्भयतापूर्वक नींद आती हैं।

६. धनवानों की सेवा में उपालम्भ मिलने का अवसर आवेगा और छोटों की सेवा से आभार मानेगा।

७. यात्रा में धनवानों की संगत से धन के कारण मृत्यु का डर रहता है, साधारण की संगत से रक्षा होती है।

८. त्यौहार अपनी आय के अनुसार व पास में पैसा हो तो मनाना, ऋण लेकर नहीं मनाना चाहिये, सूक्ष्म खर्च से काम करना चाहिये।

९. विवाह, पुत्र जन्मोत्सव आदि के अवसर पर नौकर चाकर आदि को दे
में कमी (लालच) नहीं करना एवं उनको देने का विशेष खर्च का अनुभ
न करते हुये प्रसन्न करके भेजना चाहिये। ऐसा करने से मार्ग में अप
बुराई व बड़-बड़ाते नहीं जायेंगे।

१०. आपस के लड़ाई, झगड़ों में मध्यस्थ रह कर निपटाने में प्रयत्नशील रह
चाहिये। अगर राज में गवाही का समय आवे तो दूर रहना चाहिये।

११. संकट के समय, रोग मौत के समय आपस में सहयोग देते रहना चाहिये

१२. भोजन गहरी भूख लगने पर ही करना चाहिये, इस से भोजन का स्व
रुचिकर एवं बलवर्धक होगा।

१३. मार्ग में आने जाने वालों से नमस्कार-जयजिनेन्द्र के सम्बोधन करके बोल
से जान पहिचान बढ़ती है और संकट के समय सहयोग मिलता रहता है

१४. मन की डावांडोल स्थिति पर कन्ट्रोल कर वश में रखना और धैर्य ए
सहिष्णुता से शांत रखना।

१५. सोच विचार कर बोलना, क्रोधी के बात का उत्तर न देना, निंदक चुगल
खोर से सचेत रहना, मधुर वचन बोलना, अन्य के अवगुण प्रकट नह
करना एवं निंदा भी नहीं करनी चाहिये।

१६. पड़ौसी व मित्रों के दोषों की मन में गांठ नहीं बांधनी और दोषों क
क्षमा कर देनी एवं उनके सुख-दुःख में सहयोग देने की भावना रखन
चाहिये।

१७. शादी, विवाह, दहेज, एवं डोरा, मिलनी आदि अवसरों पर यथा शक्ति
खर्च करना चाहिये।

१० व्यापारियों के हित सम्बन्धी सुझाव

१. अपनी दुकान छोड़कर अन्य की दुकान पर नहीं बैठना क्योंकि दुकानदार
के न दिखाई देने पर ग्राहक अन्य की दुकान पर चला जायेगा।

२. जिस समय ग्राहकी न हो तो स्वयं बहियों के आय-व्यय, उगाई की देख-भाल एवं माल की कमी आदि की जानकारी करते रहना चाहिये व्यर्थ बैठने पर आलस्य नींद आयेगी।

३. उधार लेते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि देने वाले का गम्भीर दिल होना चाहिये क्योंकि किसी क्षण रुपया समय पर न पहुँचे तो वह अपनी आबरू विगाड़ने वाला न हो जाय।

४. अपनी शक्ति से सबल वालों से लेन देन न करना चाहिये ऐसा होने पर हर समय दबना पड़ता है।

५. इकट्ठी रकम ब्याज पर देनी हो तो एक को नहीं देनी चाहिये, किन्तु दस धनीवार में बांट कर देने से अपनी आवश्यकता (विपत्ति) के समय वापस आजावे अपनी साख नहीं जावे।

६. स्वयं के सगे सम्बंधियों में लेन-देन करने से किसी समय प्रेम टूटने का डर रहता है अगर करना हो तो समय पर रकम वापस न आवे तो धैर्य-पूर्वक संतोष रखना चाहिये।

७. कम पूंजी से व्यापार विशेष करना हानिकारक है, साधारण पूंजी के अनुसार करना—ऋण लेकर के व्यापार करने से किसी भी समय साख विगड़ सकती है।

८. व्यापारी को रकम का लेन-देन का पहले अपनी वहियों में जमा खर्च कर लेना उत्तम रहता है, जिससे भूल-चूक नहीं होगी।

९. वार्षिक आय व्यय व हानि लाभ का विवरण प्रतिवर्ष लगाते रहना चाहिये इससे लेखा दर्पण की तरह हानि-लाभ का व्यौरा मालूम होता रहे।

१०. दुकान की प्रतिष्ठा को वढ़ाते रहना चाहिये, जावो लाख—रहो साख का उदाहरण याद रखना चाहिये।

११. ग्राहकों में व्यापार करते समय अपनी आत्मिकता (विश्वास) का व्यवहार होगा तो विश्वास से व्यापार की उन्नति होगी।

१२. दुकान पर राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक चर्चाओं का केन्द्र नहीं होना चाहिये इससे दुकानदारी में बाधा पड़ने का अंदेशा रहता है।

१३. दुकान पर अपने धर्म बोलचाल का चिन्ह लगाना चाहिये जैसे जयजिनेन्द्र महावीर भगवान की जय आदि।

११ सांसारिक कार्यों में सतर्क रहना

१. प्रतिष्ठा ऐसी होनी चाहिये जो बेदाग की हो एवं सुप्रतिष्ठा होनी चाहिये।

२. चित्त पर आये आर्तध्यान—रौद्रध्यान शोकादि को दूर करने के लिये प्रयत्न करते रहना चाहिये।

३. आलस्य जीवन का शत्रु-अपराध करना विनाश का लक्षण है।

४. कोई भी कार्य स्वयं के करने से उत्तम होता है, नौकर चाकर से कराने से हानिकारक हो सकता है।

५. सांसारिक सुखों से हमेशा विरक्त रहने से उनकी ओर उदासी रहने से उनका अधिकार जाता रहता है।

६. जीवन में ऐसे सत्कार्य करना चाहिये जिससे अपना नाम अमर रहे।

७. बुरा काम कभी नहीं करना चाहिये किन्तु कोई बुराई करता हो तो उसे सहना अच्छा है।

८. जीवन सम्बन्धी प्रत्येक आदमी का स्वभाव पहिचान कर सम्बन्ध बढ़ाना चाहिये।

९. व्यवहारिक कार्य का भेद किसी से कहने योग्य हो तो मुख से कहना चाहिये। भेद देने पर हानिकारक हो सकता है।

१०. जो स्त्री अपने से बड़ी हो—उसको माता बहिन समझना और हंसी मजाक नहीं करना चाहिये।

११. अपने द्वारा या अन्य के द्वारा किसी का भला होता हो तो उसमें बाधा नहीं डालनी चाहिये।

१२. भलाई करके भूल जाना और अपने ऊपर भला किया हो तो उस को नहीं भूलना चाहिये।

१३. मूर्ख स्त्रियां वहीं हैं जो बिना पूछे ही बोल उठती हैं अतः पूछने पर ही बोलना श्रेष्ठ है।

१४. किसी अपराधी का अपराध को अन्य के सामने दर्शाकर उसे लज्जित नहीं करना चाहिये।

१५. आये हुये मेहमानों का कार्य प्रथम करना और स्वयं का कार्य पश्चात् करना चाहिये।

१६. अपना काम निकलवाने के लिये अथवा लालच के वशीभूत में पड़कर अपनी मान-प्रतिष्ठा नहीं घटानी चाहिये।

१७. अन्य के किसी प्रकार के झगड़े में अपनी होशियारी दिखा कर स्वयं पर मोल नहीं लेना चाहिये !

१८. बड़ों की सेवा-सुश्रूषा करना, आदर सत्कार करना एवं छोटों पर प्रेमभाव सहानुभूति व कृपा रखनी चाहिये।

१९. धन वही उत्तम है जिससे प्रतिष्ठा बनी रहे और प्राणों की रक्षार्थ धन जाता हो तो उसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये।

२०. समय का सदुपयोग करना बुद्धिमता है और व्यर्थ की बातों में बिताना मूर्खता है।

२१. संतोषी सदा सुखी और विजयी होता है। गर्व न करने से प्रतिष्ठता बढ़ती है अभिमान से घटती है।

२२. गुणीजनों से गुणों की शिक्षा ग्रहण करना चतुराई है।

२३. मित्रता के वर्ताव में किसी प्रकार की वस्तु की मांग नहीं करने से मित्रता बनी रहती हैं।

२४. सांसारिक कार्यों में लिपटा नहीं रहना चाहिये किन्तु परमात्मा के ध्यान में लिपटा रहना चाहिये।

२५. अपने घर की बात—अन्य से जाकर नहीं कहनी चाहिये।
२६. कुचालनी बुरी स्त्रियों से मेल नहीं रखना चाहिये किसी कारण से संग हो जावे तो चतुराई से बचकर निकल जाना ठीक होगा।
२७. गृह कलह आग के समान है—उसको सहने से दब जायेगी, शीतल रहने से बुझ जावेगी। मूर्खता और क्रोध से विशेष सुलग कर जल कर भस्म कर देती है।
२८. शिक्षाओं को स्वयं में पैदा कर उन पर चलेंगे तो औरों पर उन शिक्षाओं का प्रभाव पड़ेगा।
२९. कपड़े-आभूषण की कभी होढ़ नहीं करनी चाहिये किन्तु उनके गुणों की होढ़ करनी चाहिये।
३०. जो व्यक्ति अपने सामने दूसरों की बुराई करता है वह आगे भविष्य में अपनी बुराई दूसरों के सामने भी कर सकता है।
३१. किसी की आपस की लड़ाई में सदा पक्ष-पात रहित न्याय-युक्त बात कहना नहीं तो चुप रहना चाहिये।
३२. वस्त्रों की मकान आदि की स्वच्छता रखने पर उनकी शोभा से अपनी भी शोभा बढ़ती है।
३३. पाप करने से मन घबराता—धड़कता है और अपनी इच्छा के विपरीत होने से यह अन्तर आत्मा का निषेध का लक्षण है अत: पाप कभी नहीं करना चाहिये।
३४. बहू को सास के विषय में, सास को बहू के विषय में, तुम मेरे पति की कमाई खाती हो इत्यादि ऐसे मर्म भेदी वचन आपस में नहीं कहना चाहिये क्योंकि आपस के प्रेम में बाधा व प्रेम टूटने का डर है। अतः सब को समझदारी से रहना चाहिये।
३५. उत्तम नारियां सिनेमा, मेला, झांकी, खेल आदि में नहीं जाती हैं, जाने से शील-धर्म की रक्षा में बाधा आने की संभावना है।

१–सामाजिक जीवन के संदर्भ में १० धर्मों का विवेचनः–

१. ग्राम धर्म=सामूहिक रूप में एक दूसरे के सहयोग के आधार पर ग्राम का विकास करना पूरी तरह व्यवस्था और शांति बनाये रखना और आपस में वैमनस्य और क्लेश उत्पन्न न हो उसके लिये प्रयत्न शील रहना यही ग्राम्य जीवन के प्रमुख तथ्य हैं।

२. नगर धर्म=जिस प्रकार ग्राम धर्म में व्यवस्था और शांति बनाये रखना है इसका भी यही उद्देश है। नगर में एक योग्य नागरिक रूप में जीवन जीना नागरिक उत्तरदायित्वों, कर्तव्यों एवं नियमों का पूरी तरह पालन करना यही नगर धर्म है।

३. राष्ट्र धर्म=राष्ट्र की सांस्कृतिक चेतना अथवा जीवन जीने की विशिष्ट प्रणाली को सजीव बनाये रखना, राष्ट्रीय विधि विधान नियमों एवं मर्यादाओं का पालन करना यही राष्ट्र का धर्म है।

४. पाखण्ड धर्म=सामान्य जीवन को धर्मोपदेश के माध्यम से नियन्त्रित करने वाला अधिकारी हो और वह सामान्य नैतिक नियमों का पालन कराता हो वह पाखण्ड धर्म है।

५. कुल धर्म—अपने परिवार एवं वंश परम्परा के आचार एवं नियमों का पालन करना कुल धर्म है।

६. गण धर्म—लौकिक (सामाजिक) और लोकोतर (धार्मिक) के नियमों और मर्यादाओं का पालन कराना, आचरण करना गण धर्म हैं।

७. संघ धर्म–विभिन्न गणों से मिलकर संघ बनता है संघ एक प्रकार की राष्ट्रीय संस्था है जिसमें विभिन्न कुल और विभिन्न गण एक साथ मिलकर सब के सामूहिक विकास एवं सामूहिक व्यवस्था का निश्चय करते हैं संघ के नियमों का पालन करना यह प्रत्येक संघ के सदस्य का कर्त्तव्य माना जाता है संघ के दो रूप माने गये हैं १-लौकिक संघ २-लोकोत्तर

संघ। लौकिक संघ का कार्य जीवन के भौतिक पक्ष को व्यवस्था का काम देखना है लोकोत्तर संघ का जीवन के आध्यात्मिक पक्ष का विकास करना है।

८. श्रुत धर्म—श्रुत धर्म का तात्पर्य ज्ञानार्जन करना एवं शिक्षण व्यवस्था सम्बन्धी नियमों का परिपालन करना है। ज्ञानार्जन के लिये शिष्य का गुरु के प्रति व्यवहार कैसा हो और गुरु का शिष्य के प्रति कैसा व्यवहार हो यह श्रुत धर्म का अंग है शिक्षण संस्थाओं की विकास की व्यवस्था संघीय के द्वारा होती रहे जिससे सुज्ञान का प्रचार होता रहे।

९. चारित्र धर्म—चारित्र धर्म का तात्पर्य श्रमण एवं गृहस्थ धर्म के नियमोपनियम के परिपालन से है। चारित्र धर्म का सम्बन्ध वैयकिक साधनों से सामाजिक साधना से है। अहिंसा सम्बन्धी सभी नियम और उपनियम सामाजिक शान्ति के संस्थापन के लिये है, अनाग्रह सामाजिक जीवन से वैचारिक विद्वेष एवं संघर्ष को समाप्त करने के लिये है इसी प्रकार अपरिग्रह सामाजिक जीवन से संग्रह वृति को और अस्तेय शोषण प्रवृति को समाप्त करने के लिये है।

१०. अस्तिकाय धर्म—अस्ति शब्द का मूल सत् शब्द है सत् अर्थात् होना। जीवन का वास्तविक स्वरूप प्रकट हो जाना अस्तिकाय धर्म है। इसे जीवन धर्म भी कहा है। सत्प्रवृतियों के द्वारा जीवन को सत्यमय बनाना, सत्य का साक्षात्कार करने के लिए सदा उद्योग करते रहना जीवन का वास्तविक धर्म है। समस्त प्राणियों के प्रति मेरा बन्धु भाव है। मेरा किसी के साथ वैर विरोध नहीं है। यह विश्व बन्धुत्त्व ही जीवन का आदर्श है। उपरोक्त १० धर्मों की व्याख्या सूक्ष्म रूप से लिखी है इन १० धर्मों का संचालन करने के लिये दस स्थीवरों (नेता, पंच, मंत्री राष्ट्रपति आदि की आवश्यकता होगी तभी सुव्यवस्था बनी रहेगी। (विशेष विवरण जवाहर किरण भाग १३ में है) १ ग्राम स्थीवर (सरपंच पंच) २ नगर स्थवीर (नगर परिषद् व पिता) ३ राष्ट्र धर्म

(मंत्री व राष्ट्रपति) ४ धर्म स्थीवर (साधु मुनि) ५ कुल धर्म (परिवार का मुखिया) ६ गणधर्म (गण नायक) ७ संघ स्थवीर (संघ की व्यवस्थापक) ८ श्रुतधर्म (सच्ची शिक्षा) ९ चारित्र धर्म (धर्म की शिक्षा) १० उत्तम मानव ।

२–राष्ट्र देश समाज का उत्थान कैसे हो ?

१. नैतिकतापूर्ण=मर्यादापूर्ण, सुसंगठन, सुशासन, सुव्यवस्था, सुशांति से राष्ट्र देश समाज उन्नत होगा ।

२. अनैतिकता व अमर्यादित कुसंगठन, कुशासन, कुव्यवस्था और अशांति से राष्ट्र देश समाज का पतन होगा ।

३. राष्ट्र देश समाज आदि की सेवा निःस्वार्थ भाव से होनी चाहिये ।

४. समाज में एक दूसरे की उन्नति देख कर ईर्षा द्वेष की भावना एवं उसको गिराने व नीचा दिखाने की भावना नहीं होनी चाहिये ।

५. स्वामी को नौकर के साथ पुत्र के समान एवं नौकर को स्वामी के साथ पिता के समान सद् व्यवहार होने पर परस्पर प्रेम एवं विश्वास बढ़ेगा और कार्य में उन्नति होगी ।

६. समाज में विधवाओं को सीना, पापड़ बनाना, गोटा किनारी आदि कला में लगाकर सहयोग देना, असहाय छात्र-छात्रायें को पाठ्य पुस्तकों की कीमत, प्रवेश शुल्क, परीक्षा शुल्क देकर होशियार करना और धन के अभाव से कोई व्यक्ति धंधा करने में असमर्थ है तो उसको तन मन धन से सहायता करनी, नौकर रखना, ऐसी व्यवस्था समाज की ओर से होनी चाहिये ।

७. जिस परिवार को एवं व्यक्ति को —समाज एवं व्यक्ति द्वारा सहयोग मिलता हो तो उसको तन मन से कार्य में लगा रहना और आलस्य व लापरवाही आदि न रखना चाहिये ।

८. राष्ट्र देश समाज में विशेष पार्टियां एवं दल वंदियां होने से आपस स्वार्थ के वशीभूत होकर नीचा दिखाने की भावना होगी प्रेम टूटेगा रा द्वेष बढ़ेगा और धीरे धीरे गृह कलह का रूप धारण होगा जिससे दे समाज का पतन होता जायेगा।

९. छात्र-आन्दोलन, श्रमक आन्दोलन, कर्मचारी आन्दोलन इत्यादि वर्तमा में राजनैतिक दल आदि की समस्या को आपस में बुद्धिमता व शांतिपूर्व एवं अहटाग्रही के द्वारा हल करने से राष्ट्र-देश समाज की उन्नति ह सकेगी अन्यथा कुआन्दोलन से राष्ट्र देश की लोक सम्पत्ति का ह्रा होगा और हिंसाये बढ़ेगी देश का पतन होगा।

१०. व्यापारियों को चोरबाजारी, शुद्ध वस्तु में अशुद्ध वस्तु मिलाना, क तौलना मापना, विशेष लाभ की अभिलाषा रखना व संग्रह करन तस्करी, करों की चोरी नहीं करनी चाहिये।

११. सरकारी अधिकारी को रिश्वत नहीं लेनी, आये हुये का निरादर नह करना, यथाशक्ति काम कर्तव्य समझकर करना चाहिये।

१२. श्रमक कर्मचारी आदि वेतनदार को कार्य निरधारित समय तक का करते रहना चाहिये कार्य की चोरी (कम काम करना) नहीं करन चाहिये इससे देश के उत्पादन में वढ़ोतरी होगी।

१३. किसी के साथ हकूमत से काम नहीं लेना एवं भाईचारा व बुद्धिमानी स काम लेना चाहिये।

३-शिष्टाचारी के १८ कर्तव्य

घर पर आये हुये व्यक्ति का स्वागत करना, प्रिय वाणी से नमस्कार जयजिनेन्द्र करना, सत्कार से बैठाना, समयानुसार वस्तुओं से आग्रह पूर्वक सन्मान करना एवं निम्नलिखित १८ कर्तव्य का लक्ष्य भी रखना चाहिये—

१. लोकोपवाद का भय रखना।

२. दीन गरीबों के प्रति सहयोग की भावना रखना।

कृतज्ञता मानना । ४. निंदा का त्याग करना ।

विद्वानों की प्रशंसा करना । ६. आपत्ति में धैर्य रखना ।

सम्पति होने पर नम्रता रखनी ।

समय पर उचित एवं परिमित वाणी बोलना ।

किसी से किसी प्रकार का विरोध-कद्राग्रह न करना ।

अंगीकृत कार्य को पार लगाना चाहिये ।

कुल धर्म का पालन करना चाहिये ।

धन का अपव्यय न करना चाहिये ।

आवश्यक कार्य में उचित प्रयत्न करना चाहिये ।

उत्तम कार्य में सदा सलग्न रहना चाहिये ।

प्रमाद का त्याग करना चाहिये ।

लोकाचार का पालन करना चाहिये ।

यथा स्थान उचित कार्य हो उसे करना चाहिये ।

नीच कार्य कभी नहीं करना चाहिये ।

विद्यार्थी के गुण

सुशील कुमार विद्यालय की शान है जो सदाचार, सादगी, संयम-सुस्वभाव वाला होगा वही विद्यालय और माता-पिता-गुरु का नाम गौरवान्वित करता है ।

गुण—१ अध्ययनशीलता २ अध्यवसाय एवं एकाग्रता ३ सयंम ४ जिज्ञासा-५ विनय ६ आज्ञाकारिता ७ आदरभाव ८ व्यायामशीलता ।

सद् विद्या कल्प लता (वेल) के समान है ।

(१) माता की भांति रक्षा करती है (२) पिता की तरह हित में प्रवृत करती है (३) स्त्री के समान खेद को हरण करके आनन्द देती है (४) लक्ष्मी की प्राप्ति कराती है (५) संसार में कीर्ति फैलाती है ।

५–विद्या की महिमा

दोहा

विद्या से मिलता है ज्ञान ! विद्या विन नर पशु समान ॥
विद्या है धन गुप्त महान ! ज्यों ज्यों खर्चो वढ़ता मान ॥
भाई वांटि न हरि चोर ! विद्या धन का जोर ॥
सुख दुख में एक समान ! विद्या से ही मिलता सम्मान ॥
विद्या सकल गुणों की खान ! विद्या को ही पारस जान ॥

६-पुत्र चार प्रकार के

१. अतिजात—जो माता पिता की यश-कीर्ति में वृद्धि करने वाला हो।
२. अनुजात—जो माता पिता की यश-कीर्ति स्मृद्धि को बनाये रखे कम नहीं करे ।
३. अवजात—जो माता पिता की यश-कीर्ति समृद्धि पर धव्वा लगाया हो, नष्ट कर दी हो।
४. कुलांगार—धूर्त-शराबी, दुष्टता, व्यभिचारी आदि बुरे कामों से कुल को कलंकित करता हो।

७ समता-जीवन

१. समता=प्राणी की राग द्वेष रहित शांत भावना-समता है।
२. समता-व्यवहार=राग-द्वेष रहित, शांत भाव से अपनी मर्यादा शक्ति व आत्म हित का ध्यान रखकर सामने वाले व्यक्ति के साथ यथा अवसर यथा योग्य आचारण करना समता व्यवहार है।
३. समता जीवन दर्शन—सभी आत्माओं को अपनी आत्मा के समान मानकर उनके साथ यथा योग्य आचरण करना समता जीवन दर्शन है।
४. समता आत्म दर्शन—समता सिद्धान्त को समझकर जीवन के प्रत्येक कार्य को, समता मय वनाते हुये अपना आत्म विकास करना समता दर्शन है

५. समता सिद्धान्त दर्शन—सभी आत्मा को अपनी आत्मा के समान मानना समता सिद्धान्त दर्शन है।

६. समता-दृष्टि या सम्यक-दृष्टि—प्रत्येक वस्तु को प्रत्येक प्राणी को, प्रत्येक स्थिति को आत्म हित की दृष्टि से देखना।

७. समता-दर्शी—जिसकी दृष्टि ही समता युक्त हो संसार में न तो कोई शत्रु ही दीखता है और न किसी व्यक्ति या वस्तु पर मोह ही होता है। सुख दुःख दोनों को समता भाव से देखता हो वह समता दर्शी है।

८. समता परमात्मा दर्शन—समता मय आचरण हो, क्रोध, मान, माया, लोभ, मोह से रहित और क्षमा, नम्रता, सरलता त्याग सम्यक्ज्ञान युक्त हो। यही परमात्मा दर्शन है।

जीवन सुधार से मरण सुधार होता है। जिसने अपने जीवन को दिव्य और भव्य रूप में व्यतीत किया है, जिसका जीवन निष्कलंक रहा है और विरोधी लोग भी जिसके जीवन के विषय में उंगली नहीं उठा सकते, अपने वास्तव में उसका जीवन प्रशस्त है जिसने अपने को ही नहीं पड़ोसियों, अपने समाज को, अपने राष्ट्र को और समग्र विश्वको ऊँचा उठाने का निरन्तर प्रयत्न किया, किसी को कष्ट नहीं दिया वरन् कष्ट से उबारने का ही प्रयत्न किया, जिसने अपने सद् विचारों एवं सद् आचार से जगत के समक्ष स्पृहणीय आदर्श उपस्थित किया, उसने अपने जीवन को फलवान् बनाया है। इस प्रकार जो अपने जीवन को सुधारता है, वह अपनी मृत्यु को भी सुधारने में समर्थ बनता है। जिसका जीवन आदर्श होता है, उसका मरण भी आदर्श होता है।

—आचार्य श्री हस्तीमलजी म० सा०

१—सद् वक्ता के पच्चीस गुण

१. दृढ़ श्रद्धा—जब उपदेशक स्वयं पक्की श्रद्धा वाला होता है तभी वह श्रोताओं की शंका का निवारण करके उन्हें श्रद्धावान बना सकता है।

२. वाचनाकला-कुशल—वांचने और सुनाने की कला में कुशल हो। वांचते समय अटके नहीं शुद्धता से सरलता से सुनावें। कठिन व रूखे विषय को सुगम व सरस करके कहना।

३. निश्चय-व्यवहार ज्ञाता—निश्चयनय और व्यवहारनय के स्वरूप को समझाने वाला हो।

४. जिनाज्ञा के भंग से डरना—वक्ता अपनी जान में सर्वज्ञ भगवान की आज्ञा के विरूद्ध कोई बात न कहे। वीतराग भगवान की आज्ञा के विरूद्ध प्ररूपणा न करें।

५. क्षमा—वक्ता को अपना विवेक सदा जागृत रखने के लिये क्षमावान होना चाहिये। क्रोधी न होना चाहिये। क्रोध से रंग में भंग उत्पन्न हो जाता है।

६. निराभिमानता—विनयवान की बुद्धि बड़ी प्रबल रहती है इससे यथा तथ्य उपदेश कर सकता है। अभिमानी पुरुष सत्य-असत्य का विचार नहीं करता।

७. निष्कपटता—जो सरल होता है वही यथावत उपदेश कर सकता है। कपटी पुरुष अपने दुर्गुण छिपाता है।

८. निर्लोभता—निर्लोभ उपदेश सदा बेपरवाह होता है। राजा-रंक को एक सरीखा सत्य उपदेश कर सकता है।

९. अभिप्रायज्ञता—जो-जो प्रश्न श्रोताओं के मन में उत्पन्न हों उन्हें उनकी मुख मुद्रा से समझकर स्वयंमेव समाधान करें।

१०. धैर्यता—प्रत्येक विषय को धैर्य के साथ ऐसी स्पष्टता से प्रति-पादन करे जिससे वह श्रोताओं के दिल में बैठ जावे।

११. हठी नहीं—यदि किसी प्रश्न का उत्तर न जानता हो या तत्काल न सूझे तो हठ पकड़ कर भिन्न प्रकार की स्थापना न करे नम्रतापूर्वक कह दे कि मुझे उत्तर ज्ञात नहीं है।

१२. निन्द्य कर्म से रहित—सच्चा वक्ता वही है जो चोरी-व्यभिचारी विश्वासघात आदि निन्दनीय कर्मों से दूर रहता है। सद्गुणी होगा वही दूसरों से नहीं दबेगा।

१३. कुलीनता—कुलहीन वक्ता होगा तो श्रोता उसकी मर्यादा नहीं रखेंगे और उसके वचनों का प्रभाव नहीं पड़ेगा।

१४. परिपूर्णाङ्गता—वक्ता के भसी अंग परिपूर्ण होने चाहिये। अंगहीन वक्ता शोभा नहीं देता।

१५. स्वर माधुर्य—खराब स्वर वाले वक्ता के वचन श्रोताओं को प्रिय नहीं होते।

१६. बुद्धिमता—वक्ता बुद्धिशाली होना चाहिये।

१७. प्रभावशाली—जिसका व्यक्तित्व प्रभावशाली होता है, उसके वचन भी प्रभावशाली होते हैं।

१८. मधुर वचन—वक्ता की भाषा में मिठास होगा तो श्रोताओं को प्रीति उत्पन्न होगी और प्रीति से मन से श्रवण करेंगे।

१९. सामर्थ्य—वक्ता समर्थवान होना चाहिये अर्थात उपदेश देते समय थक नहीं जाना चाहिये।

२०. विशाल अध्ययन—अनेक ग्रन्थों का अवलोकन, अध्ययन, मनन, चिन्तन होना चाहिये।

२१. अध्यात्मवेत्ता—वक्ता आत्मज्ञानी होना चाहिये, आत्मा को जाने विना समस्त ज्ञान निस्सार है—निष्प्रयोजन है।

२२. शब्दों के रहस्य का ज्ञान होना चाहिये। जो शब्दों के गहरे मर्म को नहीं समझता और अपने आन्तरिक भावों को प्रकट करने के लिये उपयुक्त शब्दों का प्रयोग नहीं कर सकता वह उपदेश देने योग्य नहीं है। उसका उपदेश कभी भ्रान्ति उत्पन्न कर सकता है और प्रभावजनक नहीं होता।

२३. अर्थ का संकोच और विस्तार करने की योग्यता होनी चाहिये समय पड़ने पर किसी बात को विस्तार रूप से समझा सके कभी विस्तार से कहने की बात को संक्षेप में कह सके।

२४. तर्कज्ञ—वक्ता को युक्ति तथा तर्क का ज्ञाता होना चाहिये। शास्त्रों में मूल सिद्धान्तों का प्रतिपादन होता है, प्रत्येक व्यक्ति के प्रत्येक प्रश्न का उत्तर शास्त्र में स्पष्ट रूप से नहीं लिखा रहता उन मूल सिद्धान्तों के आधार पर प्रत्येक प्रश्न का उत्तर देने के लिये युक्ति तथा तर्क चाहिये।

२५. गुण युक्तता—वक्ता को प्रतिष्ठित, प्रामाणिक, प्रभावशाली और विश्वास-पात्र बनाने वाले सभी गुण उसमें होने चाहिये। गुणों के अभाव में उसके वचन मान्य नहीं होते।

●

अन्धकार में भटकते हुए मनुष्य को किसी ऐसे आध्यात्मिक पथ प्रदर्शक की आवश्यकता होती है जो उसे निःस्वार्थ भाव से दिव्य प्रकाश का दर्शन करा सके, जिसके स्वयं के जीवन में दिव्य गुणों का प्रकाश उतर चुका हो और जन जीवन को भी उसी प्रकाश की ओर ले चलता हो वही गुरु है।

●

अपनी आत्मा और संसार का वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर, सर्व प्रकार की हिंसा और रागद्वेष को मन वचन व कर्म से त्याग कर ममता से समता की ओर बढ़ना ही सच्चे सुख का मार्ग है।

——

२ श्रोताओं के चौदह गुण

१. भक्तिमान=वक्ता के प्रति भक्ति आदर सम्मान की भावना होनी चाहिये।

२. मिष्ठभाषी=वक्ता के उपदेशों को आदरपूर्वक सुनना और सम्बोधन द्वारा स्वीकार करना।

३. अहंकार रहित=श्रोता के मन में वक्ता के प्रति अपनी अधिक ज्ञान की भावना का अहंकार नहीं होना चाहिये।

४. श्रवण रूचि=व्याख्यान रुचिपूर्वक, उत्साहपूर्वक, तल्लीन होकर सुनना चाहिये।

. सुस्थिर आसन=व्याख्यान में शान्त-चित्त व स्थिर आसन से पालगती लगाकर बैठना, हाथ फैलाकर नहीं बैठना एवं सुशोभित पूर्वक बैठना चाहिये।

. एकाग्रचित=चित्त का स्वभाव चंचल है, चंचलता से स्मृति भ्रंश, स्मरण शक्ति नष्ट हो जाती है अतः एकाग्रचित रखकर श्रवण करना चाहिये।

. यथा श्रुत वक्ता=व्याख्यान में जैसा सुना हो वैसा ही किसी के पूछने पर सही उत्तर देना किन्तु असत्य नहीं कहना चाहिये। यदि याद न रहा हो तो यह कह देना उचित है कि याद नहीं है।

८. प्रश्न की जानकारी=प्रवचन में संयोगवश समाधान देने के लिये वक्ता किसी से प्रश्न करे तो प्रश्न की रूपरेखा समझकर सही उत्तर देना चाहिये, जिससे उत्तर देने में मूर्खता मालूम न हो।

६. अर्थ समझने वाला=वक्ता के शब्दों का परिज्ञान हो। जागरूकता पूर्वक अभिप्राय व आशय समझना चाहिये।

१०. सत्कर्म में आलस्य न हो=प्रवचनों द्वारा ज्ञान की प्राप्ति होती है मिले हुये ज्ञान को अन्य व्यक्तियों में प्रचार करना ऐसा करने से स्वयं का ज्ञान बढ़ेगा।

११. उदारचित=व्याख्यान में संयोग वश सामाजिक धार्मिक कार्यों के लिये धन इकट्ठा करने की आवश्यक पानड़ी हो तो, तन मन धन से दान देना चाहिये।

१२. गुण ग्राही होना=व्याख्यानों में अथवा अन्य व्यक्तियों द्वारा गुणों का दिग्दर्शन हो तो गुण ग्रहण करना चाहिये।

१३. निंदक न होना=व्यक्ति विशेष के अवगुण दोष मालूम होने पर उन व्यक्तियों का हित सोचकर उनको संचेत करना किन्तु निंदा नहीं करनी चाहिये।

१४. दोष रहित जीवन बनाना=व्याख्यान श्रवण करने का आशय अपने जीवन में किसी प्रकार का दोष अवगुण हो तो धीरे-धीरे उसको छोड़ना एवं विवेक शांतपूर्वक शुद्ध आचरण करना बुद्धिमानी है।

•

• साधना का लक्ष्य है जीवन की दिव्यता प्राप्त करना दिव्यता प्राप्त करने के लिये आदर्श रूप में देव की उपासना और भक्ति आवश्यक है, देव कौन ? जो रागद्वेष को जीतने वाले हों, कर्म रूपी शत्रुओं को नष्ट करते हों अनन्त एवं अक्षय ज्ञान वाले हों तथा परम शुद्ध आत्मा हो।

पाप कर्म बन्धन की २५ क्रियाओं से बचना चाहिये !

जिससे कर्म का आस्त्रव होता है, ऐसी प्रवृत्ति को क्रिया कहते है यह क्रिया दो प्रकार की है—जीव के निमित्त से लगने वाली जीव-क्रिया और अजीव के निमित्त से लगने वाली अजीव-क्रिया।

१. कायिकी क्रिया—दुष्ट भाव से युक्त होकर प्रयत्न करना, अयतनापूर्वक कार्य-की प्रवृत्ति होना, मेरा शरीर दुर्बल हो जायगा इत्यादि विचार से व्रत-नियम आदि का पालन या धर्माचरण न करके आरंभजनक कामों में लगना कायिकी क्रिया कहलाती है। अतः प्रत्याख्यान करना एवं अयतना से शरीर की प्रवृति से बचना चाहिये।

२. आधिकरणिकी क्रिया—चाकू, छुरी, सुई, कैंची, तलवार, भाला, बर्छी, धनुप वाण, वन्दूक-तोप आदि शस्त्र एवं कुदाली, फावड़ा, हल, चक्की, मूसल आदि का संग्रह या प्रयोग करने से, और अधूरे हों उन्हें पूरा करना, शस्त्र नये बना कर इकट्ठा करना या वेचना तथा कठोर, दुःख जनक वचनों को उच्चारण करने से पुराने पड़े हुए झगड़े को फिर चेताने से क्रिया लगती है अतः शस्त्रों की क्रिया एवं वचन रूपी शस्त्र की क्रिया से वचना चाहिये।

३. प्राद्वेपिकी क्रिया—ईर्षा-द्वेष के विचार से यह क्रिया लगती है। (१) मनुष्य, पशु आदि जीवों को दुःखी देखकर, आनन्द द्वेष भाव मानना (२) वस्त्र, आभूषण, मकान आदि अजीव वस्तुओं का विनाश कब होगा ऐसा द्वेप भाव रखने से क्रिया लगती है अतः ऐसी ईर्षा-द्वेष वुद्धि से बचना चाहिये।

४. पारितापनिकी क्रिया—अपने हाथ या वचन से किसी दूसरे को या अपने आप को दुःख देना अथवा दूसरे के हाथ से या वचन से दूसरे को या अपने को दुःख पहुंचाना अतः किसी के शरीर को छेदन करने से या ताड़न-तर्जन करके परिताप नहीं उपजाना चाहिये।

५. प्राणातिपातिकी क्रिया=अपने हाथ से जीवों को मारना, शिकार खेलना आदि और दूसरों के हाथों जीव घात कराना शिकारी कुत्ता, चीता आदि हिंसक जीवों को छोड़ कर जीव हिंसा कराना अथवा मारने के लिए उद्यत हुये को "मार, मार देखता क्या है" आदि शब्द कहना, ईनाम देना, शाबासी देना आदि से यह क्रिया लगती है अतः विष या शस्त्र आदि से जीवों की घात नहीं करानी व नहीं करनी चाहिये।

६. आरंभिकी क्रिया=पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रसकाय के जीवों की हिंसा का जब तक त्याग नहीं किया है, तब तक इनका जितना आरम्भ होता है उसे सब पाप की क्रिया लगती है। अतः जीवों का आरम्भ और अजीब वस्तुओं के आरम्भ की मर्यादा से त्याग करना चाहिये।

७. परिग्रहिकी क्रिया=धन, धान्य, द्विपद, चतुष्पद, आदि का त्याग एवं दास, दासी पशु आदि जीव परिग्रह और वस्त्र पात्र, आभूषण, मकान आदि अजीव परिग्रह की ममता की परिग्रह का त्याग न किया हो या मर्यादा न की हो तो लोक में जितना भी परिग्रह है उस सबकी क्रिया लगती है अतः परिग्रह की मर्यादा करना उत्तम है।

८. मायाप्रत्यया क्रिया=दगाबाजी करना, जगत में धर्मात्मा कहलाना किन्तु अन्तर में धर्म के प्रति श्रद्धा न होना, व्यापार आदि में कपट करना यह आत्मभाववक्रता है एवं झूठे नाप-तौल रखना, अच्छी वस्तु में बुरी वस्तु मिलाना, दूसरों को ठग-विद्या सिखलाना आदि परभाववक्रता है अतः दोनों क्रियाओं के कर्म-बन्धन से बचना चाहिये।

९. अप्रत्याख्यानप्रत्यया क्रिया=भोजन, पान आदि एक ही बार भोगे जाने वाली उपभोग वस्तु का तथा वस्त्र, पात्र, मकान आदि बार-बार भोगी जाने वाली परिभोग वस्तु इन दोनों प्रकार की वस्तुओं का उपभोग किया जाय या न किया जाय किन्तु जब तक उनका त्याग नहीं किया है तब तक उसकी क्रिया लगती है। अतः मर्यादा या त्याग करना चाहिये।

मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया= कुदेव, कुगुरु, और कुधर्म की श्रद्धा रखने से एवं तत्व में अतत्व और अतत्व में तत्व का श्रद्धा करना अथवा वस्तु को हीन या अधिक मानना मिथ्यादर्शन है। अतः वीतराग भगवान के वचनों पर श्रद्धा रखना चाहिये।

दृष्टिका क्रिया=राग या द्वेष से स्त्री, पुरुष, हाथी घोड़ा, बगीचा नाटक सिनेमा आदि देखने से जीव दृष्टिका एवं वस्त्र आभूषण आदि को देखने से अजीव दृष्टिका क्रिया लगती है। अतः रागद्वेष रहित होकर इन को देखना चाहिये।

स्पृष्टिका क्रिया=स्त्री, पुरुष, पशु, पक्षी आदि के अंगों-पांगों का तथा पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति वगैरह का स्पर्श करने से जीव-स्पृष्टि का क्रिया एवं वस्त्र आभूषण आदि अजीव वस्तुओं का स्पर्श करने से अजीव स्पृष्टि का क्रिया लगती है। अतः बिना प्रयोजन स्पर्श नहीं करना चाहिये।

पाडुच्चिया (प्रातीत्यिकी) क्रिया=माता, पिता, पुत्र, मित्र, शिष्य, गुरु, भैंस, घोड़ा, सांप, बिच्छू, कुत्ता, खटमल, मच्छर, कीड़ा आदि जीवों पर राग द्वेष धारण करने से जीव प्रातीत्यिकी क्रिया, एवं वस्त्र, आभूषण, मकान, विष, मल-मूत्र आदि वस्तुओं पर राग द्वेष धारण करने वाली अजीव प्रातीत्यिकी क्रिया लगती है। अतः रागद्वेष का त्याग करके समभाव धारण करना ही उचित है।

सामन्तोपनियातिकी क्रिया=दास दासी, घोड़ा, हाथी बैल, बकरा जीवों आदि का संग्रह रखना, उन्हें देखने के लिए लोग आवें और संग्रह की प्रशंसा करें तो प्रसन्न होना, तथा व्यापार करना एवं धातु, घर, महल, वस्तु आदि अजीव वस्तुओं का बहुत काल तक संग्रह रखना और प्रशंसा सुनकर हर्षित होना और बेचना तथा दूध, दही, घी, तेल, पानी, आदि पात्रों को प्रमाद वश खुला रखने से उसमें जीव गिर कर मर जाने से यह क्रिया लगती है अतः ऐसी क्रिया से बचना चाहिये।

१५. स्वहस्ति की (साहत्थिया) क्रिया=मेंढ़ा, मुर्गा, सांड, तीतर, हाथी, गेंडा आदि जीवों को आपस में लड़ाने से, मनुष्यों की कुश्ती कराने से, चुगली से जीवस्वहस्कि की क्रिया तथा अजीव वस्तु लकड़ी तोड़ना, आपस में संघर्षण करना, वस्त्र, आभूषण आदि को तोड़ना-फोड़ना, फाड़ना आदि से क्रिया लगती है अथवा अपने शरीर का दूसरे मनुष्य आदि जीव का बध-बन्धन करना भी नहीं चाहिये।

१६. नैशस्त्रिकी (नेसत्थिया) क्रिया=जूं, लीख, खटमल आदि छोटे-छोटे जन्तुओं को तथा बड़े जीव को ऊपर से गिरा देना कष्ट पहुँचाना और वस्त्र आदि निर्जीव वस्तुओं को बिना यतना के ऊपर से फेंक देना आदि से क्रिया लगती है अतः जीव जन्तु एवं वस्तुओं को यतना पूर्वक रखना उठाना चाहिये।

१७. आज्ञापनिका (आणवणिया) क्रिया=नौकर या मजदूर वगैरह को आज्ञा देकर स्वामी जो कार्य करवाता है उसकी क्रिया स्वामी को लगती है, और स्वामी की आज्ञा के बिना किसी वस्तु को ग्रहण करना अथवा आज्ञा देकर किसी वस्तु को मंगाने की क्रिया आदि का सोच विचार कर कार्य करना चाहिये।

१८. वैदारणिका (वैयरणिया) क्रिया=शाक, भाजी, फल, फूल, अनाज, मनुष्य, पशु, पक्षी वगैरह सजीव वस्तुओं के टुकड़े करने से तथा वस्त्र, धातु, मकान आदि निर्जीव पदार्थों को तोड़ने-फोड़ने से क्रिया लगती है। स्त्रियों तथा पशुओं के हाव-भाव करके स्वांग वना कर हर्ष या शोक उपजाने वाली क्रिया, एवं वस्त्र, आभूषण आदि के द्वारा हर्ष और विष, शस्त्र से शोक उपजने वाली क्रिया से भी बचना चाहिये।

१९. अनाभोगप्रत्यया क्रिया=वस्त्र, पात्र, आदि साधन बिना देखे, असावधानी से ग्रहण करने और रख देने से लगने वाली क्रिया, एवं वस्त्र पात्र आदि साधनों का असावधानी से प्रति लेखन करने, पूंजने से

लगने वाली क्रिया लगती है अतः यतना पूर्वक गमनागमन करना आदि कार्य करना चाहिये।

१० अणव कंख वत्तिया क्रिया—स्व-पर शरीर की परवाह किये बिना उसे क्षति पहुंचाने वाला व्यापार से लगने वाली क्रिया अथवा इह लोक-परलोक की परवाह न कर के लोक विरोधी हिंसा चोरी आदि पाप क्रिया लगती है अतः लोक में निंदा हो वे पापकारी कार्य नहीं करना चाहिये।

२१. अणायओगवतिया क्रिया—स्त्री पुरुष, गाय भैंस, आदि सजीवों का संयोग मिलाने की दलाली करना, एवं वस्त्र आभूषण आदि अजीव वस्तुओं की दलाली करना असावधान होकर पापकारी (सावद्य) भाषा बोलना, गमनागमन करने से एवं दूसरों से पाप कारी काम कराने से हिंसा होती है। अतः पापकारी दलाली का कार्य नहीं करना चाहिये।

२२. सामुदणिया क्रिया—कम्पनी बनाकर व्यापार करना, इकट्ठा होकर सिनेमा, नाटक आदि खेल देखना, टोली बनाकर ताश-शतरंज आदि का खेल खेलना, वेश्या या अन्य किसी प्रकार का नाच मिलकर देखना, फांसी की सजा को मिलकर देखना आदि ऐसे प्रसंगों पर सभी देखने वाले मनुष्यों के परिणाम (विचार) एक सरीखे पापकारी होते हैं, कर्म वन्धन भी एक सरीखा होता है और फल भी प्रायः एक साथ भुगतना पड़ता है। उदाहरण-मनुष्यों से भरा हुआ जहाज का पानी में डूबना, बाढ के समय एक साथ पानी में वहजाना, प्लेग-महामारी बीमारी में मनुष्यों की एक साथ मृत्यु होजाना आदि अतः उपरोक्त खेल सिनेमा आदि के देखने वाली क्रिया से वचना उत्तम है।

२३. पेज्जवत्तियाक्रिया—प्रेम (अनुराग) के कारण, माया चार करने से, लोभ करने से प्रेम उत्पन्न हो जावे ऐसी क्रिया करना भी पाप कर्म बंध की क्रिया है अतः लोभ देकर, माया छल-कपट आदि के द्वारा प्रेम उत्पन्न नहीं करना कराना चाहिये।

२४. दोसवत्तिया (द्वेषप्रत्यया) क्रिया=द्वेष भाव से स्वयं में क्रोध, मान एवं दूसरों में भी क्रोध, मान उत्पन्न हो ऐसा कार्य नहीं करने पर कर्म वन्ध से बचना हो सकता है।

२५. इरियावहिया क्रिया=उपशांतमोह, क्षीणमोह, और संयोग केवली भगवान के उपयोग पूर्वक गमनागमन करते, सोते, बैठते, खाते-पीते, भाषण करते वस्त्र पात्रादि रखते समय, क्रिया' लगती है। यह क्रिया छद्मस्थ अकषाय साधु को लगती है एवं इस क्रिया से साता वेदनी कर्म का बंध होता है।

पच्चीस क्रियाएं कर्म बंध का कारण है। सम्यग्दृष्टि पुरुष को इनसे बचने का यथासंभव प्रयत्न करना चाहिये

उपासनागृह, स्थानक आदि में प्रवेश करते समय

१. अभिगम की पांच बात याद रखनी चाहिये—(१) पगरख्यां, बूंट चप्पल आदि को निर्धारित स्थान पर एवं मुनिराजों को दृष्टि गोचर न होती हों वहां पर खोलना (२) अभिमान एवं हिंसा जनक वस्तु जिससे अभिमान एवं हिंसा की भावना जागृत हो ऐसी वस्तु साथ में नहीं होनी चाहिये (३) सचित वस्तु जैसे मूंह में पान, सुपारी एवं पास में फूल माला फ्रूट आदि नहीं रखनी चाहिये (४) साधु साध्वीजी से बोलते समय उत्तरासन (मूहँ पर अंगोछा रुमाल) लगाना चाहिये (५) मंगल पाठ (मांगलिक) सुनते समय चित को शांत स्थिर एकाग्रभाव से रखकर सुनना चाहिये।

२. स्थानक में प्रवेश करते समय गृहस्थ सम्वन्धी बात चीत, हंसी मजाक, जोर से बोलना आदि क्रिया का त्याग कर धर्म ध्यान का व्यवहार रखना चाहिये। साधु साध्वीजी को वंदना तीन वार उठ बैठ कर करना उत्तम है।

३. सामायिककर्ता अपने वस्त्रों को निर्धारित स्थान पर खोलना और उसमें वहुमूल्य वस्तु नहीं रखनी चाहिये। जहां पर सामायिक करते हों वहां

पर वस्त्र नहीं रखें इससे जगह खाली रहने पर अन्य सामायिक वालों के कार्य में बाधा आ सकती है।

४. व्याख्यान में सामायिककर्ता एवं व्याख्यान श्रवणकर्ता व्याख्यानदाता के (मुनि श्री) सन्मुख पंक्तिवार स्थान न छोड़कर बैठना चाहिये। व्याख्यान-दाता के सामने बैठने से वाचनकर्ता एवं श्रवणकर्ता का ध्यान दृष्टि मिलती रहेगी और श्रवण में रस आयेगा।

५. व्याख्यान श्रवण करते समय माला फेरना, पुस्तक साहित्य पढ़ना, बातें करना, बीच बीच में बोलना, नींद लेना, देरी से आकर बीच में जाकर बैठना (पूर्व के बैठने वालों को स्थान नहीं छोड़ना) आदि से दाता का व श्रवणकर्ता का ध्यान विचिलित होना स्वाभाविक है अत: इन सब बातों का ध्यान रखना उचित होगा।

६. व्याख्यान में बच्चों को नहीं ले जाना अथवा ले जाना हो तो उनको रोने पर बाहर ले जाना ठीक है और उनको इधर-उधर भाग दौड़ न करने देना और जोर से नहीं बोलने देना चाहिये क्योंकि इस अशान्ति से वाचनकर्ता एवं श्रवणकर्ता का ध्यान विचलित होगा अतः सावधान रहना श्रेष्ठ होगा।

७. व्याख्यान के श्रवण किये गये उपदेशों को अवकाश के समय में चिंतन—मनन करने पर आत्म-ज्ञान का प्रकाश होगा उत्तम भावनाएं विकसित होंगी।

८. प्रतिदिन प्रारम्भ से अन्त तक ठीक समय पर आकर व्याख्यान श्रवण करने से शास्त्रों का एवं दिव्य आत्माओं के चरित्र से आध्यात्मिक ज्ञान, धार्मिक क्रिया आदि का ज्ञान मधुर रस के समान प्राप्त होता रहेगा।

९. व्याख्यान में पीछे बैठने वालों को दाता की वाणी सुनने में नहीं आ सके तो मौन धारण कर बैठ जाना चाहिये किन्तु आपस में बातचीत करना

ठीक नहीं होता है क्योंकि पास में बैठने वाले का ध्यान विचलित होग
अतः शांति पूर्वक बैठना श्रेष्ठ होगा जिससे अन्य को सुनने का ला
मिलेगा ।

१०. व्याख्यान स्थल पर शांति व सुव्यवस्था बनाये रखने के लिये जो स्व
सेवक हो उनकी प्रार्थना को शांतिपूर्वक सुनकर उनको सहयोग दे
चाहिये इससे श्रवण कर्ता को वाचन का लाभ मिल सकेगा ।

११. स्वयं सेवकों को विवेकपूर्वक मधुरता नम्रता सहिष्णुतापूर्वक श्रवणक
को समझायें और स्वयं समझें, हकूमत से काम नहीं लेवें, भाईचारा
काम लेना चाहिये ।

१२. व्याख्यान में भाषण-कविता आदि बोलने वालों को प्रथम मंत्री जी
विषय की जानकारी देकर आज्ञा प्राप्त कर बोलना उत्तम रहेगा ।

१३. सामायिक कर्ता के वस्त्र श्रमण (साधु) के रूप में होना चाहिये । स्वच्
सफेद मैल रहित मूंह पत्ती, डुपट्टा धोती का होना श्रेष्ठ शोभा सुन्दर रह
है । वर्तमान में नवयुवक पैन्ट एवं हाफपैन्ट पहन कर सामायिक करते
यह नियम के विपरीत हैं। धोती के बजाय सफेद पायजामा फिर भी ठी
रहता है । सामायिक के वस्त्र आसन के साथ में ही और उनकी स्वच्छ
का ध्यान रखा जाय तो विशेष ठीक रहेगा ।

विकारों पर विजय

मरण सुधार करने वालों को विकारों पर विजय प्राप्त करना आवश्य
है । उग्र से उग्र भय, कष्ट आने पर भी सावधान साधक ज्ञानबल द्वारा विका
को उत्पन्न नहीं होने देता । विकारों के शमन के लिये अध्यात्मज्ञान की अनिवा
आवश्यकता होती है । ऊँचे ऊँचा अन्य ज्ञान प्राप्त करने वाले ने भी य
अध्यात्मज्ञान प्राप्त नहीं किया तो सब व्यर्थ है ।

भाव भीनी वन्दना

भाव भीनी वन्दना, भगवान के चरणों में चढ़ाय ।
शुद्ध ज्योतिर्मय निरामय, रूप अपना आप पायें ॥ टेर ॥

ज्ञान से निज को निहारें, दृष्टि से निज को निखारें ।
आचरण की उरवरा में, लक्ष्य तरुवर लह-लायें ॥ १ ॥

सत्य में आस्ता अटल हो, चित्त संशय से न चल हो ।
सिद्ध कर आत्मानुशासन, विजय का संगान गायें ॥ २ ॥

बिन्दू भी हैं सिन्धू भी हैं, भक्त भी भगवान भी हैं ।
छिन्न कर सब ग्रन्थियों को, सुप्त मानस का जगायें ॥ ३ ॥

धर्म है समता हमारा, कर्म समता मय हमारा ।
साम्य योगी बन हृदय से, श्रोत समता का बहायें ॥ ४ ॥

समता मय यह जीवन हो, सरल सुखद यह जीवन हो ।
क्रोध रहित यह जीवन हो, मान रहित यह जीवन हो ॥ ५ ॥

कपट रहित यह जीवन हो, लोभ रहित यह जीवन हो ।
सिया-राम सम जीवन हो, राजुल-नेम सम जीवन हो ॥ ६ ॥

गुण दर्शन मय जीवन हो, शुद्ध प्रेम-मय जीवन हो ।
विषमता का परिहार हो, जन २ में समता का विस्तार हो॥ ७ ॥

समतामय जीवन हो सब का, समता हो जीवन का कर्म ।
रम जाय अंतर बाहर में, समता का शुभ मंगल मर्म ॥ ८ ॥

प्रभो महावीर !

ओ महावीरजी ! ओ महावीरजी ! ! ओ महावीरजी ! ओ महावीरजी ! !

धर्म विश्वास है सब उठा जा रहा, पाप का वेग दिन-दिन बढ़ता जा रहा।
नाश के गर्त में है जगत जा रहा, तुम बदलो नई फिर से तस्वीर जी ॥

धर्म भ्रष्ट के संघर्ष का जोर है, में व तूं का सरारत भरा शोर है।
एक उदण्डता-राज्य चहुँ ओर है, तुम स्याद्वाद जैसी दो अकसीर जी ॥

स्वाद के नाम पर घोर हिंसा हो रही, मूक पशुओं के कंठो पैं छुरियाँ चल रही।
अधर्मी लोगों से भोली जनता छल रही, अब आकर दो उपदेश महावीर जी ॥

भोग की वासना है भयंकर बला, मांस मदिरा का है खूब दौरा चला।
मादरे हिन्द का है हृदय जल रहा, तुम आके देवो दया का पिला नीरजी ॥

हे वीर भगवान ! बड़ा तेरा उपकार है, प्राण पण से ऋणी सर्व संसार है।
तूं दया का 'अमर' पूर्ण अवतार है, तुम आकर के जगत की हरो पीरजी।

सच्चा शिक्षित वही है जिसकी बुद्धि शुद्ध हो, जो शांत हो, जो न्यायदर्शी हो। उसी ने सच्ची शिक्षा पाई है जिसका मन कुदरत के कानूनों का पाबन्द हो, जो इन्द्रियों को अपने वश में रख सकता हो, जिसकी अन्तर्वृत्ति विशुद्ध हो, जो नीचता भरे कामों से घृणा करता हो जो दूसरों को आत्मवत समझता हो।

श्री बालक भारती

जैन जवाहर विद्यापीठ

गंगाशहर-भीनासर

॥ ॐ अर्हम् ॥

संस्कार पोथी

[भाग तीसरा]

लेखक :—

'सन्तबाल'

अनुवादक:—

शोभाचन्द्र भारिल्ल

प्रकाशक :—
रतनलाल मित्तल
मन्त्री, श्री सन्मति ज्ञानपीठ
आगरा

प्रथमावृत्ति १०००	मूल्य ।)	ई० सं० १९५१

श्री जालमसिंह मेड़तवाल के प्रबन्ध से
श्री गुरुकुल प्रिं० प्रेस, ब्यावर
में मुद्रित ।

प्रकाशकीय निवेदन

शिक्षा की अपेक्षा संस्कार का जीवन में यदि अधिक महत्त्व है तो संस्कारिता का विकास करने वाले साहित्य को भी अधिक महत्त्व मिलना चाहिए। इस दृष्टिकोण को सामने रख कर जब हम हिन्दी के बाल-साहित्य पर नजर फेरते हैं तो गहरी निराशा का ही सामना करना पड़ता है।

संस्कृति के क्षेत्र में महान् कार्य करने वाले मुनि श्रीसंतबालजी की कृति यह संस्कार पोथी कुछ अंशों में वैसे साहित्य के अभाव की पूर्ति कर सकेगी; इस आशा से इसे अनूदित और प्रकाशित किया जा रहा है। आशा है हिन्दी भाषा-भाषी जनता इससे उचित लाभ उठाएगी।

पुस्तक के अर्थ-सहायक श्रीसोहनलालजी बुरड़ का 'मेरा प्रायश्चित्त' शीर्षक निवेदन दिया जारहा है। वह निवेदन संस्कृति का एक उज्ज्वल पाठ है, जिससे पुस्तक का महत्त्व और बढ़ जाता है। उनकी आर्थिक सहायता का मूल्य है, परन्तु उनके प्रायश्चित की घोषणा का मूल्य उससे भी कहीं बढ़ कर है।

संस्कारपोथियों के प्रकाशन में व्यावसायिक दृष्टि बिलकुल नहीं है। इसी कारण वे लागत मात्र मूल्य में बेची जाएँगी। स्वा

ही अच्छा हो, श्रीफल या मिठाई की प्रभावना करने वालों का ध्यान इस ओर आकर्षित हो और वे समग्र जीवन को प्रभावित करने वाली इन पुस्तकों की प्रभावना करें।

इन पोथियों के प्रकाशन में मुनि श्रीसंतबालजी, उपाध्याय कविवर मुनि श्रीअमरचन्द्रजी, मुनि श्रीनेमिचन्द्रजी, भारिल्लजी और बुरड़जी से जो सहयोग मिला है, उसके लिए हम अतीव कृतज्ञ हैं।

सन्मति ज्ञानपीठ,
लोहामंडी, आगरा

विनीत—
रतनलाल जैन

एक बात

आज के भारतीय जन-जीवन को जो चीज़ सब से अधिक तंग और बरबाद कर रही है, वह है असंस्कारिता। संस्कारहीन कोई एक व्यक्ति हो या कोई एक समाज हो, वह न स्वयं जीने का सच्चा आनन्द उठा पाता है, और न दूसरों को उठाने देता है। संस्कारशून्य स्थिति में जीवन की कला कभी मिलती ही नहीं है। और जिनके पास जीवन की कला नहीं है, वह व्यक्ति जिस किसी भी परिवार, समाज एवं राष्ट्र में रहता है, रगड़ खाता हुआ सा रहता है और उसके फल-स्वरूप खुद भी परेशान रहता है तथा दूसरों को भी परेशान करता है।

अतएव यह आज की ही नहीं किन्तु अनन्त अतीत और अनन्त भविष्य की भी सब से बड़ी माँग रही है कि मानव संस्कारी बने, ऊँचे चरित्र का बने और पवित्र जीवनकला का अधिकारी बने। संस्कारी मानव ही धरती पर स्वर्ग उतारने की क्षमता रखता है।

गांधीयुग के महान विचारक श्रीसन्तबालजी आजकल भारतीय जन-जीवन को संस्कारी बनाने के लिए सक्रिय प्रयत्न कर रहे हैं। उन्होंने जीवनसंस्कृति की निर्माणदिशा में जनता

ही अच्छा हो, श्रीफल या मिठाई की प्रभावना करने वालों का ध्यान इस ओर आकर्षित हो और वे समग्र जीवन को प्रभावित करने वाली इन पुस्तकों की प्रभावना करें।

इन पोथियों के प्रकाशन में मुनि श्रीसंतबालजी, उपाध्याय कविवर मुनि श्रीअमरचन्द्रजी, मुनि श्रीनेमिचन्द्रजी, भारिल्लजी और चुरड़जी से जो सहयोग मिला है, उसके लिए हम अतीव कृतज्ञ हैं।

सन्मति ज्ञानपीठ,
लोहामंडी, आगरा

विनीत—
रतनलाल जैन

एक बात

आज के भारतीय जन-जीवन को जो चीज़ सब से अधिक तंग और बरबाद कर रही है, वह है असंस्कारिता। संस्कारहीन कोई एक व्यक्ति हो या कोई एक समाज हो, वह न स्वयं जीने का सच्चा आनन्द उठा पाता है, और न दूसरों को उठाने देता है। संस्कारशून्य स्थिति में जीवन की कला कभी मिलती ही नहीं है। और जिनके पास जीवन की कला नहीं है, वह व्यक्ति जिस किसी भी परिवार, समाज एवं राष्ट्र में रहता है, रगड़ खाता हुआ सा रहता है और उसके फल-स्वरूप खुद भी परेशान रहता है तथा दूसरों को भी परेशान करता है।

अतएव यह आज की ही नहीं किन्तु अनन्त अतीत और अनन्त भविष्य की भी सब से बड़ी माँग रही है कि मानव संस्कारी बने, ऊँचे चरित्र का बने और पवित्र जीवनकला का अधिकारी बने। संस्कारी मानव ही धरती पर स्वर्ग उतारने की क्षमता रखता है।

गांधीयुग के महान् विचारक श्रीसन्तबालजी आजकल भारतीय जन-जीवन को संस्कारी बनाने के लिए सक्रिय प्रयत्न कर रहे हैं। उन्होंने जीवनसंस्कृति की निर्माणदिशा में जनता

के साथ परोक्ष नहीं, अपितु प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित किया है। इस दिशा में संतबालजी की यह संस्कारपोथी एक अच्छा युगानुरूप साहित्यिक कदम है। पिछले ब्यावर चातुर्मास में मुझे पहली बार ही उक्त पुस्तक का परिचय हुआ। मैं इसकी उपादेयता से बहुत प्रभावित हुआ हूँ।

मूल पुस्तक गुजराती में है। हिन्दी भाषा-भाषी जनता उस से उचित लाभ नहीं उठा सकती थी। अतः प्रस्तुत हिन्दी रूपान्तर इस आवश्यकता की पूर्ति करेगा। हिन्दी रूपान्तर के निर्माण में हमारे स्नेही मुनि श्रीनेमिचन्द्रजी, सोहनलालजी बुरड़ और पं० शोभाचन्द्रजी भारिल्ल का जो अपना-अपना यथायोग्य सहकार है, वह हिन्दी पाठकों के लिए चिरस्मरणीय रहेगा।

शङ्कर-वाटिका
ब्यावर
१६ मई १९५१

—मुनि 'अमर'

पहला पाठ

निन्दा-प्रशंसा, परिहार

निन्दा .... जीतो

प्रशंसा .... वश करो।

निन्दा-प्रशंसा की विजय

निन्दा जैसा कोई महापाप नहीं।

आप बड़ाई जैसा कोई अनिष्ट नहीं।

जैनसूत्र कहते हैं:—

निन्दा पीठ के मांस के बराबर है।[1]

निन्दक नरक का अधिकारी है।

निन्दा बड़े से बड़ा नशा है।

निन्दा नामक प्रमाद से जीव—

संसार-भ्रमण करता है।

पैशुन्य महापाप का स्थानक है।

अपनी प्रशंसा से अवगुण पनपते हैं।

आत्मश्लाघा आत्मा को गिराती है।

---

१ निन्दा करना ऐसा ही है जैसे चुपचाप पीछे जाकर किसी की पीठ को नोच कर उसका मांस निकाल लेना।

कबीर साहब ने कहाः—

बाहरी बड़ाई की वांछा न करो।
शरीर-पात होते ही उसका विनाश हो जाता है।

बौद्धग्रंथ कहते हैंः—

चाड़ी-चुगली का त्याग,
बौद्ध साधक का सुन्दर व्रत है।

+

श्री कृष्णमूर्ति ने कहाः—

निन्दा-चुगली प्रेमघातक महाशस्त्र है।
निन्दा की गंदगी आत्मा को रोगी बनाती है।
निन्दा से सम्पूर्ण वातावरण विकृत बनता है।

×

महाकवि सेक्सपियर बोलेः—

निन्दा नाइल के जहरीले कीडे से भी ज्यादा
जहरीली है।
निन्दा की धार भाले की धार से भी
भयंकर है।

निन्दा कैसे आ घुसती है ?

पास के किसी व्यक्ति या वस्तु में दोष दीखा कि—
बस निन्दा आ घुसी।

दूसरे की चढ़ती कला देख डाह उपजी
कि बस निन्दा आ धमकी।
अपनी प्रिय व्यक्ति या वस्तु को बखानने
की लत पड़ी कि निन्दा घुसी।

आप-बड़ाई का आगमनः—

मिथ्या अभिमान जागा कि आप-बड़ाई आई।
थोड़ा अच्छा करके बहुत बताने की वृत्ति हुई,
कि आप-बड़ाई आई।

निन्दा कमजोर—नादान की—निशानी है।
आप बड़ाई--कामचोर—आलसी का सहारा है।

+

अति गहरे दोनों यह वैरी,
बहुत बुरे यह दोनों चोर।
दुनिया सारी वैरी फिर भी,
नहीं लखाते दोनों चोर।
बलवानों के बल को लूटा,
थके न जाने कितने वीर।
हुई राह में लूट मार-सी,
थके कार्यकर्त्ता अति धीर।

+

कुटुम्बनेता······समाजनेता,
राष्ट्रप्रणेता······विश्वविजेता।
हैं निर्बल इन दो के आगे,
दोनों मानो दानव हैं।

निन्दा-प्रशंसा को जीतना कैसे ?

प्रशंसा को पूरी तरह जीते विना निन्दा नहीं जीती जायगी।
तुम्हें अपनी प्रशंसा मीठी लगी कि,
पराई निन्दा मीठी लगे विना न रहेगी।
निन्दा और प्रशंसा, एक ही सिक्के के दो बाजू हैं।
तुम अपनी प्रशंसा से सावधान रहो।
आदर्श को सक्रिय रूप देने के कार्य में।
परायण बनो।
खुशामदी टट्टुओं से सावचेत रहो !
पड़ौसियों के साथ रहने में खूब सावधान।
तुम्हारे गुण गाये जाते हों वहाँ कान बंद करो।
अपनी सच्ची प्रशंसा भी मत सुनो।
तुम अपने पूज्य प्रिय पात्र की भी कोरी
शाब्दिक प्रशंसा करने की कुटेव छोड़ो।

+

तुम अपने पूज्य प्रिय पात्र की दूसरों के आगे शाब्दिक प्रशंसा करोगे, तो सेवा के बदले कुसेवा होगी।

और फिर भी—

जगत् पहले तो तुम्हारे छिद्र ढूँढ़ेगा

फिर निन्दा और बुराई करेगा, मगर—

मीरां कहती हैं:—

'भरे बाजार में से हाथी चाल्यो जाय

भौंके कुत्ता उसमें हाथी का क्या जाय?'

\+ + ×

ऐसे विजेता बनकर तुम भी अपनी मस्ती में झूमते चलोगे।

प्रशंसकों के प्रति तुम्हें राग न होगा।

निन्दकों के प्रति तुम्हें द्वेष न होगा।

विरोधियों और आलोचकों को तुम

प्रेम से सुनोगे और उनके हृदय में

तुम्हारे लिए ऊँचा आसन बनेगा।

निन्दक जब समझ जाएँगे कि

निन्दा से तुम्हें क्षोभ नहीं होता,

तब वे हार जाएँगे

उनके शस्त्र भौंथरे हो जाएँगे।

× × ×

और तुम्हारे प्रशंसक भी

तुम्हारे निन्दकों को चाहना सीखेंगे।

मुख से प्रशंसा करने की अपेक्षा,

तुम्हें जो रुचता है, उसे जीवन में आचरण कर दिखाएँगे
और जगत् को अनूठी थाती देंगे।
इस प्रकार तुम्हारी विजय तुम्हारे और
जगत् के लिए बहुत उपकारक साबित होगी।
बहुतेरे असाधारण जन, निन्दा और प्रशंसा को
न जीत सकने से आगे बढ़ते-बढ़ते रुक गये।
बहुतेरे साधारण जन, निन्दा और प्रशंसा को
जीत कर समर्थ उद्धारक बन सके।
जगत् के किसी भी महाधर्म-क्रान्तिकारी को देखो,
निन्दा-प्रशंसा को जीतने का महान् गुण उसमें
प्रधान होगा।

दूसरा पाठ

मृत्यु

जन्मे सो मरे निश्चय, मरा भी जन्मता पुनः।
खेद क्या करना भाई, अनिवार्य दशा यही ॥

मृत्यु से पहले

हमेशा इतने तैयार रहो कि
मृत्यु आ जाने पर पीड़ा न हो।
बड़ी बीमारी के अवसर पर भी बहुत वैद्य न बदलो,
ऐसा करने से
बेचैनी बढ़ती है।
प्रभु—धुन—भजन से
वातावरण व्याप्त रखना चाहिए।
हाय! हाय! आह! आह! के बदले
अपने इष्ट-देव का स्मरण करो।

परिचारक क्या करें ?

बीमार के सेवक को भी हर घड़ी यही नाम याद कराना चाहिए। जहाँ तक हो, दवाएँ कम लेनी चाहिए।
सार-सँभाल खूब की जाय।
बीमार को बारम्बार प्रसन्न—

रखने का ध्यान रक्खा जाय ।

विस्तर सादा, सफेद और स्वच्छ ।

जल्दी पचने वाला और पोषण देने वाला

प्रवाही अथवा अप्रवाही

—भोजन–पान—

मृत्यु से पहले

रोगी का विस्तर मध्यम हवा और प्रकाश वाले
स्थान पर हो ।

+

रोगी का रोग उसे चिड़चिड़ा बना देता है ।

+

रोगी का दिमाग स्थिर रखने के लिए
'आत्मा अमर है'

इस प्रकार का वाचन और विचार
उसके आगे प्रस्तुत करना चाहिए ।

+

सगे-सनेहियों को, सार-सँभाल करने वालों को
और साता पूछने वालों को

'शान्ति हो

शान्ति हो'

इस प्रकार कहते रहना चाहिए।

+

रोगी को उत्साहमय रख, उसका रोग घटाना चाहिए।

×

जंजाल की बात या संबंधियों की ममता
बढ़ाने वाली बात से रोगी को बचाया जाय।

+

मृत्यु की वेला—

मृत्यु अर्थात् जीवन का अभाव नहीं,
किन्तु नवजीवन का पूर्व पल।
सम्पूर्ण जीवन की कसौटी का काल।

×

मृत्यु का ढोल—

जहाँ जनमने का प्रयोग है,
वहाँ मृत्यु का प्रयोग अनिवार्य है।
जनमने वाला जानता है—
हमारी मृत्यु निश्चित है।

फिर भी यह स्मृति भुला न दी जाय, इसलिए
ढोल बजाती है।

जिसके कान हैं, उसे यह मधुर संगीत सुनाती है
घोर बीमारी उसके ढोल का नाद है।
वह कहती है:—
'मैं आ रही हूँ, आ रही हूँ, आती ही हूँ,
बुढ़ापा उसकी धीमी ध्वनि है।
इस बहाने वह कहती है:—
'मैं आ रही हूँ, धीरे-धीरे पर निश्चय आ रही हूँ।'
दुर्घटना उसका बेसुरा नाद है।
इस बहाने वह चेतावनी देती है:—
'महाप्रपंची को मैं झट झपट्टे में ले लेती हूँ।
मैं आती हूँ, मैं आती हूँ, आती ही हूँ।'
और उसकी धीमी धीमी ध्वनि आती ही रहती है-
मैं हूँ, मैं हूँ, मैं हूँ।'

ज्ञानी और मृत्युः—

ज्ञानी उसे उत्तर देता है—आओ, भले आओ! जब आना हो तभी आ जाओ। मैं तैयार हूँ। शरीर की भले तू शत्रु हो, मेरी तो महामित्र है।

मैं ब्रह्म हूँ। मैं आत्मा हूँ। मैं अकाल हूँ!

तू मुझे बाँध नहीं सकती, तू मुझे छोड़ नहीं सकती।
मेरी इच्छा होने पर ही तू मेरे शरीर को छू सकती है।

×

मत भूल जाना, तेरी कल्पना-मूर्ति का कलाकार मैं हूँ।
तुझसे जिसे भय होता है, उस भय का निर्माता भी मैं हूँ
जो जिसका निर्माता है, वह उससे डरेगा क्यों?

आ, तुझे भेंट लूँ!
नया शरीर बना लूँ!
'अहा! मैं सदैव अजर हूँ।
मैं सदैव अमर हूँ।

मेरे प्रदेश में तू कदापि नहीं फटक सकती।
फिर भी शरीर के बख्तर के साथ आ,
आ, तेरा आलिंगन कर लूँ।

अज्ञानी की मृत्युः—

अरे बाप रे! हाय अम्मा री!
हाय माँ! ओह माँ!
ऐ- बाप रे! मां···रे!
हाय, हाय, हाय! आह, आह, आह!
मरा रे! अरे मरा रे!
अर···र···र! हा···य!

बिस्तर पर उछलता है
और
पछाड़ खाता है।

×

पल भर भी चैन नहीं।
सेवा करने वालों को गालियों की झड़ी,
क्रोधावेश के बिना बीते नहीं घड़ी।
सगे-सनेही चारों ओर खड़े घेरे,
आंसू बहावे और हाय हाय करे।
कैसे हो ? पूछ पूछ पीड़ा उपजावे,
थोड़ी देर खड़ा रह अपनी राह जावे
माल हो तो भाव पूछने वाले बहुतेरे।
बिल करा लेने वाले लोलुप बहुतेरे।
मृतक के पीछे मिठाई खाने वाले बहुतेरे!
मृतक के पीछे हाय हाय करें,
आगे के रोवें, पीछे के रोवें।
अज्ञानी के अज्ञानी सगे,
उनसे तो अच्छे चौपगे।

मृत्यु के बाद:—

श्मशान जाने वाले,
जाते समय और जा करके सभी,

प्रभु के नाम का उच्चारण करें।
श्मशान में धुन जगावें।

×

"सहजानंदी शुद्धस्वरूपी,
मैं अविनाशी आत्मस्वरूप।
मरे देह; मैं कभी न मरता,
अजर-अमर पद का हूँ भूप।
ॐ कुरु शान्ति, ॐकुरु शान्तिम्।
कुरु कुरु शान्ति, ॐ कुरु शान्तिम्।

×

मृतक के सगे-सनेहियों से—

मृत्यु के उपलक्ष्य में मिठाई खाना
शर्म की बात है।
मृत्यु के उपलक्ष्य में मिठाई खिलाना
घोर शर्म की बात है।
मृत्यु के बाद रोने से,
मरने वाले या रोने वाले को कुछ हाथ नहीं आता

+

पर माला फेरने से
सुन्दर आन्दोलन जागता है।
मृत्यु पत्र न लिखो पर निर्वाणपत्र लिखो।

मातमपुर्सी के लिए आने वाले
दूसरे गांव से आए हों, और
दूसरी सुविधा न हो तो
जल्दी लौट जाएँ।
मातमपुर्सी में ॐ शान्ति का उच्चार।

×

मरने वाले का खरा स्मारक—
उसके सद्गुणों का विकास।
सुपात्र में साधनों का प्रदान।

×

मरणहार की मौत के समयः—
व्रत–नियम करके सोचना चाहिए—
मेरी भी मृत्यु है!

+

आधि, व्याधि, उपाधि का मूल
परिग्रह है, उसे घटाइए,
लोकसेवा और आत्मोद्धार साधक
सत्प्रवृत्तियों को उत्तेजन दीजिए।
दिन भर का कार्यक्रम ऐसा बनाइए कि
रुदन के बदले उल्लास फैला रहे।

और

अपनी मृत्यु के समय आप ही उससे
भेंटने के लिए तैयार रह सके।

+

अंतिम मृत्यु अर्थात् मोक्ष।
'मृत्यु आए, भले आए।
तू न आएगी तब तक तुझे बुलाऊँगा नहीं
आएगी तो पीछे हटूँगा नहीं,
मृत्यु आए, भले आए।'

तीसरा पाठ

अभय

जैनसूत्र कहते हैं:—

अभयदान सब दानों में उत्तम दान है।

अभयदान सर्वदया में महादया है।

'अभय दो, सबको अभय करो।'

जो अभय होगा, —वही अभय दे सकेगा।

जो अभय होगा,—वही अभय कर सकेगा।

मशरूवाला कहते हैं:—

भय को तो समझा जा सकता है, पर

भयवृत्ति को तो दूर करना ही चाहिए।

सावधान भले रहो पर डरपोक तो मत बनो।

अज्ञान और नासमझी भय के कारण बन सकते हैं, अतः समझ और अभ्यास प्राप्त करके इन भूतों को भगाओ।

भय अनात्मा है,

अभय आत्मा है।

गीता कहती है:—

जो न किसी से त्रस्त हो, न किसी को त्रास दे

वही सच्चा भक्त!

जो न किसी से डरे, न किसी को डरावे
वही सच्चा भक्त !

आचारांग कहता है:—

वीर को कहीं से भी भय नहीं होता।
भय–वृत्ति की जड़ को खोजो।
भयवृत्ति की जड़ को उखाड़ो।

—भय के कारण—

रोग, आकस्मिक दुर्घटना, इज्जत, मौत, आदि भय के अनेक कारण हैं। इसकी जड़ें हैं तीन:—
(१) अर्थलालसा (२) यश–लोलुपता (३) कामवासना।
इन जड़ों को उखाड़ फैंको।

भय के कारणों की अपेक्षा भय की मनोवृत्ति ही प्रायः कँपकँपी पैदा करती है। इसके अभाव में भय के कारण उपस्थित होने पर भी कँपकँपी नहीं पैदा होती। अतः—

भय–वृत्ति भयंकर है।
डर ही भयंकर है।

भयवृत्ति को निकाल दो, डर को दूर कर दो।

माताओ !

बाऊ आया, हौवा आया, बाघ आया,
साँप आया, शेर आया, कौवा आया,

भूत आया, प्रेत आया।
ऐसी भयवृत्ति बच्चों में मत पैदा करो।
बड़े होने पर भी यह संस्कार उन्हें, तुम्हें और समाज को
बहुत सताएगा।

आर्यो !

शिवाजी सरीखी सन्तान पकाओ।
जीजी बाई जैसी वीरांगना बनो।
शिवाजी समर्थ रामदास के भक्त थे।
रामायण में आसक्त थे।
गुंडागीरी के विनाशक थे।
परन्तु मानवता के रक्षक थे।
जातिवाद के कट्टर विरोधी,
पर आर्य संस्कृति के सुदृढ़ स्तंभ !
निर्भय बनो ! वीर बनो ! निडर बनो !
दर्द में, आफत में, जंजाल में खुश है
वही सच्चा मर्द जो हर हाल में खुश है।

मर्द बनो

मर्द डाह नहीं करता,
मर्द गुणों की होड़ जरुर करता है।
मर्द वैर नहीं बढ़ाता,

मर्द मित्रता ही करता है।

नैतिक साहस रक्खो

जो हो मन में,

वही लाओ वचन में,

और वही लाओ कर्म में।

निर्भय बनो! निडर बनो! वीर बनो!

नैतिक साहसवान् बनो।

किसी से मत डरो, किसी को मत डराओ। खुद अभय बनो,

दूसरों को अभय बनाओ।

विश्व भर में अभय भर दो

चौथा पाठ

विश्वविज्ञान—कर्मविज्ञान

जगत क्या है ? कोरी माया है ? भ्रममात्र है ? नहीं । जगत् सत्य है, पर आत्मा के सत्य से ही सत्य है । और आत्मा के संग से ही उसमें सत्य है । इसीलिए तो चेतन अथवा आत्मा परम बल है, इसका विज्ञान ही परम विज्ञान है ।

'जिसने आत्मा को पहचाना, उसने सभी कुछ जाना'

इस दृष्टि से ।

जड़ को चेतन के पीछे चलाओ,
चेतन को जड़ के पीछे नहीं ।

आज का विज्ञान, आज का पूंजीवाद,
आज का यंत्रवाद, आज का व्यवहार,
प्रायः चेतन को जड़ के पीछे चलाता है,
इसी कारण वह अनर्थकारी साबित हुआ है ।

आत्मा के अतिरिक्त

आत्मा के सिवाय जगत् में और भी द्रव्य हैं । [१]पुद्गल भी उनमें से एक है ।

---

१ परमाणु और परमाणुपिण्ड ।

पुद्गल जड़ है, और रूपी है। दूसरे धर्म, अधर्म और आकाश यह तीन द्रव्य जड़ किन्तु अरूपी हैं।

इस तरह पुद्गल सहित यह चारों जड़ द्रव्य आत्मा से निराले हैं। आत्मा इन के निमित्त से ही जगत् में जन्म-मरण के चक्कर में पड़ा है।

तुंबा पानी की सतह पर तैरता है। यह उसका स्वभाव है। किन्तु मिट्टी का लेप चढ़ा दिया जाय तो वह पानी में डूब जाता है। इसी प्रकार जड़ और चेतन का संयोग ही संसार है और ऊपर बतलाये कारणों से आत्मा संसार में भटकता है। इस प्रकार चेतन सहित पाँच द्रव्य इस संसार में हैं।

पुद्गल पर राग होने के कारण जीव, पुद्गल को ग्रहण करता है। वे पुद्गल कम रूप में परिणत होते है। इस तरह यह चक्कर चलता रहता है।

इन सब के साथ काल का असर है। पर भूत, वर्तमान और भावी, यह त्रिविध काल तो वहीं कहा जा सकता है जहाँ चन्द्र और सूर्य घूमते हैं। अन्यत्र नहीं।

जैनशास्त्र काल सहित इस प्रकार छह द्रव्य बतलाते हैं। वहाँ जड़ के संसर्ग से बने हुए सात तत्त्व भी माने गये हैं।

—जीव, अजीव, आस्रव, संवर,
निर्जरा, बंध और मोक्ष।

कामना के कारण जीव का कर्म के साथ बंध होता है।
कर्म शुभ या अशुभ होने से अच्छा—बुरा फल देता है।

शुद्ध की ओर, अपने निर्मल स्वरूप की तरफ ही जीव यदि लक्ष्य दे तो पुरुषार्थ करके वह मोक्ष पा लेता है।

कर्म उसे मोक्ष-मार्ग की ओर जाने से रोक नहीं सकता। जीव स्वयं ही राग-द्वेषवश प्रलोभन में फँसता है अथवा आपत्ति से आकुल होता है, तभी कर्म बंधन होता है। नहीं तो कर्म-बन्धन है ही नहीं।

इतना समझा कर आचरण करावे वह है सद्गुरु।
और इतना जो समझावे वह ग्रंथ सत्—शास्त्र।

इतना समझ कर जिसने परिपूर्ण आचरण किया वह देवाधिदेव।

इतना समझ कर जिसने आचरण करने का यत्न किया वह साधक।

कर्म कहो या संस्कार कहो, एक ही बात है। मनुष्य जैसी आसक्ति से, तन से, मन से या वचन से, जैसे—जैसे कर्म या संस्कार बाँधता है, वैसा ही भला या बुरा परिणाम उसी जीव को भोगना पड़ता है।

जैसा मिट्टी का गोला दीवार पर चिपक जाता है, वैसा सूखा नहीं चिपकता। अतः शुद्ध की ओर दृष्टि रख कर आसक्ति की चिकनाई से दूर रहना चाहिए। मतलब यह है कि शुभ की ममता रक्खे बिना और अशुभ से ऊबे बिना, प्रवृत्ति और निवृत्ति—दोनों का समन्वय करना चाहिए। और स्व-पर का कल्याण करना चाहिए।

पाँचवाँ पाठ

सर्व-धर्म-समन्वय

नदियाँ भिन्न भिन्न हैं, पर उन सब का अन्तिम स्थान तो एक महासागर ही है।

ध्वजाएँ अलग-अलग हैं, पर बहने वाला वायु तत्त्व-तत्त्व से एक ही है।

बरतन निराले-निराले हैं, पर उन सब में मिट्टी तो एक ही है।

घर न्यारे-न्यारे हैं, पर आकाश तत्त्व तो एक ही है।

चावल, चोखा, तंदुल या तंडुल, इस प्रकार भाषा के अनुसार अक्षर भिन्न-भिन्न हैं, पर अर्थ तो एक ही है।

इसी प्रकार व्यक्ति भले अलग-अलग हैं, पर उनमें रहा हुआ चेतन स्वभाव तो एक ही है।

पहली कक्षा, दूसरी कक्षा, तीसरी कक्षा, इस तरह कक्षाएँ भले अलग-अलग हों, पर शाला का उद्देश्य तो एक ही है।

उसी प्रकार यहूदी, मुस्लिम, जरथोस्ती, ईसाई, वैदिक, बौद्ध और जैन—इन सब के कर्मकाण्डों की कक्षाएँ जुदा-जुदा हैं; पर सब चढ़ती सीढ़ियों के बाद का स्थान तो एक -

जैसे मंजिल अनेक मगर मकान एक है। जैसे अंग बहुत परन्तु अंगी एक है।

इसी प्रकार सब धर्मों का अन्तिम सार एक है। उसे खोज कर अन्तिम तत्त्व की खोज करो।

सा, रे, ग, म, प, ध, नी, इस सप्तावली में से जहाँ जो स्वर मौजूं हो, वह स्वर लेकर संवादन से संगीत साधा जाता है। इसी प्रकार जन्मगत सम्प्रदाय में रह कर—उसकी धर्म के नाम पर पैठी कुरूढ़ियों को त्याग कर, उसमें मौजूद सार को निचोड़ कर—किसी भी दूसरे सम्प्रदाय में जाने का स्वांग न करते हुए, दूसरे सम्प्रदाय के सच्चे तत्त्व को, अपने जीवन में प्रयुक्त करके प्रत्येक को आगे बढ़ना चाहिए। बस, यही अपने और दूसरे के विकास का अनिवार्य और सफल मार्ग है।

जैसे भौंरा किसी भी फूल में फँसे विना या उन्हें कष्ट दिये विना, उनका रस चूस लेता है, उसी प्रकार तुम किसी भी धर्म के सम्प्रदाय अथवा मनुष्य की टीका-टिप्पणी किये विना ही, अन्धश्रद्धा न रखते हुए, उसमें के तत्त्व को निचोड़ कर पचा लो।

बस, बेड़ा पार है!

जैसे आम की जाति पूछते हो, वेचने वालों की जाति

नहीं पूछते, इसी प्रकार तत्त्व की जाति भले देखो, मगर तत्त्व के उपदेशक ग्रंथ या पुरुष के सम्प्रदाय अथवा बेष को मत देखो।

यही है स्याद्वाद का रहस्य।

यही है सर्व धर्म समन्वय।

यह स्याद्वाद जैनधर्म का तत्त्वज्ञान है।

गीता की यह प्रधान ध्वनि है।

किसने इसका आचरण किया?

महावीर और उनके सच्चे भक्तों ने। जिनमें हरिभद्र सूरि, हेमसूरि आदि नाम प्रसिद्ध हैं।

जिनवर पर हमारा पक्षपात नहीं जिनवर से इतर पर द्वेष नहीं।

जहाँ जहाँ है सत्य, वहाँ वहाँ के हम भक्त।

जहाँ समभाव है वहीं मोक्ष है।

मोक्ष सम्प्रदाय, वेष, वर्ण या आश्रम में नहीं है।

जिसमें राग-द्वेष सर्वथा न हो, वही हमारा इष्ट देव।

कबीर और नानक जैसे सन्त भी स्याद्वाद की तरफ झुके थे।

अरे! बादशाह अकबर भी हिन्दू-मुस्लिम एकता का सबल समर्थक था।

जो एक धर्म को सच्ची रीति से पकड़ता है, वह सब धर्मों का सार नितार लेता है।

इसी को कहते हैं—'एकहिं साधे सब सधे।' मगर जो एकान्तवादी है, फलतः जड़ों* की भांति एक ही गुरु के शरीर या वेष को पकड़ बैठता है या एक ही सम्प्रदाय के ग्रन्थ अथवा चिह्न को पकड़ता है, वह सत्य को खोता है। सब कुछ गँवाता है। इसलिए एक ही सत्य को पकड़ो; पर अनेक में से सत्य को खोजने का प्रयत्न करो।

प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक पदार्थ, प्रत्येक स्थल, प्रत्येक क्षेत्र और प्रत्येक काल में सत्य हो सकता है। ऐसी साधना करने वाले के लिए सभी स्थल अपने बन जाते हैं। सभी धर्म उसे अपने ही दिखाई देते हैं।

वह समझता है कि प्रत्येक सम्प्रदाय का क्रियाकाण्ड तो मात्र कलेवर है और इस कर्मकाण्ड के पीछे जो आशय है वही उसकी आत्मा है। वह कलेवर को भले पकड़ेगा पर आत्मा को सामने रखकर पकड़ेगा। ऐसा करने से 'सर्व धर्म की सेवा' का भाव अपने आप ही प्रकट हो जायगा।

* कदाग्रही मूर्ख।

छठा पाठ

विश्ववात्सल्य

विश्ववात्सल्य वीतराग का परम लक्षण है ।

महावीर को विश्व-वत्सल अवश्य कहा जा सकता है ।

विश्व के साथ वत्सलता का प्रयोग करने में शुभ प्रवृत्ति सहज आ ही जाती है । अतः यहाँ निवृत्तिमार्ग में रही हुई शुष्कता या जड़ता की पैठ नहीं होती ।

वात्सल्य को सर्वत्र बरसाने का ध्येय होने के कारण,

किसी एक व्यक्ति, एक पदार्थ,

एक क्षेत्र, एक काल या

एक अमुक भाव का कदाग्रह बांध कर नहीं रख सकता ।

इस प्रकार निवृत्ति भी सहज संभव हो जाती है ।

प्रवृत्ति और निवृत्ति—दोनों का समन्वय इस आदर्श में है ।

'प्रेम' तो पति-पत्नी के बीच का संबंध भी कहलाता है ।

'सेवा' शब्द में कामना या नामना का मोह छिपा रह सकता है ।

'वात्सल्य' और उसमें भी विश्व के साथ के वात्सल्य में विकार, मोह या ममता छू भी नहीं सकती ।

विश्ववात्सल्य के पंथ में, जगत् के प्रत्येक धर्म, प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक प्रवृत्ति को स्थान है।

कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, इन तीनों का एक ही जीवन में समन्वय करना ही है—

विश्ववात्सल्य की साधना

विकार मात्र को दूर रखकर, नम्रभाव से यह साधना करनी ही चाहिए।

"सकल जगत् की जननी बनकर,
वात्सल्य का भाव जगाऊँ।
सब को इसी भावना के
अनुयायी बनने आज बुलाऊँ।"

विश्ववात्सल्य की साधना के लिए
यह भावना खूब उपयोगी होगी।

सातवाँ पाठ

भक्ति

भक्ति अर्थात् संसार-मल को हटाने वाला अप्रतिम और अक्षय ज्ञाननिधि।

अमृत का भी अमृत रसायन।
कितने ही रोगी नीरोग बने।
कितने ही भोगी सुयोगी बने।
कितने ही पापी पुण्यवंत बने।
कितने ही अधर्मी भगवंत बने।

इस निधि के प्रताप से, इसी रसायन के प्रभाव से।
भक्ति अर्थात् चित्त की क्षुद्र तरंग का आवेश नहीं।
भक्ति अर्थात् क्षुद्र भाव वाली लीला नहीं।

भक्ति अर्थात् शरीर में व्याप्त जीव का
परिमुक्त शिव के साथ अनुसन्धान।
भक्ति अर्थात् आत्मा की प्रभुता के आगे
मन, वचन, तन का सम्पूर्ण समर्पण।
इसी से आत्मनिष्ठा के विना भक्ति जागृत नहीं होती।
और आन्तरिक विराग विना भक्ति गहरी नहीं।

प्रार्थना, भक्ति देवी की काव्यमयी वाचा है।

जय, भक्ति माता का मधुर आलाप है।

भक्ति अर्थात् ईश्वरीय प्रेम।

विशुद्ध प्रेम में अर्पण के सिवाय दूसरा स्वर ही नहीं होता।

कबीर कहते हैं:—

'ढाई अक्षर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।'

धन, कुटुंब या कीर्त्ति की तृष्णा जिस प्रेम के पीछे छिपी है वह प्रेम अशुद्ध!

भक्त-हृदय भगवान्‌मय,
चहै नहीं प्रतिदान।
सर्व समर्पण भक्त का,
रखे कहाँ प्रतिदान?

कर्मयोगी भक्त

प्रभु को सर्वत्र देखकर जो जीव मात्र की सेवा करता है वह कर्मयोगी भक्त।

ऐसे योगी के किसी भी कर्म में कुकर्मपन या विकर्मपन होगा ही कैसे? दूसरे शब्दों में कहें तो ऐसा योगी, पापकर्म या निषिद्ध कर्म की तरफ स्वभाव से ही प्रेरित नहीं होगा।

ज्ञानयोगी भक्त

जो आत्मा में विश्व-विज्ञान को निहार कर आत्म-शोधन में मस्त रहे वह **ज्ञानयोगी भक्त** ।

ज्ञान का अर्थ आत्मा शब्द के रूखे-सूखे छिलके नहीं या वितंडावाद भी नहीं ।

ज्ञान अर्थात् आत्मस्वरूप की संवेदना ।

इसीलिए परमप्रेमी, परमज्ञानी, परमयोगी, अनासक्त कर्मयोगी या परम भक्त—सब एक ही बात !

सब का रहस्य एक ही है ।
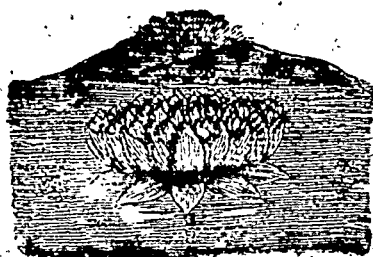
आठवाँ पाठ

ईश्वरवाद-निरीश्वरवाद

ईश्वर है ? हाँ, है। कोई जगह ऐसी नहीं,
जहाँ वह नहीं। वह ईश्वर कैसा है ?
सत्य ईश्वर का ज्ञानगम्य स्वरूप है।

ज्ञान ईश्वर की पहचान है।
आनन्द ईश्वर का साक्षात्कार है।
इसीलिए कहा जाता है कि ईश्वर
सच्चिदानन्द है।

सभी मत, सभी धर्म, सभी पंथ
ईश्वर को ऐसा मानते हैं।

जगत्कर्त्ता कौन ?

एक कहता है—'ईश्वर ने सब बनाया।'
एक कहता है—'ईश्वर जगत्कर्त्ता नहीं,
पर जगत् का न्यायाधीश है।'
एक कहता है—'जगत् का कर्त्ता जो ईश्वर
है वह साकार है, पर आकार से उसका
मूल स्वरूप निर्लेप है।

जो साकार के साथ रहता हुआ भी
निराकार स्वरूप को न भूले वह ईश्वर ।'

ऐसे ईश्वर को इस तरह मानने में
कोई दर्शन मनाई नहीं करता ।
इसीलिए ईश्वरवाद भी सच्चा है ।
निरीश्वरवाद भी सच्चा है ।

निरीश्वरवादी यही कहते हैं:—

ईश्वर को जगत् से क्या मतलब है कि
वह उसमें बँधे ? अगर बँधता है तो
ईश्वर रागी ठहरा ।
अतएव जगत्-कर्त्ता ईश्वर नहीं है ।
जगत् का न्यायाधीश भी ईश्वर नहीं है ।
आत्मा ही संसार में बँधता है ।
आत्मा ही संसार से मुक्त होता है ।
अथवा मन ही संसार-बन्धन का कारण है,
मोक्ष का कारण भी यही है ।'

ईश्वरवादी भक्ति द्वारा पुरुषार्थ साधे
तो वह सच्चा ईश्वरवादी !
निरीश्वरवादी आत्मश्रद्धा से पुरुषार्थ साधे
तो वह सच्चा निरीश्वरवादी ।
दोनों का मार्ग जुदा, पर ध्येय एक ही है ।

इसलिए दोनों एक हैं:—

किन्तु जो भक्ति द्वारा फुसलाना चाहता है,
वह पाखण्डी है।
जो वितण्डावाद को ज्ञान या योग समझता है,
वह दंभी है।
सच्चा भक्त जीवन की प्रत्येक क्रिया में
भगवान् को देखता है।
ऐसे भक्त की क्रिया सर्वहितसाधक
सहज ही बन जाती है।

सच्चा ज्ञानी या सच्चा योगी एक भी क्रिया को समत्व बुद्धि और कर्मकौशल की कसौटी पर कसे बिना नहीं रहता।

ऐसे ज्ञानी या योगी की क्रिया स्व-पर बाधक कैसे हो सकती है?

इसमें कर्मवाद, पुनर्जन्मवाद, आत्मवाद और ईश्वरवाद अपने आप समा जाता है।
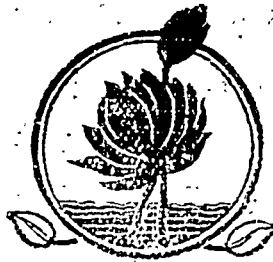
नौवाँ पाठ

पुरुषार्थ और प्रारब्ध

पुरुषार्थ और प्रारब्ध में आगे कौन ?

यह एक सिक्के के दो बाजू हैं । यों पकड़ें तो यह आगे मालूम होता है और यों पकड़ें तो वह आगे जान पड़ता है ।

इसी से कितनी ही बार पुरुषार्थ प्रधान लगता है तो कितनी ही बार प्रारब्ध प्रधान लगता है ।

मगर प्रारब्ध को पहले के पुरुषार्थ ने ही गढ़ा है ना ?

इस कारण पुरुषार्थ पर जोर दो ।

पुरुषार्थ से सिद्धि न दिखाई दे तो कहीं भूल होगी । उसे खोजो । पर पुरुषार्थ तत्त्व से चिपटे रहो ।

बहुत बार मनुष्य पुरुषार्थ का रहस्य नहीं समझता ।

पुरुषार्थ अर्थात् आत्मार्थ ।

आत्मार्थ को उन्नत बनाने वाली क्रिया का नाम ही सच्चा पुरुषार्थ ।

× × ×

पुरुषार्थ से रोग न दूर हो भले !

सम्पत्ति न मिले भले !

आपत्ति उभरे भले !

मौत आ जाय भले !

केवल धीरज और समता न जाय तो पुरुषार्थ की सिद्धि समझिए।

पुरुषार्थ की संकलना टूटती नहीं, जीवन की संकलना भले टूट जाय।

आम देर से भले फले, पर यदि बीज जम गया हो और भूमि, वातावरण, वारिस आदि अनुकूल हो तो फलता अवश्य है।

सच्चा पुरुषार्थ निष्फल होता ही नहीं। इसलिए सच्चा पुरुषार्थ करो। प्रारब्ध का तो तसल्ली के लिए ही उपयोग करो।

सच्चे आत्मवादी, सच्चे कर्मवादी बनो।

ईश्वर को तो प्रेरणापात्र ही रहने दो।

पुरुषार्थवाद ही सब वादों का मुकुट है। सत्य और अहिंसा के प्रति अटल निष्ठा पुरुषार्थवाद की अचूक शर्त है। विज्ञान को धर्माभिमुख बनाकर उसका उपयोग करो।

साहित्य, कला और अर्थ की भी यही बात है।

पुरुषार्थ करो! पुरुषार्थ करो!

पूर्व के लोग आज पुरुषार्थशून्य बन गये हैं।

पश्चिम के लोग आज पुरुषार्थी बन गये हैं।

शून्य में एका जोड़ पूर कर

उसके अनर्थ का सामना करो।

इतना करने से विश्व में शान्ति व्यापेगी।

पुत्र के प्रति !

बेटा ! नहीं किसी से डरना,
नहीं किसी को कभी डराना ।

शूरवीर बनना तू बेटा !
औरों का दुख-दर्द मिटाना ।

रखना अपना दिल उदार तू,
दिल को दरिया पुत्र ! बनाना ।

दीन-दुखी दलितों के आँसू,
पौंछ उन्हें सन्तुष्ट बनाना ।

'तू अग्रसर हो प्रेम पथ-पर सत्य के आलोक में ।'

[माता]
अप्रकट महावीर से

समाप्त